समकालीन हिन्दी कहानियों का प्रवृत्तिगत अनुशीलन

SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM KA PRAVRUTHIGATH ANUSHEELAN

Thesis submitted to

Cochin University of Science And Technology

For the award of the degree of

Doctor of Philosophy
In
Hindi

By

SUMI.C.S.

Department of Hindi
Cochin University of Science And Technology
Kochi – 682022

October – 2015

समकालीन हिन्दी कहानियों का प्रवृत्तिगत अनुशीलन

SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM KA PRAVRUTHIGATH ANUSHEELAN

Thesis submitted to

Cochin University of Science And Technology

For the award of the degree of

Doctor of Philosophy

In

Hindi

By

SUMI.C.S.

Department of Hindi

Cochin University of Science And Technology

Kochi – 682022

October – 2015

SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM KA PRAVRUTHIGATH ANUSHEELAN

Ph.D thesis (HINDI) in the field of Short stories

AUTHOR
SUMI.C.S.
Research Scholar, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi-22.

RESEARCH ADVISOR
Dr.N.G.DEVAKI
Professor, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi-22.

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-22.

October - 2015

“ मेरे पूज्य पिताजी

ए.जे.सुरेश एवं

प्रिय माताजी सी.आर.बीना को

सप्रेम समर्पित...........”

Declaration

I hereby declare that the thesis entitled "SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM KA PRAVRUTHIGATH ANUSHEELAN" is the outcome of the original work done by me, and the work did not form part of any dissertation submitted for the award of any degree, diploma, associateship, or any other title or recognition from any university or institution.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22.

SUMI.C.S.
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled *"SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM KA PRAVRUTHIGATH ANUSHEELAN"* is a bonafide record of research work carried by *SUMI.C.S.* under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant correction and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral Committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22.

Dr.N.G.DEVAKI
Supervising Teacher

"कहानी समाज का दर्पण मात्र नहीं ....

बल्कि दीपक है,

जिसका काम प्रकाश फैलाना है।"

(कुछ विचार) प्रेमचन्द - पृ.30

शोधार्थिनी द्वारा प्रकाशित शोध प्रपत्र

1. “अज्ञेय की कहानियों में विभाजन की त्रासदी” - अनुशीलन जुलाई 2011, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि।
2. “एक कंठ विषपायी : भारतीयता के संदर्भ में” - अनुशीलन जनवरी 2012, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि।
3. “आचार्य नन्ददुलारे वाजपेय की आलोचना में भारतीयता”, अनुशीलन जुलाई 2013, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि।
4. “निर्मल वर्मा की कहानियों में मानव और परिस्थिती का समन्वय” - अनुशीलन, अंक-29, वर्ष-43, जनवरी 2013, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि।
5. “अ-कहानी के हस्ताक्षर रवीन्द्र कालिया : प्रतिनिधि कहानियों के संदर्भ में” - पंचशील शोध समीक्षा -अंक 21, वर्ष-6,जुलाई-सितम्बर 2013, पंचशील प्रकाशन, जयपूर।
6. “भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में राष्ट्रीयता और देशप्रेम” - अनुशील, अंक-30, वर्ष -43, जुलाई 2013, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि।
7. “रामविलास शर्मा की आलोचना यात्रा” - अनुशीलन, अंक-31, वर्ष-44, जनवरी 2014, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि।
8. रजतरानी मीनू - “धोखा” (हिन्दी कहानी का मलयालम अनुवाद)-(संप्रेषित)
9. “सलाम : बहुआयामी परिदृश्य” (संप्रेषित)

पुरोवाक्

हर नयी संवेदना विश्व परिवर्तन की उपज है। इनसे प्रेरित रचनाकार अपनी सृजन केलिए इसी परिवेश का रूपायन करते है। इस प्रकार निरंतर इसका प्रतिरूप साहित्य में अंकित होती है। इन बदलते परिदृश्य के अंकन में नाटक, कविता, उपन्यास आदि साहित्य की विविध विधाओं की तरह कहानी भी अत्यन्त सफल है। कहानी की विकासयात्रा इसका एक उत्तम प्रमाण ही है।

भारतेन्दु से जाज्वल्यमान बनी आदर्श निष्ट कहानी प्रेमचन्द के समय में युगानुकूल बन गयी लेकिन स्वतंत्रता से उद्भूत हुई समस्याओं से साधारण जन जीवन अत्यधिक ढंग से बिगड़ने लगा। इसका प्रतिरूप कहानी साहित्य में कहानी आन्दोलन के रूप में प्रकट है। दशाब्दों के परिवर्तन के फलस्वरूप आज कहानी साहित्य समकालीन परिवेश में विराजित है। वर्तमान समाज में हुई विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अतिप्रसार ने अपने युग को अनेक नपुंसकता से त्रस्त बना दिया है। इन विसंगतियों असंगतियों और विपदाओं की दल में आज का मानव फँसा हुआ है। इसके विरुद्ध समाज में हर वक्त आक्रोशभरे नारे भी उभरते है। अपने समाज को प्रजड़ रूप में प्रतिक्रिया वादी बनाने के उद्देश्य से यह विद्रुपताएँ समकालीन हिन्दी

कहानी में गंभीर विमर्शों के रूप में आज मौजूद है। जैसे - नव उपनिवेशवाद, स्त्रीविमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, लघु सांस्कृतिक विमर्श, बाल विमर्श, विकलांग विमर्श आदि। अत: इन सबका प्रमुख स्वर विद्रोह एवं आक्रोश का है। इस भोगने और फेंकने वाली अपसंस्कृति के विरुद्ध आवाज़ मुखर करते हुए, भविष्य के प्रति मानव को सचेत बनाते हुए जो सृजन आज हो रहा है उसे समकालीन हिन्दी कहानियों के प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर कोई परख आज तक तो नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध कार्य - **"समकालीन हिन्दी कहानियों का प्रवृत्तिगत अनुशीलन"** वर्तमान रचनाकारों के उद्देश्य को अधिक साकार बनाने एवं अपने समाज के गौरव को पुन: प्रतिष्ठित करने केलिए एक राह टूटने के उद्देश्य से किया हुआ एक विनम्र प्रयास है।

औद्योगीकरण एवं शहरीकरण ऐसे दो नाम है - जिन्होंने भारतीय जनता के पुराने विश्वासों एवं संस्कारों को तोड़ दिया। औद्योगीकरण ने भारत में बड़े उद्योग धंधों की स्थापना, गाँव से नगर और नगर से महानगर की तरफ चलते जाने की प्रक्रिया को जन्म दिया तो शहरीकरण ने विभिन्न सूत्र जो भारतीय परिवार को परस्पर बाँधे हुए थे उसे नष्ट कर दिया और आगे आया तकनीकि विकास ने एक भीड़ - समाज को जन्म दिया जिसमें उत्पादन और

उपभोग के अतिरिक्त और किसी चीज़ की गुंजाइश नहीं होती। आज इस उपभोगी समाज एक नयी बाज़ारवादी संस्कृति के शिकार है। जिसमें पड़कर हमारी संस्कृति कई कुरूपताओं का शिकार हो रहे है। लेखक अपनी पैनी दृष्टि से इसे झटसे पहचानते है। इसलिए समकालीन हिन्दी कहानी के प्रवृत्तियों के रूप में विराजित इन विभिन्न समस्याओं के ऊपर एक विश्लेषण प्रस्तुत करने से वर्तमान समाज के विभिन्न क्षेत्र के लोगों का इतिहास और मौज़ूदा हालत का भी विस्तृत व्याख्यान भी प्रकट हो जाएगा। इन सभी कारणों से भी शोधार्थिनी ने इसे अपने प्रबंध का विषय बनाया था। प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक है- **"समकालीन हिन्दी कहानियों का प्रवृत्तिगत अनुशीलन"**। प्रस्तावित विषय की समग्रता पर चिन्तन करते हुए इस प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त कर दिया है।

प्रथम अध्याय है - **"समकालीनता और हिन्दी कहानी"**। इस अध्याय शोध प्रबंध केलिए एक भूमिका के रूप में लिया है। इसमें समकालीन शब्द की अर्थ एवं परिभाषा, आधुनिकता और समकालीनता के अन्तर, समकालीन युग परिवेश पर प्रमुख पढन प्रस्तुत करते हुए समकालीन कहानी एवं उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों के साथ समकालीन हिन्दी कहानी की भाषा को भी विश्लेषित किया है।

"समकालीन कहानी में नवउपनिवेश का प्रतिरोध" यह इस शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय है। इसमें नवउपनिवेश केलिए वातावरण तैयार करती स्वातंत्र्योत्तर राजनीति के प्रस्तुती के साथ भारतीय अर्थतंत्र के बिगड़ाव के विविध कारणों को ढूँढने का कार्य भी किया है। इस वैश्विक शक्ति के विभिन्न शक्तिस्रोत है इनसे यह समाज में अनेक अमानवीय प्रवृत्तियों के जन्मदाता भी बने हुए है। जैसे - मूल्य माल में बदलना, धर्म, संस्कृति, दर्शन-बिक्री की वस्तु होना, सांप्रदायिकता के विकसित रूप आतंकवाद, स्त्री की वस्तुकीकरण आदि अनेक शोषण के रवैये के प्रति समकगालीन हिन्दी कहानी के रचनाकार तीव्र प्रतिरोधित भी है। अनेक वर्तमान कहानीकारों के कहानियों के विश्लेषण के माध्यम से इस प्रतिरोधी स्वर को और भी तेज़ बनाने का प्रयत्न ही इस अध्याय में हुआ है।

तीसरा अध्याय है **"समकालीन हिन्दी कहानी में स्त्री विमर्श"**। इसमें स्त्री विमर्श की वर्तमान स्वरूप निर्धारण पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करते हुए समकालीन स्त्री विमर्श के विभिन्न आयामों को नारीवादी लेखिकाओं के कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

चौथा अध्याय है **"समकालीन हिन्दी कहानी में दलित विमर्श"**। इस अध्याय में दलित शब्द एवं दलित समाज के आन्दोलनों से भरी जीवन यात्रा पर दृष्टि रखते हुए समकालीन कहानियों के माध्यम से

इनकी समस्याओं को किस प्रकार दर्ज़ किया है इसे ही इस अध्याय में केन्द्र विषय बनाया है।

"समकालीन हिन्दी कहानी में लोकचेतना" यह इस शोध प्रबंध का पाँचवाँ अध्याय है। इस अध्याय में लोक एवं विकासमान लोक संस्कृति की विस्तृत अध्ययन से यह साबित हुआ है कि मानव एवं पर्यावरण दो विभिन्न धाराएँ नहीं है। लेकिन वैश्विक उपभोगी संस्कृति से अलग हुए इस रिश्ते को समकालीन कहानीकारों के परिस्थितिक चेतना से भरी कहानियों के विश्लेषण माध्यम से फिर से कायम बनाने की कोशिश को आधार बनाकर ही इस अध्याय का ढाँचा प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्याय में वर्तमान समाज में उभरे अन्य अनेक समस्याएँ जैसे वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, लघु सांस्कृतिक विमर्श, बाल विमर्श, विकलांग विमर्श आदि के अन्तर्गत आनेवाले कुछ समकालीन कहानियों के विश्लेषण के द्वारा उनके समस्याओं को भी परखने का प्रयास हुआ है। समकालीन हिन्दी कहानी की समस्याएँ अलग है उसी तरह इसकी भाषा भी अलग है। भाषा रचना की प्राण है इसलिए वर्तमान लेखन की भाषा पर विचार व्यक्त किए बिना इन शोध प्रबंध का उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा। अत: समकालीन हिन्दी कहानी के आक्रोश भरी भाषा की विशेषताओं को भी इसमें प्रस्तुत करने की कोशिश किया है।

अंत में उपसंहार है इसमें प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्ययन के उपरांत निकले निष्कर्षों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है।

उपसंहार के बाद सहायक ग्रंथ सूची को प्रस्तुत किया है। इसमें इस शोध प्रबंध केलिए लिए गए आधार कहानी ग्रन्थों की सूची दी गयी है बाद में शोधकार्य के सहायक ग्रन्थों की सूची पंचसूत्री प्रणाली के आधार पर पेश किया है। इन सभी ग्रन्थों के प्रत्यक्ष पाठन का अवसर भी शोधार्थिनी को प्रस्तुत हुआ था।

समकालीन हिन्दी कहानी के ऊपर हुआ यह विश्लेषणात्मक अनुशीलन वर्तमान पीढ़ि को बदलाव की एक नई दृष्टि देंगे - यही प्रार्थना है।

इस शोध प्रबंध को विद्वानों के समक्ष मैं सविनय प्रस्तुत करती हूँ। अगर इसमें कोई कमियाँ तथा गलतियाँ हुई है तो इसके लिए शोधार्थिनी क्षमाप्रार्थी हूँ।

विनम्र

सुमी.सी.एस.

कोच्चि - 22

.10.2015.

कृतज्ञता ज्ञापन

यह शोध प्रबंध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफसर डॉ.एन.जी.देवकी के निर्देशन से ही पूर्ण हुआ है। वह मेरी कमियों एवं गलतियों को सुधारने में अतीव तत्पर थे। इसी अवसरोचित सलाहों से ही यह गंभीर परिश्रम कार्य सरल एवं निर्विघ्न पूर्ण हुआ है। उनकी निष्ठा भरी हृदय ने ही मुझे इस लक्ष्य पर पहूँचाया है। एक शोधार्थिनी से बढ़कर जो छत्रछाया उनसे मुझे प्राप्त हुआ उसके लिए मैं ज़िन्दगी भर शुक्रगुसार हूँ।

शोध प्रबंध को पूरा करने में सदा सहायकमंत रहे कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ साथ ही वहाँ के अन्य गुरुजनों जिन्होंने मुझे प्रोत्साहन दिया उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के पुस्तकालय, कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालय, एरणाकुलम पब्लिक पुस्तकालय, हिन्दी प्रचार सभा के पुस्तकालय, कालटी श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एवं वहाँ के कर्मचारी को भी जो मुझे इस शोध कार्य की पूर्णता में सहयोग दिया उनके प्रति भी मैं धन्यवाद अदा करती हूँ।

इसके साथ मैं अपनी साथियों को भूल नहीं सकती जिनके प्यार- भरी सहयोग के बिना यह काम अधूरा ही रहता। उनके प्रति भी मैं अपनी आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरे संपूज्य पिताजी ए.जे.सुरेश, माताजी सी.आर.बीना और मेरी प्यारी बहन रेष्मा के प्रार्थना एवं प्रेरणा ने ही मुझे इस लक्ष्य का हकदार बनाया है उनके प्रति शब्दों में धन्यवाद बोलना भी कम रहेगा।

इन सब से प्रथम मैं ईश्वर के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करना चाहती हूँ जिनकी कृपा एवं आशीर्वाद से ही यह शोधकार्य सफल हो सकती है।

सुमी सी.एस.

शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 22.

.10.2015.

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय एक : समकालीनता और हिन्दी कहानी **1 - 45**

1.1. समकालीनता का तात्पर्य एवं परिभाषा

1.2. आधुनिकता और समकालीनता

1.3. समकालीन युग परिवेश

1.3.1. राजनीतिक परिवेश

1.3.2. सामाजिक परिवेश

1.3.3. आर्थिक परिवेश

1.3.4. सांस्कृतिक परिवेश

1.3.5. धार्मिक परिवेश

1.4. हिन्दी कहानी : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

1.5. समकालीन हिन्दी कहानी

1.6. समकालीन हिन्दी कहानी की प्रवृत्तियाँ

1.7. समकालीन हिन्दी कहानियों का शैल्पिक पक्ष

निष्कर्ष

अध्याय दो : समकालीन कहानी में नवउपनिवेश का प्रतिरोध **46 - 124**

2.1. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति - एक मूल्यांकन

2.2. वैश्वीकरण में फँसे भारत की अर्थव्यवस्था

2.3. वैश्विक शक्ति का आंतरिक ढाँचा

2.3.1. उदारीकरण

2.3.2. निजीकरण

2.3.3. विश्व व्यापार संघटन

2.3.4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

2.4. नव-उपनिवेश का विकास

2.5. नव-उपनिवेशिक शक्ति की विकृतियाँ

2.6. हिन्दी कहानी में सांप्रदायिक एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण एवं उनका प्रतिरोध

2.7. समकालीन कहानी में नव उपनिवेशिक शक्तियों का प्रदर्शन एवं प्रतिरोध

2.7.1. उपभोग संस्कृति की अमानवीयता

2.7.1. 1. संबंधों का बाज़ारीकरण

2.7.1.2. उपभोग संस्कृति और आम आदमी

2.7.1.3. धर्म, संस्कृति, दर्शन-बिक्री की वस्तु

2.7.1.4. विज्ञापन और मीडिया

2.7.1.5. स्त्री का वस्तुकीकरण

2.7.1.6.परंपरागत उद्योगों की हत्या

2.7.1.7. आतंकवाद : एक ग्लोबल अंतर्विरोध

2.7.2. समकालीन कहानी में नव उपनिवेशिक शक्तियों के प्रति प्रतिरोध

निष्कर्ष

<u>अध्याय तीन : समकालीन कहानी में स्त्री विमर्श</u> **125 - 218**

3.1. स्त्री-विमर्श के रूप निर्धारण

3.2. स्त्री विमर्श का पश्चिमी दृष्टिकोण

3.2.1. मेरी बोल्सटन क्राफ्ट

3.2.2. जॉन स्टुअर्ड मिल

3.2.3. एंगेल्स

3.2.4. बेटी फ्राइडन

3.2.5. सीमोन द बोउवार

3.2.6. कैट मिलैट

3.2.7. सुलोमिथ फायरस्टोन

3.2.8. जर्मन गीयर

3.2.9. नाओमी बुल्फ

3.2.10. लूसी इरिगारे

3.2.11. वर्जीनिया वुल्फ

3.3. स्त्री विमर्श का भारतीय दृष्टिकोण

3.3.1. एक अज्ञात हिन्दु औरत

3.3.2. महादेवी वर्मा

3.3.3. आशारानी व्होरा

3.3.4. मृणाल पांडे

3.3.5. क्षमा शर्मा

3.3.6. रमणिका गुप्ता

3.3.7. सरला महेश्वरी

3.3.8. अनामिका

3.3.9. प्रभा खेतान

3.3.10. मृदुला सिंहा

3.4. स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कहानी साहित्य

3.5. समकालीन समाज में स्त्री

3.6. समकालीन हिन्दी कहानी में स्त्री विमर्श के विभिन्न आयाम

3.6.1. पुरुषवर्चस्ववादी समाज में स्त्री

3.6.1.1. परिवार

3.6.1.2. शिक्षा

3.6.1.3. धर्म

3.6.1.4. राजनीति

3.6.2. कामकाजी महिला

3.6.2.1. आवास एवं यौन शोषण की समस्या

3.6.2.2. आत्मविश्वास भरी नारी

3.6.3. स्त्री के बदलते नैतिक सोच

3.6.3.1. विवाह की अवधारणा

3.6.3.2. विवाहेतर संबंध

3.6.3.3. तलाक

3.6.3.4. स्त्री और सेक्स

3.6.3.5. नारी देह-मीडिया और विज्ञापन

3.6.4. समकालीन कहानी में चित्रित स्त्री के विद्रोही स्वर

3.6.5. पारिस्थितिक स्त्रीवाद

निष्कर्ष

<u>अध्याय चार : समकालीन कहानी में दलित विमर्श</u> **219 – 282**

4.1. दलित शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

4.2. दलित शब्द : साहित्यकारों एवं विद्वानों की दृष्टि में

4.3. दलित समाज : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

4.4. दलित आन्दोलन

4.4.1. महात्मा ज्योतिबा फुले और दलित आन्दोलन

4.4.2. महात्मा गाँधी और दलित आन्दोलन

4.4.3. डॉ.बी.आर.अम्बेडकर और दलित आन्दोलन

4.5. दलित साहित्य का उद्‌भव

4.6. दलित साहित्य स्वरूप एवं लक्ष्य

4.7. हिन्दी दलित साहित्य

4.8. दलित कहानी

4.9. समकालीन दलित समाज की चुनौतियाँ

4.10. समकालीन दलित कहानियों में चित्रित दलित जीवन

4.10.1. सामाजिक समस्याएँ

4.10.2. धार्मिक समस्याएँ

4.10.3. आर्थिक समस्याएँ

4.10.4. शैक्षिक समस्याएँ

4.10.5. राजनीतिक समस्याएँ

4.11. समकालीन दलित कहानी में अस्मिता बोध

4.12. समकालीन दलित कहानी में विद्रोह के स्वर

4.13. समकालीन दलित कहानी में नारी

निष्कर्ष

<u>अध्याय पाँच : समकालीन कहानी में लोक चेतना</u> **283 - 378**

5.1.1. लोक शब्द की अवधारणा एवं परिभाषा

5.1.2. लोक संस्कृति

5.1.2.1. लोक धर्म

5.1.2.2. लोक विश्वास

5.1.2.3 लोक रीति-रिवाज़

5.1.2.4. लोकगीत

5.1.2.5. लोक गाथा

5.1.2.6. लोक कथाएँ

5.1.2.7. लोक नाट्य

5.1.2.8. लोक सुभाषित

5.1.2.8.1. लोकोक्तियाँ

5.1.2.8.2. मुहावरा

5.1.2.8.3. पहेलियाँ

5.1.2.9. लोक वाद्य

5.1.2.10. लोक नृत्य

5.1.2.11. लोकचित्र

5.1.2.12. लोक भाषा

5.1.3. लोक जीवन में पर्यावरण

5.1.4. लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य में पर्यावरण का महत्व

5.1.5. वर्तमान बदलते पर्यावरण

5.1.6. हिन्दी कहानी में पारिस्थितिकी और मानव

5.1.7. समकालीन हिन्दी कहानी में पारिस्थितिक चेतना

5.1.7.1. पेड़-पौधे

5.1.7.2. पशु-पक्षी

5.1.7.3. पहाड़

5.1.7.4. फल-फूल

5.1.7.5. नदी नाले

5.1.7.6. वायु

5.1.7.7. विस्थापन

5.2.1. समकालीन कहानी की अन्य प्रवृत्तियाँ

5.2.1.1. वृद्ध विमर्श

5.2.1.2. बाल विमर्श

5.2.1.3. लघु सांस्कृतिक विमर्श

5.2.1.4. आदिवासी विमर्श

5.2.1.5. विकलांग विमर्श

5.3.1. समकालीन हिन्दी कहानी के शिल्प-पक्ष

निष्कर्ष

उपसंहार 382 - 389

सहायक ग्रंथ सूची 390 - 428

अध्याय एक

समकालीनता और हिन्दी कहानी

अध्याय - 1
समकालीनता और हिन्दी कहानी

समकालीन समाज की विसंगतियों एवं विभीषिकाओं की गणना करना अत्यन्त दुष्कर है। इन त्रासदीपूर्ण जीवन के प्रति कोई भी प्रबुद्ध वर्ग उदासीन नहीं रह सकता। इन प्रबुद्ध वर्गों में प्रज्ज्वल ढंग से संवेदना का प्रवाह साहित्यकार के माध्यम से ही होता है। अत: समकालीन साहित्यकार गंभीर रूप से व्यग्र भी है। इस व्यग्रता का परिणाम आज साहित्य में समकालीन रूप से विद्यमान है।

1.1. समकालीनता का तात्पर्य एवं परिभाषा

'समकालीन' शब्द हिन्दी भाषा का एक प्रचलित शब्द है जिससे तात्पर्य है एक ही समय में रहने या होने वाले। हिन्दी के समकालीन शब्द अपने मूल अर्थ में अंग्रेज़ी के 'काण्टेम्पोरेरी' अथवा 'कोटेम्पोरेरी' तथा कोइवल (coeval) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए है। असल में अंग्रेज़ी भाषा के काण्टेम्पोरेरी शब्द केलिए हिन्दी में दो पर्यायों - 'समकालीन' और 'समसामयिक' का प्रयोग होता है। डॉ. कामिल बुल्के के 'अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश' में दोनों शब्दों को इसके पर्याय के रूप में बताया गया है।[1]

समकालीन शब्द का प्रयोग साहित्य के स्तर पर भिन्न रूपों में किया जाता है। कहीं तो यह सुनिश्चित कालखण्ड केलिए

---

[1] कामिल बुल्के - अंग्रेज़ी - हिन्दी कोश - पृ.134.

प्रयुक्त होता है तो कहीं इसका प्रयोग सार्वकालिक रूप में किया जाता है और कहीं इसका अर्थ भाव अर्थात् प्रवृत्तिमूलक है। काल के आधार पर तो समकालीन शब्द केलिए अंग्रेज़ी के कन्टेम्पोरेरी शब्द ही प्रचलित है। जिसका अर्थ है - "उसी समय या कालखण्ड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति।"[1] यह समकालीनता ता मूल अर्थ है आज के साहित्य के सन्दर्भ में इस अर्थ में इसका प्रयोग बहुत कम लोगों ने किया है। वास्तव में व्यवहार में ऐसा करना समकालीनता के अर्थ को विकृत करना है। डॉ.नरेन्द्र मोहन समकालीनता को कालखण्ड तथा इतिहास - दोनों से अनिवार्य: सम्बद्ध मानते है, "समकालीनता का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान-भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्रोत तक पहूँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है।.....समकालीनता एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है, बल्कि ठहराव, गतिहीनता और जड़ता को सख्ती और निर्ममता से तोड़ने वाली यह गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना है।"[2] इसमें गतिहीनता और जड़ता को तोड़ने का अर्थ है - समकालीन रचनाकार अपने को समसामयिक स्थितियों की स्वीकृति तक सीमित नहीं

[1] पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ - पृ.82

[2].नरेन्द्र मोहन - समकालीन कहानी की पहचान (भूमिका) - पृ. 7

करता, बल्कि वह उसके परिवर्तन का आकांक्षी भी है। उसके लिए रचनात्मक सक्रियता के निर्वाह भी करता है।

भाव बोध के आधार पर समकालीनता का अर्थ हमारे परिवेश की सच्चाई से है। एक ऐसी वास्तविकता जिसके दर्शन हमें हमारे पूर्व के साहित्य में भी दृष्टिगोचर हो सके जो हमारी समय की सीमा में न आकर भी समकालीन कहलाये।

व्यास के महाभारत, तुलसी के मानस, प्रेमचन्द की रचनाओं को देख लीजिए - इतने हज़ार सालों के बाद भी उनमें अभिव्यक्त अनुभूति में एक ऐसी सारभूत सत्यता है जो संवेदनशील मन को आज भी उतना ही उद्वेलित करती है, जितनी अपने रचनाकाल में। इससे एक बात यह भी तो स्पष्ट होता है कि समकालीनता से संबद्ध रखने वाले समसामयिकता का अर्थ अपने तात्कालिक यथार्थ तक सीमित रहना ही नहीं है, बल्कि एक ऐसे व्यापक सत्य की खोज में लगे रहना है जिसकी कोई विषयगत या कालगत सीमा नही होतीं।

डॉ.धनंजय ने अपनी पुस्तक 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि' की भूमिका में 'समकालीन कहानी' संबंधी धारणा को और भी स्पष्ट कर दिया है। उनका भाव है "समकालीन कहानी के विवेचन केलिए पीठिका स्वरूप, नई कहानी को रखा जा सकता है। समकालीनता को परिभाषित करना उतना ही मुश्किल है जितना आधुनिकात को। आज से तीस साल पहले लिखी गई कहानियाँ भी

समकालीन हो सकती है।"[1] डॉ. धनंजय तो समकालीनता को पारिभाषित करते हुए उसमें निहित भावबोध को ही स्वीकार किया है।

कुछ आलोचक तो इस शब्द को प्रवृत्तिमूलक अर्थ के रूप में स्वीकार किया है जैसे गंगाप्रसाद विमल कहते है "समकालीन का अर्थ यह नहीं है कि दो व्यक्ति एक विशेष कालखण्ड में जी रहे हैं और संयोग से वे रचनाशील भी हैं ।.... जिस समकालीन या समकालीनता की चर्चा सन् 60 के बाद की कहानी के सम्बन्ध में की जा रही है, उसका शब्दार्थ की धारणा से संबंध नहीं है, अपितु वह जीवनबोध के आधार पर समानधर्म रचनाकारों के बोध की समानधर्मिता है।"[2] गंगाप्रसाद विमल विभिन्न कालों में साहित्य में निहित समस्याओं को प्रमुखता देते हैं।

कुछ विद्वान समकालीन साहित्य को आन्दोलन धर्मी प्रवृत्ति, विद्रोह या विरोध आदि से जोड़ते हैं। डॉ.विश्वंभरनाथ उपाध्याय जैसे वामपंथी आलोचक के मत में समकालीन कहानी विद्रोही कहानी अथवा विरोध की कहानी है, "क्योंकि समकालीन सृजन मूलतः स्थापित या एस्टेबलिशमेंट का विरोधी है।"[3] वे समकालीनता को शोषक वर्गों और उनकी शक्तियों-समूहों का ध्वंस, सक्रिय संघर्ष, आक्रमकता आदि से जोड़ते है।

---

[1] डॉ.धनंजय - समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि - पृ.11

[2] वही - पृ.166

[3] विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - समकालीन कहानी की भूमिका - पृ.3

इस प्रकार समकालीन शब्द के कोशगत अर्थ के बदले साहित्य के संदर्भ में इसका अर्थ विशिष्ट बनता है। अतः कह सकते है कि समकालीनता में समसामयिक बोध, भाव बोध, ऐतिहासिक दृष्टि, सक्रियता, विद्रोही भावना आदि तत्त्व मुख्यतः विद्यमान रहते है।

1.2. आधुनिकता और समकालीनता

'आधुनिकता' के प्रयोग साहित्य के संदर्भ में समकालीनता से बहुत ही पूर्व हो चुका था। भारतीय इतिहास के अनुसार आधुनिक युग का आरंभ 18वीं शती के उत्तरार्ध से माना जाता है। इस समय तो देश के दक्षिण-पश्चिम और पूर्वी प्रदेशों में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। फिर भी अत्यधिक विद्वानों के राय के अनुसार सन् 1857 ई. के बाद से ही 'आधुनिक भारत' जैसी मानसिकता का आरंभ हो चुकी थी। यूरोपीय इतिहास में आधुनिक युग का प्रारंभ 15वीं शती में पुनर्जागरण युग के साथ माना जाता है लेकिन वास्तवीय रूप में यूरोप में 17 वीं शती में विज्ञान के विकास के साथ आधुनिक युग का प्रारंभ हो गया।

आधुनिकता की अर्थ व्याप्ति को अनेक विद्वानों ने पारिभाषित करने की कोशिश की है।

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ विद्वान आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी का मानना है - "आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अनुभवों द्वारा जिन मानवीय मूल्यों को उपलब्ध किया है,

उन्हें नए संदर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है।"[1] द्विवेदी जी के अनुसार आधुनिकता परंपरागत संप्रदायों के विरोध करती एक गतिशील कदम है।

कविवर श्री रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार -"आधुनिकता एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की है। नैतिकता में उदारता लाने की है। बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। धर्म से सही रूप तक पहूँचने की प्रक्रिया है।"[2] तात्पर्य यह है कि उनके मतानुसार आधुनिकता मनुष्य-मनुष्य को समान समझने की एक नयी सोच है।

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि आधुनिक का अर्थ मार्डन, नूतन, नवीन से है अतः यह शब्द विशेषण और काल दोनों केलिए समान रूप से प्रयुक्त होता रहा है। उसी प्रकार आधुनिकता एक नए जीवन बोध है, एक बौद्धिक प्रक्रिया है, एक संश्लिष्ट विचार-पद्धति है और साथ ही साथ एक तर्कशील अन्वेषण भी है। जिसका विकास आधुनिक शिक्षा, पश्चिमीकरण, मार्क्सियन, अस्तित्ववादी, मनोविश्लेषणवादी दर्शनों और कुछ साहित्यकारों के नयी विचार पद्धति से हुआ।

इस प्रकार आधुनिकता विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न एक विचार है। इसे निरंतरता के अन्तर्गत रखा जा सकता है। हर युग में नयी-नयी समस्याओं का जन्म होता है और उसके समाधान केलिए नये रास्तों का अन्वेषण होता रहा है। इस अन्वेषण में पुराने कुछ विचारों

---

[1] शंभूनाथ - समकालीन सृजन आधुनिकता की पुनर्व्याख्या - पृ.18

[2] दिनकर - आधुनिक बोध - पृ.36

के प्रति तर्क करते हुए मनुष्य नये उत्तर या नए मूल्य की जन्म देते है। इस प्रकार ही आधुनिकता का जन्म होता है। बौद्धिककाल आज प्राचीन माना जाता है लेकिन अपने युग में वह आधुनिक रहा होगा। इसी प्रकार आधुनिकता एक मानसिकता है। इस मानसिकता का विकसित रूप ही आज समकालीनता पर आकर विराजित है।[1] इस प्रकार समकालीनता और आधुनिकता में कुछ भिन्नता भी लक्षित है। प्रथम अंतर तो काल के ऊपर ही है आधुनिकता का आरंभ पश्चिम के पुनर्जागरण से है तो समकालीनता का आरंभ सन् 1960 से माना जाता है।

आधुनिकता में एक नयी व्यवस्था का विकास हुआ। वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसका प्रमुख लक्षण है तो उद्योग-टेक्नोलोजी इसके परिणाम भी है। इससे विभिन्न समकालीनता प्रौद्योगिकीय अर्थव्यवस्था और महानगरीय जीवन की विसंगति, असंगति, त्रास, संत्रास आदि में निहित यथार्थ के बहुविध आयामों का प्रत्यक्षीकरण है।

आधुनिकता अतीत का विमर्श करता हुआ अपने समय को प्रस्तुत करता है लेकिन समकालीनता वर्तमान जीवन प्रणाली की जटिलता को उसकी पूरी समग्रता में सूक्ष्मता के साथ व्याख्यायित, परिमार्जित एवं प्रतिक्रियान्वित करनेवाली गहरी समझ है।

आधुनिकता को रचनाकार अर्जित नहीं करता लेकिन समकालीनता को रचनाकार अर्जित करना चाहिए। वह तो परंपरागत

---

[1] डॉ.उर्मिला मिश्र - आधुनिकता और मोहन राकेश - पृ.2

रूप में मिलनेवाली चीज़ नहीं है। अपने समय के साथ चलते हुए उसमें हस्तक्षेप करते हुए हर रचनाकार को समकालीनता स्वयं प्राप्त करना होता है। यह प्राप्त करने केलिए वह सदा भविष्य के प्रति जागरूक रहते है।

कह सकते है कि समकालीनता आधुनिकता के अनाथत्व से ही जन्म लेती है। आधुनिकतावादी दृष्टिकोण ने पूँजीवादी और समाजवादी दर्शनों को जन्म दिया। पूँजीवादी संस्कृति उपभोक्तवाद की जन्मभूमि है तो समाजवादी व्यवस्था का शिखर कार्लमार्क्स था। जिन्होंने सर्वहारा वर्ग को महत्त्व दिया। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत तथा सार्त्र के अस्तित्ववादी चिंतन ने आधुनिकता के व्यक्तिवादी चिंतन में कुछ नये कोण जोड़ दिए। आधुनिकता ने वैज्ञानिकता से और उसकी उपज बनी औद्योगीकरण ने ईश्वर और प्रकृति से मानव को अलग बना दिया है। यानी पूरी रूप में आधुनिकता मानव केन्द्र थी। देकार्थ के मनुष्य के विकास केलिए प्रकृति के ऊपर स्वामित्व की उद्घोषणा और नीक्शे के ईश्वर की मृत्यु की उद्घोषणा दोनों ने मिलकर मनुष्य को और भी तटस्थ किया। व्यक्ति की स्वतंत्रता और अस्तित्व केलिए भटकने वाला साहित्य ही आधुनिक साहित्य है। लेकिन समकालीनता ने इस केन्द्रीय रूप को टूटा दिया।

आधुनिकता ने सत्ता और विचारों को लोगों के ऊपर भाँटा तो समकालीनता ने आधुनिकता जिन्हें हाशिए पर छोड़ दिया था उसे ऊपर कर दिया। जैसे दलित, स्त्री, प्रकृति, अल्पसंख्यक जाति।

आज की राजनीति भूमंडलीकरण है। आज उसका उपयोग विकास के नाम पर विकासशील एवं गरीब देशों के शोषण से जुड़ा है। इसलिए भविष्य के प्रति सन्देह करता समकालीन साहित्यकार लोगों को जागरूक करके गाँधीजी की 'हिन्द समाज' के महत्त्व को समझाता है। इसलिए प्रतिरोधात्मकता समकालीनता का दस्तावेज़ है।

ज़रूरी नहीं है कि समकालीन रचना या विचार आधुनिक हो, जबकि प्रत्येक आधुनिक रचना समकालीन होती है।

आधुनिकता और समकालीनता के अन्तर-संबंध को समझने के बाद समकालीन युग परिवेश पर गंभीर चिंतन करना ज़रूरी है।

1.3. <u>समकालीन युग परिवेश</u>

परिवर्तन विश्व में निरंतर हो रहे एवं अनिवार्य ऐतिहासिक प्रक्रिया है। वास्तव में यही परिवर्तन ही विश्व के नये परिवेश का जनक होता है। साहित्यकार परिवेश के प्रति विशेष जागरूक है। फलस्वरूप निस्संदेह कह सकते हैं कि रचना परिवेश की निर्मिती है। कहने का तात्पर्य यह है कि "कृति के पीछे उसके कर्ता का व्यक्तित्व रहता है, लेकिन साथ ही यह भी पूरे आग्रह के साथ कहा जा सकता

है कि कर्ता के व्यक्तित्व के पीछे उसका देश-काल विद्यमान रहता है।"[1] अपने परिवेश का यथार्थ चित्रण ही साहित्य का सहज धर्म माना गया है। इसलिए समकालीन भौतिक परिवेश का प्रभाव रचना पर रहता है। भौतिक परिवेश से आशय है कि कृतिकार का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश जिसमें उसके युग की तमाम प्रवृत्तियाँ शामिल रहती है। अत: समकालीन कहानी के बारे में विस्तृत चर्चा से पूर्व तत्कालीन परिवेश के प्रति एक गहरी सोच अनिवार्य है।

1.3.1. राजनीतिक परिवेश

'राजनीति' शब्द को पारिभाषित करना सरल कार्य नहीं है। साधारण रूप से राजनीति का अर्थ समाज की व्यवस्था एवं नीतियों का सत्ता द्वारा निर्धारण से है। एक ओर शब्दों में कहें तो 'राजनीति' का अर्थ शब्द का सुव्यवस्थित संचालन है। वास्तव में यह अवधारणा का साक्षात्कार आज भी हो रहा है या नहीं। इसका प्रमाण है राजनीतिक परिवेश।

सन् 1947 में भारत देश आज़ाद हुआ। भारतीय आज़ादी के आरंभिक तीन चार वर्ष तो भारी उथल-पुथल के थे। गुलामी के दिनों में भारत के आम नागरिकों ने आज़ादी केलिए जो सपने गढ़े थे, आज़ादी के बाद सब ध्वस्त हो गए। स्वाधीनता आन्दोलन में प्रत्यक्ष

---

[1] .नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र - पृ.12

अथवा परोक्ष रूप से भाग लेने वाले सारे लोग रियासत में अपने रिश्तेदारों की स्थिति मज़बूत करने में लिप्त हो गए। फिर भी संविधान बना, गणतंत्र की घोषणा हुई, पहला आम चुनाव हुआ, केन्द्र तथा राज्यों में जनतांत्रिक सरकार का गठन हुआ। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र होते हुए भी हर नागरिक को सुघड़ जीवन-व्यवस्था और मनोनुकूल सुविधा उपलब्ध नहीं हो रही थी। तरह-तरह की मानव-निर्मित समस्याओं के साथ-साथ प्राकृतिक आपदाएँ भी सिर चढ़ रही थी। अकाल, अभाव और शोषण की भट्ठी में सामाजिक जीवन व्यतीत हो रहा था विदेशी कर्ज़ भारत पर चढ़ता जा रहा था।

विभाजन से लेकर सन् 1965 में सीमा संघर्ष उसके बाद विस्थापन, मारकाट भी शुरू हुआ। फिर गाँधीजी की हत्या हुई।.... दरअसल अंग्रेज़ों की गुलामी से हमारे समाज को भौतिक मुक्ति तो मिल गई थी, नैतिक और मानसिक मुक्ति नहीं मिली थी। विभाजन से राज्य की समस्याएँ और बुलन्द हो गई। इसी बीच आर्थिक संकट से मुक्ति पाने केलिए विदेशी सहायता के प्रति निर्भरता बढ़ती जा रही थी।

सन् 1966 में अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन हुआ। जन सामान्य के बीच इसकी प्रतिक्रिया तीखी हुई। भारतीय नागरिक की हताशा और तेज़ हुई। 1967 के लोकसभा तथा विधानसभा के चुनावों में इन सभी परिस्थितियों के प्रभावों का परिणाम ही था - सात राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकार अधिकार में

आना। यदि सन् 1964 में वामपंथी दल में विभाजन न हो गया होता तो निश्चित रूप से सन् 1967 में आम चुनाव का परिणाम कुछ और होता। अतः 1970 ई. तक दल-बदल और उठा-पटक की जो स्थिति है वह ज़ारी रहा।

इस समय में हुई आर्थिक विषमता और किसानों के आक्रोश के कारण मार्च 1967 में नक्सलवादी आन्दोलन आरंभ हुआ। इस आन्दोलन की सफलता के उत्साह में सन् 1969 में अति उत्साही कुछ किसानों ने संघर्ष का रुख कर लिया, कम्युनिस्ट पार्टी में तीसरी बार फिर विभाजन हुआ और मार्क्सवादी -लेनिनवादी पार्टी कायम हुई। अगस्त 1969 में राष्ट्रपति ज़कीर हुसैन के देहावसान के बाद कांग्रेस पार्टी में अपनी जगह बनाए वामपंथियों के प्रयास सफल हुए और ट्रेड यूनियन के नेता वी.वी.गिरी राष्ट्रपति हुए।

सन् 1970 में लोकतांत्रिक नीतियों के द्वारा पाकिस्तान में हुई चुनाव में अवामी लीग सत्ता को प्राप्त कर लिया लेकिन बाद में सरकार से हुआ भारी जन संहार ने एक करोड़ से भी अधिक बंगाली शरणार्थी को भारत पहूँच दिया। इस समय हुए भारत पाकिस्तान युद्ध के परिणाम स्वरूप पाकिस्तान की पराजय और एक नयी लोकमान्य बंगाल राज्य की स्थापना ने सन् 1971 में हुई चुनाव में कांग्रेस को सफल बना दिया।

चुनाव में विजय हुए श्रीमती गांधी ने भारत को संपन्नता के स्तर पर पहूँचाने केलिए 'गरीबी हटाओ' के रूप में अनेक पद्धतियों

का आरंभ तो किया लेकिन राजनीति में फैला भ्रष्टाचारिता को हटाने में सफल न होने पर उनकी नीतियाँ सिर्फ कागज़ में ही रह गए। राजनीतिज्ञों के प्रोत्साहन से हुए ज़माखोरी, कालाबाज़ार आदि से आक्रान्त एवं बढ़ती महंगाई से त्रस्त मानव ने बन्द, हड़ताल, प्रदर्शनी आदि से अपना आक्रोश व्यक्त करने लगा। गुजरात में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुए आन्दोलन इसका परिणाम है। भिगड़ते इस सामाजिक एवं राजनीतिक दृश्यों को देखकर इंदिरा गांधी ने सन् 1975 में आपातकाल की घोषणा की। इन कांग्रसीय नीतियों से आक्रोश बनी जनता अपने मत को अगले चुनाव में स्पष्ट व्यक्त किया अर्थात् अगले चुनाव में कई कांग्रेसी नेता पराजित हो गए। बाद में जनता पार्टी शासन में आ गए। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपने डायरी में लिखा था - "मैं ने सोचा था कि एक प्रजातंत्र में प्रधानमंत्री किसी जनतांत्रिक आन्दोलन को दबाने केलिए साधारण - असाधारण कानून का सहारा ले सकती हैं पर वह स्वयं प्रजातंत्र को ध्वस्त करके उसके स्थान पर अपनी तानाशाही को प्रतिष्ठित करेंगी। यदि ऐसा करेंगी तो मुझे विश्वास था कि उनके वरिष्ठ सहयोगी, उनकी उच्च जनतांत्रिक परंपरा वाली पार्टी ऐसा नहीं करने देगी, लेकिन ऐसा हुआ और मेरा पूर्वानुमान गलत निकला।"[1]

मगर नवगठित सत्ता के जन प्रतिनिधि फिर अपने-अपने स्वार्थों के वशीभूत कटने-मरने लगे, लगभग दो वर्ष के जनोन्मुख शासन के

---

[1]. नरेन्द्र सिंह - साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना -पृ.125

उपरांत अनुशासनहीनता ने आन्तरिक फूट को जन्म दिया। फलस्वरूप सरकार शिथिल हो गई। उस समय चौधरी शरण सिंह अवसरवादी राजनीति करते हुए प्रधानमंत्री बने लेकिन वे अपने - आप को कामयाब बनाने की कोशिश करते हुए भी वह पूर्ण रूप से उस लक्ष्य की तरफ पहूँच न पाई।

मध्यावधि चुनाव हुआ, और पूरे देश में राजनीतिक अनस्थिरता का दौर चल पड़ा, वह अनस्थिरता लोकसभा से विधान सभा तक आज भी कायम है। आपातकाल, आम चुनाव के परिणाम, परिवर्तित शासन व्यवस्था के आचरण, मध्यावधि चुनाव और 1980 ई. में हुए आम चुनाव में कांग्रेस पार्टी के आगमन ने देश के आम और प्रबुद्ध नागरिकों की चिंतन-व्यवस्था हिला दी।

इस समय पंजाब के विभिन्न सिख नेताओं ने खालिस्तान के आवश्यक को सामने रखा। इस घटना को सन्त भिंडरावाले ने पूरी तरह अपनी कर्मों से पंजाब को रक्त का प्रतीक बना दिया। आतंक के इस वातावरण ने राजनीति को भी त्रस्त करा दिया, उस समय उग्रवादियों का केन्द्र था स्वर्ण मन्दिर। पाकिस्तान भी उसके पूर्ण रूप से सहायता केलिए मौजूद था। लेकिन सन् 1984 में केन्द्र सरकार ने ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार के द्वारा स्वर्ण मन्दिर को पूर्ण रूप से विद्रोह वादियों के नियंत्रण से मुक्त कराया। पूरे भारत में इसकी विभिन्न प्रकार से प्रतिक्रियाएँ हुई।

इसी बीच 1985 को श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या हुई। इस घटना ने भारतीय जनता में सरकारी सुरक्षा के प्रति विश्वासहीनता पैदा की। उस समय दिल्ली एवं अन्य प्रदेशों में सिखों पर अत्याचार होता रहा। जनताओं के मन में राजनीतिज्ञों के प्रति अवज्ञा, विरोधी भावना एवं गंभीर चिन्ता फैल गया।

उसके बाद तो राजीव गांधी सत्ता में आसीन हुए। उनके मन में भारत को लेकर अनेक स्वप्न थे लेकिन वह सभी स्वप्न शीघ्र ही कागज़ी सिद्ध हुए। उस समय तो पंजाब, असम, बोडोलैण्ड, उत्तराखण्ड और झारखण्ड की समस्याऐं बुलन्द हुए। राम जन्म भूमि की समस्या भी उभर आयी। इससे साम्प्रदायिकता का लहर तेज़ हो गए। प्रशासन में असफलता एवं आर्थिक विषमता के साथ ही बोफोर्स तोप -सौदे ने राजीव गांधी की शासन व्यवस्थाओं पर अनेक आशंकाएँ पैदा कर दिए थे। बाद में 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा शासन में आया। इसके नेता विश्वनाथ प्रतापसिंह ने अनेक नई पद्धतियों को पूरा कराने की घोषणा की। लेकिन यह सरकार अपनी योजनाओं की पूर्ती कराने में पराजित हुए। मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के निर्णय के कारण यह सरकार केवल ग्यारह महीने तक ही सत्ता में रहा था। स्थिति की लाभ उठाते हुए चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री बने। इस सरकार ने तो प्रजातंत्र के ऐतिहासिक महत्त्व को ही तोड़ डाला गया। यह काल तो राजनीतिक भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता का उत्तम प्रस्तुती है। बाद में सन् 1991 में नरसिंहराव सरकार अधिकार में आया। उनके पाँच वर्ष

के शासन काल में अनेक नये परिष्कारों को देश में लागू करने की कोशिश की गयी थी लेकिन समाज के बिगड़े हुए हालत या पैसे के लालच ने अनेक राजनीतिज्ञों को भ्रष्ट युक्त बनाया था। इसलिए यह काल भी पूर्ण रूप से भ्रष्टता के नई तरीके ही स्थापित किए थे।

सन् 2010 तक पहूँचे हुए हमारे राजनीतिक परिदृश्य को देखने से पता चलता है कि देश की अखंडता को स्थापित करने में प्रयत्न करने वाले हमारे सत्ताधिकारियों ने ही हमारे समाज को वर्गों में बाँटा, देश में निर्धनता, महँगाई, काला धन, कर-वंचना आदि समस्याएँ बढ़ने लगे और राजनीति तो केवल हिंसा एवं स्वार्थ के एक खुला मंच ही बन गया।

1.3.2. सामाजिक परिवेश

सामाजिक परिवेश का मतलब सामुदायिक जीवन से है। सामाजिक व्यवस्था का नियम पूर्ण रूप से इस प्रकार है कि व्यक्ति की सुरक्षा बनी रहे। एक प्रज्ज्वल समाज की निर्मिती के आरंभिक काल में सामुदायिक व्यवस्था का स्वरूप सरल था। लेकिन अंतिम चार दशकों में आर्थिक संस्कृति के बढ़ रहे प्रसार तथा व्यर्थ सरकारी नीतियों ने क्रमश: समाज-व्यवस्था को और भी जटिल बना दिया है। आज तो समाज विभिन्न आर्थिक दलों में अधिक विभक्त हो रहा है।

समाज की इस वर्ग व्यवस्था में निरंतर निम्न वर्ग शोषण का शिकार होते है और आज भी हो रहा है। मध्यवर्ग तो समाज को अराजक बनाने में लगा है। उच्चवर्ग तो हमेशा की तरह आज भी भोग, शोषण, स्वार्थ, अहंकार, धनलोलुप और व्यभिचार में डूबा है। आज भी समाज के नब्बे प्रतिशत साधारण और महंगे वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण इन लोगों के हाथ में है। फलस्वरूप कालाबाज़ारी, महँगाई, भ्रष्टाचार तो ज़ोरों पर है।

इस परिवेश की व्यस्थाओं में पड़कर आज सहज मानव गायब हो गया है। नगरीकरण के आकर्षण ने गाँव के लोगों को शहर की ओर अत्यधिक तीव्र गति से खींचते है। ऊँची इमारते, चौड़ी सड़कें चमकता प्रकाश आदि साधारण गाँव वासियों को महानगर की ओर आकर्षित करते है तो इससे अनेक समस्यायें यानी आवास, यातायात, पर्यावरण संबंधी, बेकारी, निर्धनता भी गंभीर हो रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता के चंगूल में फँसे महानगर आकर्षित संस्कृति का पर्याय बन गए हैं। वहाँ अपराध, स्त्री-पुरुषों के संबंधों के अनेक नए दृश्य भी देख सकते है।

नगरीकरण, आधुनिकीकरण और औद्योगिकरण आदि का तीव्रतम प्रभाव तो परिवार पर ही पड़ा है। महानगरीय जीवन में परिवार नहीं के बराबर है।[1] आधुनिक युग में परिवार में सन्तुलन और

---

[1] डॉ.ज्ञानवती अरोड़ा - समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध - पृ.109.

अनुकूल के अभाव के कारण संयुक्त परिवार में भी परिवर्तन अनिवार्य हो गया है। सदियों तक पारिवारिक संरचना में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ जिससे पति-पत्नी को अपनी समाज एवं परिवार के द्वारा अपेक्षित भूमिका को निभाने में कठिनाई का अनुभव हुआ। परन्तु “आज सामाजिक परिस्थितियों में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों के फल स्वरूप पति-पत्नी केलिए यह अनुमान करना भी कठिन होता जा रहा है कि उनसे किस भूमिका, किस कार्य या कैसे व्यवहार की अपेक्षा की जी रही है। आधुनिक सभ्यता का एक दुर्निवार परिणाम यह पारिवारिक विघटन है।”[1] पारिवारिक विघटन का अर्थ पति-पत्नी के संबंध की टूटन से ही नहीं है। अपितु परिवार के सभी सदस्यों के बीच के पारिवारिक संबंध के बिखराव से भी है। नगर की महँगाई तथा उन्नत जीवन स्तर ने पति-पत्नी को कामकाजी बना दिया। परिवार छिद्र होने की प्रक्रिया आजकल तो ज़ोरों पर है।

परिवार के परम्परागत स्वरूप का ह्रास होने के कारण व्यक्ति स्वतंत्र हो गया है। तत्स्वरूप व्यक्तिगत रुचि महत्त्वपूर्ण हो गई। भारतीय पारिवारिक संस्था में हुए परिवर्तन के साथ ही समाज में नारी संबंधी धारणाएँ भी बदल गयी। अंग्रेज़ी शिक्षा, ईसाई मिशनरियों के कार्य, सामाजिक संस्थाओं की स्थापना, विज्ञान की प्रगति से हुई बौद्धिक जागरण आदि ने सामाजिक स्तर पर लोगों को पुन: सोचने

---

[1] डॉ.मंजू शर्मा - साठोत्तरी महिला कहानीकार - पृ. 2.

पर मज़बूर किया। फलस्वरूप नारी स्वयं अपने व्यक्तित्व, स्वतंत्रता एवं अधिकारों से सचेत हुई। इस बदले परिवेश ने समाज एवं परिवार की आर्थिक संरचना में बहुत बदलाव भी लाए।

औद्योगिक संस्कृति कुटीर उद्योगों के सर्वनाश पर लगे रहते हैं। जहाँ पारिवारिक विघटन बढ़ी वहीं मुनाफाखोरी की प्रवृत्तियाँ भी बढ़ी। इस मशीनीकरण को स्वीकार करते हुए उसे अत्यधिक श्रेष्ठ स्थान ही दिया गया है।

उत्पादन से अर्थव्यवस्था बनती है और उससे ही सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन प्रक्रियाओं का निर्धारण होता है। पूँजीवादी व्यवस्था ने मनुष्य के स्वतंत्र चिंतन को चोट पहूँचाई है। उसका चिंतन स्वतंत्र न रहकर धनाश्रित हो गया है। आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन होने से कानून, राजनीति, दर्शन, धर्म, साहित्य आदि सभी का स्वरूप बदल जाता है। डॉ.नगेन्द्र के शब्दों में "अर्थव्यवस्था की नींव पर मानव की विभिन्न बौद्धिक और रागात्मक प्रवृत्तियों -अर्थात् दर्शन, विज्ञान, धर्म, संस्कृति तथा कला-साहित्य आदि की अधिरचना होती है।"[1]

आर्थिक परिवेश युगीन परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। इसी तरह समकालीन आर्थिक परिवेश अपने इतिहास की उपज है। इस

---

[1] डॉ.नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र - पृ.65

आर्थिक परिवेश में परिवर्तन का एक लंबा इतिहास है। दो विश्वयुद्धों ने समस्त विश्व की आर्थिक स्थिति को भयंकर क्षति पहूँचाई। अनेक दुखद मौतें, परिवारों के उजड़ने से संबंधों का टूटना, व्यापार, उद्योग-धन्धों की प्रतियोगितावादी भावना ने इंसानियत का गला घोट दिया है। सभी आदर्श, सामाजिक मूल्य तथा सिद्धांत भी आज बेमानी हो गये है।

वैज्ञानिक प्रगति के अत्यंत तीक्ष्ण रूप आज अमरीका में देख सकते है। अमरीका अन्तरीक्ष में सैनिक अड्डे स्थापित करने के प्रयास कर रहा है। उसने लेज़र किरणों द्वारा युद्ध करने का आविष्कार किया है। अमरीका ही नहीं सभी राज्य भी एटम बम से लाख गुना क्षमता वाले हज़ारों बमों के निर्माण में है। अतः हर वक्त एक विश्वयुद्ध होने की संभावना है।

संचार माध्यमों की अन्तरीक्ष पहूँच इस दशक की सबसे बड़ी सामाजिक-सांस्कृतिक वृद्धि है। इससे पश्चिमी संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर गहरा असर पड़ा है। उपग्रह चैनल के दौर ने व्यक्ति को सक्रिय संपर्कों से अलग करने तथा नागरिक बोध को नष्ट करने में काफी कार्य किया है। इससे परिवार में होते हुए भी व्यक्ति की व्यक्तिवादी सोच का विस्तार होता है। फलस्वरूप आजकल तो सामाजिकता के आधारों पर कई तरह शोषण हुआ है।

1.3.3. आर्थिक परिवेश

अर्थव्यवस्था सामाजिक संरचना के एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भारतीय दर्शन में भी चार पुरुषार्थ को महत्त्व दिया गया है जिनमें अर्थ का सर्वव्यापक प्रभाव हानि से सभी देश पीड़ित थे। भारत की दशा भी कुछ भिन्न नहीं थे। यहाँ की भी अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गए थे। मध्यवर्ग इस स्थिति में पूरी तरह फाँसे हुए थे। पूँजीवादी व्यवस्था की सही चेहरा सामने भी आया।

स्वतंत्रता के बाद भारत के अधिकतर नागरिक शरणार्थी तथा विस्थापित बन गए थे। देश-विभाजन अर्थव्यवस्था के पुन: ध्वंस का एक बड़ा कारण है। स्वतंत्र भारत का नागरिक अनेक अर्थों में पुराने दासत्वों को छोड़कर अनेक नये दासत्व ग्रहण करने लगे थे। इस के फलस्वरूप जीवन-मूल्यों का विघटन और अनेक अन्तर्विरोधों में गिरता हुआ व्यक्ति भारतीय अर्थ व्यवस्था के लिए एक लंबा प्रश्न चिह्न था।

इसके बाद भी सोवियत रूस की त्वरित आर्थिक प्रगति से प्रभावित होकर, उसे अपना आदर्श मानते हुए भारत ने भी विकास केलिए योजनाबद्ध कार्य किया। शीघ्रातिशीघ्र प्रगति केलिए पंचवर्षीय योजनाऐं भी बनाई गयी। पंचवर्षीय योजनाओं के परिणामस्वरूप कृषि एवं उद्योगों का विकास भी थोड़ा बहुत हुआ। राष्ट्रीय और वैयक्तिक दोनों स्तर पर आय की वृद्धि हुई। इससे बचने केलिए भारत ने

विदेशों से भी ऋण ले लिया था। भूमि सुधार कानूनों के कारण किसान लोग अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गए। समय बदल जाने पर आयोजित कार्यक्रमों का निर्वहण करने में सरकार पूरी तरह सफल नहीं हुआ इसके कारण जन-जीवन कोई उल्लेखनीय सफलता तक नहीं पहूँच पाई। इसका मुख्य कारण जनसंख्या विस्फोटन था।

सन् 1970 के बाद आर्थिक विपन्नता और बढ़ने लगी। चीन, पाकिस्तान और बंगलादेश से संबंधित युद्ध के छाया तो थोड़ा निकले गए थे फिर भी इन सब दु:ख को भोगकर भारत की धरती को वे खोखला कर गये थे। महंगाई, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि ने तो गंभीर संकट की स्थिति उत्पन्न कर लिए थे।

रुपये की क्रय-विक्रय बढ़ने के साथ करों के बोझ से आम जनता भी त्रस्त हो रहे थे। सरकार की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने वाले पंचवर्षीय योजनाऐं जैसे नीतियाँ इस दशक में भी ऊँचाईयों तक नहीं उड़ सका। शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा का महत्त्व एवं प्रधानता समाप्त होने लगे। आदर्शों के भिखराव ने व्यक्ति को स्वार्थ बनाया। फलस्वरूप वह केवल अर्थ के ही पूजारी बन गए।

अस्सी के दशक में स्थिति और भी खतरनाक हो गयी। इस दशक में राजनेताओं ने चुनाव के नाम पर व्यापारी-उद्योगपतियों से चन्दा लेने के साथ सुरक्षा और अन्य उद्देश्यों से विदेशों से की

जानेवाली खरीद को भी धन एकत्रित करने का माध्यम बनाया। मतलब यह है कि देश के बड़े-बड़े धनिकों और काला धन अर्जित करने वालों को राजनीतिज्ञों का पूरी सहयोग प्राप्त है। इस प्रकार किया जानेवाले क्रय पर अब भारी कमीशन तो लिया जाने लगा है। उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों से मग्न चुनाव आजकल भ्रष्ट चुनाव ही नहीं अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र से युक्त चुनाव है। इन सभी का कारण तो नैतिकता के पतन है।

सन् 1990 होने तक सात पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हुई। सन् 1951 में शुरू हुई इसकी पहली लक्ष्य था किसानों को प्राथमिकता देना। दूसरी योजना में औद्योगिक योजनाओं की वृद्धि को प्रमुखता दिया। तीसरी में अर्थव्यवस्था को ऊचाई में पहूँचाने की कोशिश हुई लेकिन सन् 1962 के चीन के आक्रमण और 1965 के पाकिस्तान के संघर्षों ने इस योजना को पूरी तरह पराजित कर दिया। चौथी तथा पाँचवीं योजना में कीमतों में स्थिरता लाना, गरीबी के उन्मूलन पर विशेष बल दिया। लेकिन सन् 1971 में हुए इन्टो-पाक युद्ध ने चौथी योजना को असफल बनाया। छठी योजना देश के आधारभूत ढाँचे में बदलाव लाने को अपना लक्ष्य मानते थे। सातवीं योजना निरक्षरता को मिटाना चाहते थे तो आठवीं उत्पादन में 5.6 प्रतिशत की वृद्धि की परिकल्पना पर योजित किया था नौवीं और दसवीं में तो उत्पादन 8 प्रतिशत तक पहूँचाना उसका लक्ष्य था। सन् 2007 से 2012 तक की

ग्यारहवीं योजना तो उत्पादन 8.1 प्रतिशत तक पहूँचाने तक लगे हुए थे। मूल रूप में कहें तो भारतीय योजनाएँ मुख्य तौर पर आर्थिक कठिनाईयों, रोज़गार के अवसरों पर वृद्धि लाने, निम्न लोगों की विकास को केन्द्र बिन्दु मानते है। किन्तु इनमें से किसी एक पर भी पूरी सफलता तो हासिल नहीं हुई ।

महँगाई के कारण योजनाएँ सब बेकार हो गयी। इसके बढ़ते प्रभाव ने ही भ्रष्टाचार को जन्म दिया था। सन् 2010 के जनसंख्या गणना के फलानुसार भारत में 1.15 बिलियन लोग है। इन में 9.40 प्रतिशत लोग बेरोज़गार भी है। जनसंख्या की गणना में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर आज विराजित है। यह सब भारत की अर्थव्यवस्था को भारी तौर पर क्षीण बनाती है।

आज भी भारत विदेशों के कर्ज़दार है। नियमित रूप से देश में मिलने वाले आय का ज़्यादातर भाग आज भी ऋण चुकाने केलिए इस्तेमाल करते है। इस तरह साफ रूप से दृष्टव्य है कि भारत की अर्थव्यवस्था गंभीर स्थिति पर है।

1.3.4. सांस्कृतिक परिवेश

'संस्कृति' शब्द का अर्थ 'सुरुचि' या 'परिष्कृति' से है। संस्कृति में वे सब विशिष्टताएँ सम्मिलित है जो सामूहिक जीवन की उत्कृष्ट उपलब्धियाँ है जैसे - कला, संगीत, साहित्य, दर्शन आदि। समाज के

अंग होने वाले मानव समाज से जो कुछ भी अर्जित करते है जैसे - ज्ञान, विश्वास, नैतिकता, कानून, रिवाज़ आदि भी संस्कृति के ही अन्तर्गत आने वाला है।

संस्कृति के उत्कृष्ट स्वरूप को समझते हुए हिन्दी के विख्यात विद्वान डॉ.नगेन्द्र का मानना है कि - "संस्कृति का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म एवं जटिल है। सामान्य अर्थ में संस्कृत अवस्था का नाम ही संस्कृति है - अर्थात संस्कृति मानव-जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत राग-द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है। यह परिमार्जन, यह संस्कार, उसे अपनी स्वभावगत इच्छा-आकांक्षाओं, प्रवृत्ति-निवृत्तियों के उचित सामंजस्य द्वारा करना पड़ता है।.... मनुष्य को राग विराग में संयम और समन्वय की आवश्यकता पड़ती है; उनको व्यष्टि तल से उठाकर समष्टि तल पर लाना होता है, अपने को दूसरे की सापेक्षता में देखना पड़ता है। यहीं संस्कृति का जन्म होता है।..... संस्कृति की साधना केलिए जीवन के अन्तस्तल में प्रवेश करना होता है। स्थूल आवरण के पीछे मानवता का जो सत्य, शिव और सुन्दर रूप छिपा होता है, संस्कृति उसको ही पहचानने का प्रयत्न करती है। जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर बढ़ना ही उसका ध्येय है। यह संस्कृति की आंतरिक धारणा है। संस्कृति के बहिरंग तत्व है - आचार-विचार, विश्वास,

परंपराएँ, शिल्प-कौशल और माध्यम है - कला, साहित्य आदि।"[1] संस्कृति के अन्तमुर्खी एवं बहिरंगी तत्त्वों को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में नगेन्द्र ने स्पष्ट की है।

भारतीय संस्कृति विश्वविख्यात संस्कृति है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीय संस्कृति की सदा विशेष प्रशंसा की है लेकिन प्राचिन भारतीय संस्कृति धारा का यह विशिष्ट रूप जिसे देखकर विदेशी विद्वान ढंग हो उठे थे आज हमारे सामज में नहीं के बराबर है। फिर भी भारत में सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया पाश्चात्य लोक के संपर्क से ही प्रारंभ हुई थी। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव ने भारतीय समाज को आधुनिक विचारधारा में आकर खड़ा कर दिया था। इसके फलस्वरूप पाश्चात्य जीवन मूल्य और विचारधाराओं को हम अपनी सांस्कृतिक धारा को जीवन्त रखने में सहायक तत्त्वों के रूप में स्वीकार कर लिए थे। [2]

कालान्तर में पश्चिम में हुई वैज्ञानिक प्रगति ने भारतीय दृष्टिकोण को भी भौतिकवादी बना दिया। अठारहवीं शताब्दी तक भारत की जनता पारलौकिक सत्ता पर तीव्र विश्वास करनेवाले थे। वह ईश्वर के पूजारी थे, पृथ्वी की पूजारी थे, चन्द्रमा और जीव जन्तुओं के पूजारी थे। मनुष्य का विश्वास था कि पृथ्वी तथा वहाँ के जीव-

[1] डॉ.नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र - पृ.8

[2] डॉ.ज्ञानवती अरोड़ा - समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध - पृ.10

जन्तुओं की सृष्टि ईश्वर करते हैं और कर रहे हैं। युग-युगों के इस विश्वास पर पहली बार प्रश्न-चिह्न लगाया विज्ञान ने। कोपरनिकस और गलीलियो ने सबसे पहले सूर्य और भूमि संबंधी धारणा पर विचार करके बताया कि सूर्य ही सब कुछ है। उपग्रहों में एक है भूमि। लेकिन फलस्वरूप गलीलियो को मृत्युदंड ही मिला। इसके उपरांत दूसरा महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार था डारविन का परिणाम सिद्धान्त। उसने स्पष्ट किया कि प्रपंच सृष्टि के पीछे कोई ईश्वर नहीं वह युग युगों के परिणामों का परिणाम है। विज्ञान विश्वास पर अधिष्ठित नहीं प्रमाण पर अधिष्ठित है। इसलिए तार्किक है। चन्द्रमा को ईश्वर मानकर व्रतानुष्ठान करनेवाले लाखों - करोड़ों जनता केलिए यह सब चौकाने वाले यथार्थ था। आगे जनता समझने लगा कि उसकी भौतिक समस्याओं की समाधान धर्म तथा ईश्वर के पास नहीं है। इसका बाद भी भारतीय चिन्तन के क्षितिज मार्क्स तथा फ्रॉयड जैसे चिन्तकों के विचारों पर आकर्षित था। इसके साथ ही कीर्केगदि, सात्र जैसे अस्तित्ववादी विचारों ने भी भारतीय चिन्तन को प्रभावित किया है। इन सब के फलस्वरूप यह सिद्ध हुआ कि मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। मानव के आन्तरिक और अचेतन मन के ऊपर विचार शुरू हुआ। इस प्रकार परंपरागत भारतीय संस्कृति को निरर्थकता से मुक्त करके तत्कालीन जीवन सन्दर्भ में प्रासंगिक बनाने की आधुनिकीकरण की

प्रक्रिया यद्यपि स्वतन्त्रतापूर्व ही प्रारंभ हो गई थी फिर भी अंग्रेज़ी शिक्षा ने उसे अधिक तीव्र गति तो प्रदान की।[1]

देश में हुए औद्योगिकरण ने पूरे संस्कृति को एक नया आयाम दिया। औद्योगिक क्रांति और अणुयुग की दर्दमयी परिस्थितियों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति और आधुनिकता से उत्पन्न द्वन्द्व ने समाज में एक संक्रांति उपस्थित कर दी। देश विभाजन के कारण उत्पन्न विघटनकारी प्रवृत्तियों के फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन हो गया था।[2]

आदर्श पारिवारिक संबंधों से बनी भारतीय संस्कृति विश्व भर में प्रसिद्ध है। प्रेम और विश्वास पर आधारित संयुक्त पारिवारिक संबंध दृढ़ता, ममता, स्निग्धता, त्यागमयता एवं दयालुता का भी प्रतीक है। आर्थिक कमज़ोरी और असुरक्षा से मुक्त संयुक्त परिवार आज विघटित हो गया है। समाज में कृषि का स्थान नौकरी पेशा और व्यवसाय ने ले लिया। अर्थ की महत्त्व बढ़ने से दूसरों को दु:ख बाँटने की भावना समाप्त हो गई। अणु परिवार में पिता अपने बच्चों से आशा करता है कि वृद्धावस्था में वे काम आएगे। इसलिए वह काफी सहन करते हुए उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त कराते है। लेकिन मानवीय संबंधों एवं मूल्यों के हृदय पक्ष एवं सामाजिक महत्त्व से अनवगत

[1] रजनीश कुमार - हिन्दी कहानी के आन्दोलन - उपलब्धियाँ और सीमाएँ - पृ.6-7

[2] राजेन्द्र यादव - हिन्दी कहानी : स्वरूप और संवेदना - पृ.37

बच्चे ये सब केवल माता-पिता के धर्म ही मानते है। उनमें कोई प्रतिबद्धता की बात वह नहीं मानते। इसी चित्तावस्था के कारण बहुएँ भी अपनी स्वतंत्रता के छीन जाने के भय से और आर्थिक व्यय की वृद्धि के डर से सास ससुर को बोझ मानते है। इस प्रकार दया, करुणा, प्रेम विश्वास, अहिंसा एवं सहानुभूति आदि मूल्यों पर आधारित गरिमामय भारतीय सांस्कृतिक परंपरा बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की वैश्विक एवं देशी परिस्थितियों और विचारधाराओं के प्रभाव के झोंकों से अपने को बचा नहीं पाई।

कालान्तर में भारतीय समाज में नगरीकरण और औद्योगीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी। जिससे गाँव के लोग कस्बों और कस्बों के लोग नगरों - महानगरों की ओर भागने लगे। जनसंख्या के दबाव, नई शिक्षा पद्धति के प्रभाव और पश्चिमी संस्कृति के संपर्क ने महानगरों में एक ऐसा मध्य वर्ग को जन्म दिया जो न तो पूरी तरह पश्चिमी रंग में रंगे है और न परम्परागत भारतीय मूल्यों से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। महानगरों की व्यस्त जीवन मे पहूँचने वाले मनुष्य प्राचीन सांस्कृतिक चैतन्य का संवाहन करने वाले पर्व, मेले, अनुष्ठान और अन्य सहज व्यापारों के प्रति भी उदासीन था। औद्योगिक नगर में पहूँचने वाले व्यक्ति समाज की आर्थिक क्रांति में सदा के लिए जुड़ता है।

विकसित होता हुआ औद्योगिकरण ने आजकल नई नागरिक सभ्यता को जन्म दिया है। आज मनुष्य मूल्यों को जीवन स्थितियों के अनुरूप बना लेता है।[1] आज हमारा समाज तकनीक के द्रुत विकास से दूषित हो गया है। आज रिश्तों में बड़ा भारी परिवर्तन हो रहा है, पारिवारिक संबंध भी पूरी तरह से दूषित है। तकनीकी ज्ञान-विज्ञान के नए उपकरणों, मशीनों, रोग उपचार विधि आदि भी परंपरागत जीवन मूल्यों को मूल्यहीन एवं असंगत ठहराने में समर्थ हुए है। तकनॉलॉजी के विकास ने गर्भ निरोधक वस्तुओं, डिबांशय बैकों के द्वारा मातृत्व संबंधी यौन शुचिता संबंधी सभी पुरातन मान्यताओं की व्यवस्था को ध्वस्त कर डाला है।[2]

बीसवीं शती के नब्बे के दशक तक आते -आते भूमण्डलीकरण के दौर में उदारीकरण भी शुरू हो गया। मुक्त बाज़ार की भावना इससे ही उत्पन्न है। इस तरह खुले बाज़ार की अवधारणा से ओत-प्रोत वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रवृत्ति ने दुनिया के सामाजिक, आर्थिक ही नहीं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी उथल-पुथल मचा दिया। इसका स्पष्ट प्रमाण है उपभोग संस्कृति। इसके फलस्वरूप देश में गरीबी अत्यधिक ढंग से बढ़ी।

आज का बाज़ार का संचालन तो अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वबैंक और विश्वव्यापार संगठन ही कर रहे है। इनके कर्ज़ से दबे देश इनके

[1] Rajendra Pandey – Modernisation and social change – P.66

[2] Same – P. 242

शर्तों को मानने केलिए सदा विवश होते है। आज तो भारत भी इस विवशता के शिकार है। आज भारत के सभी चीज़ दरअसल में बिकाऊ है - हमारे गाँव, श्वेत-खलिहान, पानी सब। भोगीय संस्कृति के शिकार होते हम अपने संवेदनाओं और कल्पनाओं की भी बिक्री की। इससे हमारी भाषा और संस्कृति पर गहरा ठेस पहूँचा। आज तो प्रकृति की संतुलन भी विचारणीय है। इस संदर्भ में सुधीश पचौरी का यह कथन अत्यन्त श्रेष्ठ है - "भूमंडलीयता में संस्कृति एक उद्योग है, उत्पाद है, पण्य है, ब्रांड है। संस्कृति में इन तमाम कलाकर्मों को शामिल करें जो प्रकृति की पुनर्रचना करने का काम करते हैं। विश्व पूँजीवाद ने प्रकृति के क्षेत्र को भी डस लिया है और उस सांस्कृतिक कर्म के क्षेत्र को भी ग्रस लिया है, जिसे अमेरिकी उत्तर-आधुनिक मार्क्सवादी विद्वान फ्रेडरिक जेम्सन 'दूसरी प्रकृति' कहते हैं।"[1] इससे तात्पर्य है कि आज के बिखड़ी हुई संस्कृति के कारण भूमंडलीकरण है। फलस्वरूप आज की हमारी संस्कृति हाइपर मार्केट या बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल की संस्कृति है।

1.3.5. धार्मिक परिवेश

भारतीय समाज में धर्म को अत्यधिक प्रज्ज्वल स्थान दिया गया है। विविधता में एकता को बरकरार रखने वाले भारत संपूर्ण समाज केलिए धर्मनिरपेक्षता का प्रतीक है। इस एकता भाव को तोड़ने

---

[1] सुधीश पचौरी - भूमण्डलीकरण और उत्तर- सांस्कृतिक विमर्श - पृ.15

का साजिश हर युग में मौज़ूद भी था। भिगराव का एकमात्र माध्यम सभी समय में धर्म ही था।

पुराने ज़माने में भी सामाजिक एकता को तोड़ने के लिए उच्चवर्गों ने लोगों को वर्ग और वर्ण पर आधारित भँटवारा कर दिया। इन विभिन्न वर्गों के आचार-विचार भी भिन्न थे। लेकिन इन वर्गों के बीच में अधिकतर आचार दुराचार होने से समाज के निम्नवर्गों की स्थिति अत्यधिक गंभीर थी।

बिगड़े गये इस वर्गों को सही राह दिखाने केलिए विवेकानंद, दयानन्द सरस्वती, योगी अरविंद, महात्मागाँधी, अम्बेड़कर, श्री नारायण गुरु आदि लोगों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। इन युग प्रवर्तकों ने समाज को समझाया कि मानव को मानव ही समझना है, वर्ण और वर्ग इसका आधार नहीं है। फिर भी इन लोगों के कोशिश पूरी तरह सफल नहीं हुआ।

1947 में भारत विदेशी शक्तियों से स्वतंत्र हुआ। लेकिन एक घोर धार्मिक विभाजन वहाँ शुरू हुआ। इसका आँग अभी बुझे नहीं है।

विभाजन से उत्पन्न घोर विभीषिका के साथ 1984 में हुए सिख हत्याकांड, 1991 में हुए बाबरी मस्जि़द ध्वंस, कश्मीर अयोध्या, गोधरा जैसी घटनाएँ इन दंगों के रूप को और भी भयानक बना दिया।

आज के समकालीन युग में भी इसका कोई अंत नहीं के बराबर है।

समकालीन समाज में जाति एवं धर्म को राजनैतिक लोक एक सशक्त अस्त्र के रूप में अपनाते है। अपने काम की निवृत्ति केलिए निष्कलंक जनता के ऊपर जातिवाद और साम्प्रदायिकता के जहर डालकर उन्हें आपसी फूट में लगाकर देश की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शक्ति एवं महत्ता को वे लोग क्षति पहूँचाते हैं। जनता को साम्प्रदायिक दलों में बँट देने से राष्ट्र दुर्बल हो जाता है जिसके कारण हमारे देश प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने में असमर्थ रह जाता है। लेकिन राजनीतिक नेताओं को अपनी हस्ती सुरक्षित रखने केलिए देश की ऐसी स्थिति आवश्यक है। अत: आज राजनीति जातियता की लकीर पर आगे बढ़ती है। पार्टी लोगों का एकमात्र लक्ष्य है चुनाव में जीतना। जिस जाति के लोग को एक इलाके में बल है. उसी जातिवाले वहाँ इलक्शन केलिए खड़े होते है। इसके साथ ही साथ हमारे समाज में आधुनिक भगवानों की कतार में वृद्धि हुई है। राजनैतिक क्षेत्र में आज हमारे देश में बाबाओं का वर्चस्व छिपा हुआ नहीं है।[1]

जातियता से उत्पन्न अस्पृश्य भावना को कम करने केलिए कई कानून भी बनाया है, और कई समाजवादी चिन्तकों ने अन्तर्जातीय

[1] The King Maker Chandra Swami – Hindu (weekly) December – 1996 -– P.22-23

विवाह पर बल भी दिया जाता है। फिर भी धार्मिक संघर्ष कई रूप में समाज में आज भी मौजूद है।

1.4. <u>हिन्दी कहानी : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण</u>

विभिन्न साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा कहानी अत्यधिक श्रेष्ठ सामाजिक विधा है। इसका एक उज्ज्वल प्रमाण है निम्न पंक्ति - “कहानी व्यक्ति के सुख-दुःखों की कथा है।”[1] इसमें व्यक्त दुखों की व्यक्तिकरण मानव के मन को हल्का बनाकर एक नयी स्फूर्ति प्रदान करती है।

कहानी एक प्राचीन विधा है। एक रचनात्मक विधा के रूप में इसका अस्तित्व लगभग 100-150 वर्ष पुरानी है। इसके द्वारा रूस, फ्रांस, इंग्लैंड ने अनेक विशिष्ट कहानीकारों को जन्म भी दिया है। परन्तु अमेरिका में आधुनिक काल में ही पर्याप्त रूप में कहानी विधा का विकास हुआ था। यहाँ इरविंग हॉथॉर्न तथा पो जैसे महान कहानीकारों ने इस विधा को प्रतिष्ठित करने केलिए अत्यन्त प्रयत्न भी किए थे।

इन सब से विभिन्न हिन्दी कथा-विधा का विकास तो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक चली आ रही पद्य-विधा को पीछे छोड़कर ही

---

[1] Isac Dinesan – Down Home – cover page.
“All sorrows can be borne if you put them in a story.”

हुआ। इस काल में जो कहानियाँ रचे गए थे वह सब कल्पना पर आधारित एवं घटना-चमत्कार को प्राधान्य देने वाला था। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (सन् 1901), रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903), बंग महिला कृत 'दुलाईवाली' (सन् 1907) ये कहानियाँ चमत्कार एवं कौतूहलता से अलग थी फिर भी आलोचकों ने इसे वास्तविक कहानी का दर्जा नहीं दिया।

हिन्दी की पहली मौलिक कहानी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' (सन् 1916) है। जिसने हिन्दी कहानी के विकास को नयी दिशा दी।

हिन्दी कहानी के एक प्राज्ज्वल्यमान सितारे है श्री जयशंकर प्रसाद। इन के जीवन काल भारत में अनेक विदेशी एवं देशी शक्तियों का आक्रमण का काल था। इन्होंने ग्राम, आकाशद्वीप, पुरस्कार, छाया, प्रतिध्वनि, महुवा, इन्द्रजाल आदि महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखकर कहानी के विकास में ऐतिहासिक योगदान दिया। यह एक सफल एवं समृद्ध कहानीकार है इन्होंने हिन्दी कहानी विधा को गतिशील भी बनाया है फिर भी इन की रचना में ऐतिहासिकता अधिक थी तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का अभाव इस में सर्वत्र था। प्रसाद के बाद सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा, विश्वंभरनाथ शर्मा

कौशिक, चतुरसेन आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी कहानी को आदर्शवादी यथार्थ और सुधारवाद की ओर मुड़ा दिया।

हिन्दी कहानी के विकास में प्रेमचन्द का योगदान सर्वथा सराहनीय है। "प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को विश्व साहित्य की कहानियों,उपन्यासों के समकक्ष बनाया और उनमें प्रगतिवादी विचारधारा की स्थापना करके किसानों - मज़दूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया।"[1] प्रेमचन्द ने साधारण बोलचाल की भाषा को कमज़ोर वर्ग की वाणी बनाकर समाज पर हो रहे अत्याचार एवं धार्मिक रूढ़ियों पर तीव्र व्यंग्य किया। प्रेमचन्द के बाद जितनी भी कहानी आन्दोलन हुए है वह सभी किसी न किसी रूप से प्रेमचन्द के लेखन को ही आधार के रूप में माने जाते है।

प्रेमचन्द सुधारवादी युग के कलाकार थे। इन्होंने कहानी कला को आदर्शवादी परंपरा से आगे बढ़ाकर यथार्थ एवं वैज्ञानिक यथार्थवादी की ओर उन्मुख कर दिया। इन नवीन संकेतों एवं सत्यों को लेकर कहानी-क्षेत्र में नये कथाकार आगे बढ़े। इन लेखकों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अज्ञेय और उपेन्द्रनाथ अश्क महत्त्वपूर्ण है। प्रेमचन्द के बाद के इस युग को संक्रांति युग भी कह सकते हैं। इस समय में कई दर्शनों (मनोविज्ञान, साम्यवाद, यौन वाद) का प्रभाव इस

---

[1] बलराज पाण्डेय - कहानी आन्दोलन की भूमिका - पृ.30

विधा में पढ़ने के साथ-साथ 1936 में प्रगति लेखक संघ की स्थापना हुई। इससे यहाँ प्रगतिवाद का उदय हुआ।[1]

सन् 1947 में देश की स्वतंत्रता के साथ देश-विभाजन की त्रासदी, उससे उत्पन्न शरणार्थी समस्या, साम्प्रदायिक दंगे, हत्या, लूटपाट, आग-बलात्कार की घटनाएँ, स्वार्थों की टकराहट आदि समस्याओं ने समाज के साथ साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन कर दिया। इन घटनाओं ने कहानी विधा के क्षेत्र में 'नयी कहानी' की पृष्ठभूमि तैयार की। नयी कहानी के प्रवर्तक स्तम्बों के रूप में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, और मोहन राकेश को माना जाता है।

नयी कहानी ने नए संदर्भों के सफल चित्रण केलिए कहानी के शास्त्रीय एवं शिल्पगत ढाँचे को बदलवा दिया। इस संदर्भ में नामवर सिंह का कहना है - "किसी समय मनोरंजक, नाटकीय और कुतूहलपूर्ण घटना संघटन को ही कथानक समझा जाता था और आज घटना संघटन इतना विघटित हो गया है कि लोगों को अधिकाँश कहानियों में 'कथानक' नाम की चीज़ मिलती ही नहीं, इसी को कुछ लोग कथानक का ह्रास कहते है। परन्तु वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं, बल्कि 'कथा' का हुआ है और जीवन का एक लघु प्रसंग खण्ड, मूड विचार अथवा व्यक्ति-चरित्र ही कथानक बन गया है,

[1] डॉ.हेतु भारद्वाज - हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास - पृ.44

अथवा उसे कथानक की क्षमता मान ली गई है।"[1] नामवर जी के मतानुसार नयी कहानीकार कहानी को नहीं भोगे हुए यथार्थ को मुख्य मानते है।

कहानी के क्षेत्र में अनेक वैविध्यपूर्ण परिवर्तन लाने वाले इस आन्दोलन ने कहानी साहित्य को अत्यन्त तीव्र बनाया। इसलिए अनेक कहानीकार इससे जुड़े हुए थे। फिर भी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का चित्रण यानी उसका व्यापक फलक सिमटकर स्त्री-पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति मात्र रह गया। इसलिए कालांतर में यह आन्दोलन बिखर गये। इसके उपरांत रवीन्द्र कालिया के नेतृत्व में अकहानी, महीपसिंह के नेतृत्व में सचेतन कहानी, अमृतराय के नेतृत्व में सहज कहानी, कमलेश्वर के नेतृत्व में समान्तर कहानी, राकेश वत्स के नेतृत्व में सक्रिय कहानी, साधारण जनता को प्रमुखता देनेवाली जनवादी कहानी आदि आन्दोलन ही हिन्दी कहानी साहित्य को आगे बढ़ाया था। यह सभी आन्दोलन लगभग 1950 से 1980-82 तक ज़ारी था।

लेकिन 1982 में दक्षिण प्रदेशों में हुई कॉग्रेस की हार, 1984 में हुई भोपाल गैस त्रासदी, बाद में नरसिंह राव के शासन काल में अमेरिकी नीति के तहत उदित हुई उदारीकरण की प्रक्रिया ने जन मानस वाकई गंभीर रूप से हिला ही दिया। इसका प्रभाव साहित्य पर

---

[1] डॉ.नामवर सिंह - कहानी : नयी कहानी - पृ.20-21

भी पड़ा। वास्तव में समकालीन कहानी के अंतर्गत नयी कहानी आन्दोलन के अंतर्गत लिखी गई कहानियों के साथ-साथ साठोत्तर काल में लिखी गई कहानियाँ भी सम्मिलित है। किन्तु 1980 के बाद दुनिया के हर क्षेत्र उदारीकरण का शिकार होने लगा। इस चंगूल से मुक्ति केलिए हर तरफ से उभरा विद्रोह के स्वर साहित्य में भी अत्यन्त तीव्र रूप से अभिव्यक्त होने लगा। सांस्कृतिक घातक से समाज को बचाने केलिए उत्पन्न यह संघर्ष साहित्य को अत्यन्त प्रज्ज्वल ही बनाया है। इसीलिए साहित्य में समकालीनता का गंभीर रूप 1980 के बाद से ही शुरू होता है।

1.5. <u>समकालीन हिन्दी कहानी</u>

साहित्य की विशिष्टता उसकी अनवरतता है। जब तक जीवन है, जब तक मनुष्य के पास भाषा है, संवेदना है तब तक अनन्तकाल तक साहित्य अविरल गति से प्रवहमान रहेगी। यह भी सत्य है कि उसके कलेवर नवीन परिवेश के अनुसार बदलती रहती है। इसलिए समकालीन लेखक को अपने परिवेश से बंध कर चलना पड़ रहा है। समाज के प्रति ईमानदारी और भविष्य को प्रज्ज्वल बनाने की कामना रखने वाले लेखक अपनी रचना को अपने युग परिवेश से जोड़ते है। इन लेखकों के तूलिकाओं से उत्पन्न विभिन्न साहित्यिक उपलब्धियों को ही आज समकालीन साहित्य कहते है।

संघर्ष एवं प्रतिरोध मानव की स्वाभाविक वृत्ति है। यह वृत्ति समकालीन साहित्य में हर कहीं विद्‌यमान है। समकालीन साहित्य जो उपन्यास हो, कहानी हो, नाटक या कविता हो इन सब की पृष्ठभूमि पर विचार करें तो बढ़ता हुआ आतंकवाद, भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद का आक्रमण, उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार, आज़ादी से मोहभंग, दो-दो प्रधानमंत्रियों की हत्या, विभिन्न राजनैतिक दलों की सरकारों की असफलताएँ और उनके छद्‌म, भ्रष्टाचार, दलाली, रिश्वतखोरी, नैतिक मूल्यों का पतन, साम्प्रदायिक दंगे, धार्मिक कट्‌टरता का आधिक्य, मीडिया और जनसंचार माध्यमों का दुरुपयोग, राजनीति का अपराधीकरण, दलित और नारियों पर अत्याचार जातिवाद का आतंक आदि ऐसे अवस्थाऐं है जो समकालीन साहित्य की ज़मीन तैयार करती है।

समकालीन साहित्य न तो स्तब्ध करती है न पाठक का मनोरंजन करती है बल्कि वह समाज में हो रही यथार्थ के चित्रीकरण से पाठक को झकझोरने की कोशिश करते है। यह विद्रोह या आक्रोश की भावना दमित आशाओं का ही प्रतिफलन है। फलस्वरूप यह स्पष्ट रूप में बता सकते है कि भ्रष्ट व्यवस्था का प्रतिरोध ही समकालीन साहित्य है।

समकालीन कहानी यथार्थ का सीधा प्रस्तुतीकरण है। यह युग जीवन का लगभग समस्त समस्याओं को अपने साथ जोड़कर ही चलती है। पिछले युग की अपेक्षा नये-नये विषयों की अभिव्यक्ति समकालीन हिन्दी कहानी की मात्र विशेषता है। जीवन के हर पहलू को झाँकना- टटोलना, उसका परीक्षण निरीक्षण करना उससे भविष्य में होनेवाली विनाश से सचेत बनाना आदि समकालीन कहानी का लक्ष्य है। समकालीन कहानी में एक अन्वेषण भी पाए जाते है। यह अन्वेषण परंपरागत मूल्यों और मानों के आधार पर नहीं बल्कि उत्तराधुनिक समय में उभरे नए-नए जीवन के नए मानदंडों के आधार पर है।

1.6. <u>समकालीन हिन्दी कहानी की प्रवृत्तियाँ</u>

समकालीन हिन्दी कहानी समाज में हो रही विभिन्न विभीषिकाओं एवं अमानवीय प्रवृत्तियों के प्रति तीखे रूप में अपना विद्रोह जाहिर करते है। वर्तमान साहित्य के यह विद्रोही स्वर विभिन्न विमर्शों एवं प्रवृत्तियों के रूप में समकालीन कहानी में आज मौज़ूद है। इन में प्रमुख है नवउपनिवेशवाद। आज हमारे देश के भीतर एक वर्चस्ववादी शक्ति कायम है। हमारी संपूर्ण पृथ्वी को मंडी बनाने वाले इस तीव्र अपसंस्कृति को आलंकारिक रूप में हम भूमंडलीकरण कहते है। इस नवउपनिवेशिक युग में मनुष्य की सारी परंपरागत धारणाएँ एवं रीतियाँ पाश्चात्य समाज के अनुरूप बदल रहा है। पाश्चात्य

समाज के इस बाज़ारीपन के अंग होने वाले आज के मनुष्य अपने अस्तित्व को भी खो कर जीते है। इस अर्थ केन्द्रित समाज ने हमारे बच्चे, स्त्री, प्रकृति, धर्म सभी को माल मात्र के रूप में बदल डाला है। समकालीन कहानी वैश्वीकरण के इस भयंकर प्रभावों के प्रति घोर विद्रोह को प्रस्तुत करते है। उदय प्रकाश की 'और अंत में प्रार्थना', जितेन्द्र भाटिया की 'चक्रव्यूह',असगर तजाहत की 'स्विमिंग पूल' आदि कहानियाँ इसका स्पष्ट उदाहरण है।

समकालीन हिन्दी कहानी की प्रमुख दूसरी प्रवृत्ति है स्त्री विमर्श। वर्तमान कहानी में नारी लेखिकाओं की एक खास पहचान है। पुरुष को केन्द्र के रूप में मानने वाले समाज के प्रति वह पहले भी विद्रोहित थी और आज भी विद्रोहित है। कामकाजी बना वर्तमान नारी के आर्थिक स्तर काफी समुन्नत होने के कारण पुराने ज़माने से समकालीन नारी काफी स्वतंत्र भी है लेकिन आधुनिक नारी के स्वतंत्रता की राह को बिगाड़ते हुए नवउपनिवेशिक चाल ने उसे आज ब्रांड के रूप में बदल डाला है। समकालीन नारीवादी लेखिकाओं अपनी रचनाओं के द्वारा शिथिल सामाजिक मूल्यों की पुन: प्रतिष्ठा की कोशिश में है । मृणाल पाण्डे की 'एक थी हंसमुख थे', चित्र मुद्गल की 'दरम्यान', मंजुल भगत की 'चिथड़ा गुड़िया' आदि कहानियाँ इसका स्पष्ट उदाहरण है।

समकालीन हिन्दी कहानी की एक ओर प्रज्ज्वल प्रवृत्ति है दलित विमर्श। सामाजिक पिछडेपन की प्रतिनिधि होने वाले यह वर्ग आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में शोषण का शिकार है। सदियों से दलित साहित्यकार इस समाज को सचेत बनाने की कोशिश के तहत समकालीन दलित कहानियों में अपने ऊपर हो रहे सभी अमानवीयता के प्रति तीक्ष्ण विद्रोह देख सकते है। फलतः समकालीन दलित समाज अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से सचेत है। रजत रानी मीनू की 'गिरोह', 'सुनीता', अजय नावारिया की 'पटकथा', 'एक धम्म सनतनो', सूरजपाल चौहान की 'नया ब्राह्मण' आदि कहानियाँ संघर्ष भरी दलित जीवन का दस्तावेज़ है।

समकालीन हिन्दी कहानी में चर्चा के केन्द्र बनी एक विषय है - पारिस्थितिक विमर्श। प्रकृति के समक्ष मानव तुच्छ ही है इस सत्य को न मानने वाले वर्तमान मनुष्य आज अपने ही जन्म दाता के नाशक बने हुए है। समकालीन रचनाकार अपनी रचनाओं के द्वारा पर्यावरण के प्रति वर्तमान समाज को सचेत बनाने की कोशिश में है। चित्रा मुद्गल की 'जिनावर', 'जंगल', रवीन्द्र कालिया की 'सुन्दरी' आदि अनेक कहानियों में अपने प्रकृति के ऊपर लोक के मन में चेतना जगाने का वर्तमान रचनाकारों द्वारा प्रयत्न देख सकते है।

नवउपनिवेश के उपभोग संस्कृति के अंगी बने मनुष्य मात्र प्रकृति के ही नहीं आवश्यक के अनुसार मनुष्य का भी उपयोग करके उनके जरूरत पूर्ण होने पर उसे तीखे शब्दों में तिरस्कृत भी करते है। समाज में इस तीक्ष्ण क्रूरता के शिकार होने वाले एक विभाग है वृद्ध। शानी की 'एक नाव के यात्री', राजी सेठ की 'उतनी दूर', सुदर्शन वशिष्ठ की 'बार में बूढ़ा', अमृतराय की 'आँख मिचौनी'. शरद सिंह की 'बंद घड़ी' आदि अनेक कहानियाँ वृद्ध जीवन की मानसिक व्यथाओं पर चित्रित है।

हमारे पृथ्वी के आदिम अधिकारी है आदिवासी जन लेकिन वर्तमान समाज के भ्रष्ट राजनीति एवं जाति के जंजाल मे पड़कर यह विभाग भी आज शोषित है। संजीव की 'आप यहाँ है', 'घर चलो दुलारीबाई', मेहरून्निसा परवेज की 'सू की बयड़ी', 'जंगली हिरनी' आदि अनेक कहानियाँ आदिवासी जीवन की करुण कथाओं को ही प्रस्तुत करते है।

समकालीन समाज के बाज़ारवाद को अपनाते हुए आगे बढ़ने वाली आदमी के समक्ष परिवार का कोई मूल्य नहीं है। वह केवल पूरे बाज़ार को एवं सुख सुविधाओं को घर में पहूँचाने केलिए मात्र पैसा कमाना अपना उद्देश्य मानते है। उनके इस बदलती चिंताओं से भारी क्षति पहूँचने वाले एक नवपीढ़ि है बच्चे। शकुन्तला वर्मा की 'हार की जीत', अलका पाठक की 'तितली और बाबू', कमला चमोला की 'वक्त की सूझ' आदि कहानियाँ बदलते माहौल में बच्चों की मानसिक

स्थिति को ही चित्रित करती है। इस नवउपनिवेशिक वातावरण में स्पष्ट शब्दों में व्यक्त है कि समाज का कोई भी क्षेत्र इससे मुक्त नहीं है अर्थात् विकलांग भी। वर्तमान समाज के घोर तिरस्कार के अंग बनी एक लघु सांस्कृतिक वर्ग है - हिजडाऐं। इनकी व्यथाऐं भी समकालीन कहानी के विषय है। अतः समकालीन हिन्दी कहानी वर्तमान समाज के हर वर्गों के व्यथाओं को चित्रित करने में सफल है।

1.7. <u>समकालीन हिन्दी कहानियों का शैल्पिक पक्ष</u>

हर साहित्यिक विधाओं की तरह कहानी की भी एक रूप विधान होती है। समकालीन कहानी अपनी शैल्पिक विभिन्नता एवं विशेषताओं से भरे हुए एक विधा है। समकालीन कहानी की भाषा अत्यन्त तेज़ है। अतः यह तेज़ रूप वर्तमान कहानी की सभी विशेषताओं को ओर भी प्रज्ज्वल बनाती है।

<u>निष्कर्ष</u>

समकालीन साहित्य अपने समय की यथार्थों का सच्चा रेखांकन है। समकालीन रचनाकार आम आदमी को अपने भविष्य के प्रति सोचने पर मज़बूर बनाते है। इस प्रकार रचनाकारों ने अपनी शिथिल संस्कृति के प्रति आवाज़ उड़ाते हुए समकालीन हिन्दी कहानी में अनेक विमर्शों को जन्म दिया है - जैसे नवउपनिवेशवाद, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, लोकचेतना आदि।

अध्याय तीन

समकालीन कहानी में स्त्री विमर्श

अध्याय - 2

समकालीन हिन्दी कहानी में नवउपनिवेश का प्रतिरोध

विकास हर देश का सपना है। अपने को अत्यधिक ढंग से प्रबुद्ध बनाने केलिए हर देश सदा प्रयत्न रत है। समृद्धि एवं विश्वशक्ति की बात लेकर उस समय जो भी इन विकासशील देशों से अपनी रिश्ता जोड़ना चाहते है उसका खुलकर स्वागत करना भी स्वाभाविक है। समृद्धि के तमाम उपलब्धियों को हासिल किए हुए वर्तमान मनुष्य अपने आसपास की तरफ देखने लगे तो पाए कि संपूर्ण विश्व एक वैश्विक युग के अंगी बन गए है। इसका कार्यक्षेत्र केवल तकनीक, निवेश और निर्माण तक सीमित न होकर युद्ध, आक्रमण, नरसंहार और विनाश आदि को प्रोत्साहित करना भी है। हमारे भूमि को मंडी बनाने वाले इस भूमंडलीकरण की गति का रुकाव आज नामुमकिन बात बन गयी है। राजनीति और आर्थिक नीतियों को पूरी तरह अपने अनुरूप बनाने वाले इस नव पश्चिमीकरण का भारत उद्गम स्वातंत्र्योत्तर समय है।

2.1. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति - एक मूल्यांकन

राजनीति में प्रत्येक देश की अस्मिता छिपी रहती है। अनेक सालों के संघर्षों के उपरांत भारत को अपनी अस्मिता सुख-दुःख के

मिलाव के साथ 15 अगस्त 1947 को प्राप्त हुआ। सुख की स्थिति पस्चिमी शक्ति से मुक्ति की है तो दुख की स्थिति उन्हीं के ही दूसरी चाल-खून युक्त सांप्रदायिकता है। इस परिस्थिति को व्यक्त करती हुई कीर्ति केसर का कहना है - "15 अगस्त 1947 को विभाजन विधिवत् घोषित कर दिया गया और सत्ता का हस्तांतरण भारत और पाकिस्तान की दो सरकारों के बीच कर दिया गया। इस प्रकार हमारी राजनैतिक चेतना के विकास का लगभग 50 वर्षों का इतिहास अंतिम दौर में साम्प्रदायिक उन्माद के कारण मानवता के खून में डूब गया और वह त्रासदी घटित हुई जिसके त्रास को अंकित या चित्रित करने में शब्द भण्डार भी असमर्थ है।"[1] इस समय अनेक शरणार्थी भारत के अंग हो गए।

इसके साथ ही स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक स्तर पर अनेक परिवर्तन घटित हो गए थे। स्वतंत्रता के बाद आए राजनीतिक क्षेत्र जवाहर लाल नेहरू का था। नेहरूजी की यातनाएँ उच्च स्तर की थे फिर भी उनके पार्टी के सदस्य अंग्रेज़ी सरकार के समान था। राजनीति से मिले हुए कोई भी सदस्य जनता से जुडकर उनकी परेशानियों को समझना आवश्यक नहीं मानते थे। पुलिस भी जनता की समस्याओं के प्रति श्रद्धावान नहीं थे। इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार भी बढ़ने लगे। बाद में हुए द्वितीय विश्व युद्ध के साथ लाइसेंस कोटा कंट्रोल प्रणाली की

---

[1] कीर्ति केसर - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन - पृ.167

शुरूआत हुई। अत्यावश्यक वस्तुओं की दुर्लभता बढ़ने लगे, कर की दरों में वृद्धि होने से प्रशासनिक क्षेत्र अधिक भ्रष्ट होने लगे। परिणामत: स्वातंत्र्योत्तर भारत की पहले राजनीतिक क्षेत्र ही अनैतिकता से युक्त थे।

धार्मिक स्तर के लिए श्रेष्ठ बने भारत की निडरता को छोट पहूँचाने वाले अंग्रेज़ी कुत्सित षड्यंत्र उसी वक्त ही तेज़ था। सन् 1950 तक को अनेक सांप्रदायिक ढंगे भारत में हो गये थे। जब तक भारत है तब तक उसकी नींव शिथिल होने केलिए यह अंग्रेज़ी के चाल होने के साथ ही आरंभ से अपने ही देश के राजनीतिज्ञ अपनी पार्टी की वृद्धि केलिए इसका भरपूर इस्तेमाल करते हुए देख सकते है। सन् 1961 में जबलपूर में अत्यधिक ढंगे हो गए थे। यह धीरे-धीरे केरल, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, उड़ीसा जैसे देशों में भी फैलने लगे।

सन् 1950 में तमिलनाडु में द्राविड़ मुन्नेन कड़गम नामक एक पार्टी उभर कर आयी। यह उत्तर भारतीय ब्राह्मण विरोधी भी थे। इसका उद्देश्य द्राविड़ों केलिए एक राष्ट्र की मांग था लेकिन धीरे-धीरे इनके यह विरोधी स्वरूप खत्म हो गए। लेकिन धर्म को नींव बनाकर राजनीतिज्ञों के कारण उस समय से आरंभ हुए प्रज्ज्वल समस्या है काश्मीर की समस्या। कश्मीर के मुस्लीम जनता के केन्द्र रूप शेख अब्दुल्ला का मानना था कि हिन्दी के लोग कश्मीर की स्वतंत्रता का

हनन करेंगे इसलिए 1953 में वे एक स्वतंत्र राष्ट्र की माँग करते हुए सामने आए। बाद में उन्हें तो खामोश किया लेकिन काश्मीर की मुस्लीमों का शक बरकरार था जिसका परिणाम है आगे के समय में आयी आतंकवादी गतिविधियाँ।

आज पाकिस्तान अनेक आतंकवादी जुटों का क्षेत्र है - अलगवैदा, लष्करीतोयबा, अलउमर मुजाहिदीन आदि इनमें प्रमुख हैं। जेहाद के नाम पर भी वहाँ आतंकवादी हमले होते है। जहाँ महिलाएँ बुर्का न पहने जाते उसे खुले आम ये लोग मार दिए जाते है। इसके विरुद्ध शब्द उठाने की ताकत वहाँ किसी को भी नहीं है। भारत की प्राकृतिक सुन्दरता केलिए श्रेष्ठ पाकिस्तान आज धार्मिक उन्माद का क्षेत्र है।

सन् 1957 में ग्रामो में शिक्षा के स्तर को ऊपर उड़ाने के लिए और किसानों को आगे बढ़ाने केलिए बलवंतराय मेहता की परिश्रम से पंचायतों का गढ़न किया गया। फिर भी वास्तविकता कुछ और थी। राज्य सरकार पंचायती राज के कामों और शक्ति पर अंकुश लगाने के कारण पैसों की कमी से किसानों को आत्महत्या केलिए प्रेरित किया गया। फलतः पंचायती राज में जो अधिकार था वह सिर्फ पूँजीपतियों केलिए मात्र था।

सन् 1962 में भारत और चीन के साथ युद्ध भी हुआ। सन् 1965 में भारत को भारी सूखे का भी सामना करना पड़ा। अन्न की

कमी किसानों का नाश, पश्चिमी षड्यंत्र उदारीकरण से सहयोग पाकर भी अर्थव्यवस्था का निरंतर बिगड़ाव आदि से कांग्रेस के ऊपर से जनता का विश्वास टूट गया।

सन् 1969 में भारत और पाकिस्तान की अधिक ढंगों से नक्सलवाद का आरंभ एवं वृद्धि ही हुई थी। बाद में सन् 1971 में बंगाल से आए शरणार्थियों की बेरोज़गारी की समस्या एवं देश में जाति के नाम पर हो रहे शोषण को खत्म करने में इन्दिरा गाँधी भी सफल नहीं हुए। 1973 में बढ़ती तेल संकट से पेट्रोलियम उत्पादक वस्तुओं की कीमत 22 प्रतिशत बढ़ने लगी। बिगडे हुए माहौल को ठीक करने का एक ओर प्रयत्न था आपातकाल को लागू करना। आरंभ में जनता भी इसके सहयोगी थे क्योंकि उन्हें लगा कि इससे राजनीति का क्षेत्र शुद्ध हो जाएँगे लेकिन जनता की धारणा गलत साबित होता गया। वे इनके प्रति प्रतिशोध करने लगे। इन सभी से तो औद्योगिक अशांति ही उत्पन्न हुई थी और "1972-1973 में देश में विभिन्न भागों में हड़तालों की लहर चलने लगी। इसकी चरम परिणति मई 1974 की अखिल भारतीय रेलवे हड़ताल ही था।"[1] इससे प्रेरणा पाकर सन् 1974 में गुजरात, बिहार में जन आन्दोलन हुए थे। सन् 1976 में संजय गाँधी ने 'चारसूत्री' - विवाह में दहेज लेने पर रोक, परिवार योजना और परिवार में होने वाले बच्चों की संख्या को कम

---

[1] विपिन चन्द्र - आज़ादी के बाद का भारत - पृ.330

करना, वृक्ष लगाना और साक्षर होना आदि पद्धतियों पर भी जनता विद्रोह करते थे। क्योंकि इन सबको लागू करने केलिए दमन का इस्तेमाल ही ज़्यादा किया था।

सन् 1980 में पंजाब में आतंकवादियों का आक्रमण हुआ। सन् 1983 में ए.एस.अटवाल जो पुलिस के महानिदेशक थे स्वर्ण मन्दिर से वापस आते वक्त इनकी हत्या आतंकवादियों से हुई। सन् 1984 में आतंकवादी हमले से स्वर्ण मन्दिर में फँसे एक हज़ार लोगों को बचाने केलिए 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' की कार्यप्रणाली चला दी गयी। इससे अन्दर भिंडरावाले और उनके नेतृत्व में जो आतंकवादी थे उन सबकी हत्या हो गयी। इसके बाद अयोध्या की समस्या सामने आयी। इसकी पृष्ठभूमि का आरंभ सोलहवीं शताब्दी का है। उस समय बाबर के एक गवर्नर के द्वारा बनाया गया बाबरी मस्जिद पर उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दुओं द्वारा कहा गया कि इस जगह में पहले राम मन्दिर स्थित था। सन् 1980-84 तक तो यह प्रश्न विभिन्न चर्चाओं से आगे बढ़ा तो बाद में विश्व हिन्दु परिषद ने इस प्रश्न को राजनीति से जोड़ते हुए यह उद्घोषित किया कि राम मन्दिर यहीं पर बनेगा। इसकी नतीजा है गोधरा कांड, गुजरात में हुई भारी हिंसा।

इसके बाद तो 31 अक्तूबर 1985 को इन्दिरा गांधी की हत्या दो सुरक्षा गार्डों के हाथों से हुई। बाद का समय राजीव गाँधी का था।

लेकिन इसी समय 'भोपाल गैस' त्रासदी हुई। जिसकी पीड़ा से आज तक न सरकार निकल पाया न वहाँ की जनता। राजीव गाँधी समाज एवं प्रकृति को बचाने केलिए अनेक योजनाएँ लागू की जैसे पर्यावरण की संरक्षण, खेत क्रांति, जवाहर रोज़गार योजना और इसके साथ बढ़ते आर्थिक अभाव को दूर करने केलिए वे विदेशी नीतियों को भारत में अपनाने का प्रयत्न भी किए। लेकिन इस समय में गुजरात, महाराष्ट्रा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश आदि देशों में अवैध हथियारों का आयात होता था। इन देशों में हथियार को उपलब्ध कराने के केन्द्र स्रोत पश्चिमी राज्य थे। सन् 1983 में पुलिस द्वारा जब्त किए विदेशी रिवॉल्वर 11 था तो सन् 1985 तक पहूँचकर ये 70 हो गए। तो आज की स्थिति क्या होगी। इसके फलस्वरूप 1991 में आतंकवादियों का शिकार राजीव गाँधी भी हो गए।

इसके बाद जनता दल के वी.पी.सिंह जो सन् 1989 से 1990 तक सत्ता के केन्द्र में थे तो समाजवादी जनता पार्टी के चन्द्रशेखर 1990 से 1991 तक भारत के शासक बने । इन दोनों ने अपनी नीतियों के तहत भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की पूरी कोशिश की। तदुपरांत सन् 1996 तक का समय पी.वी. नरसिंह राव का था। इस समय की सरकार की एक भारी समस्या सन् 1992 में बाबरी मस्जिद का गिराव था। संचार माध्यम अत्यधिक प्रबल होने से अपनी रेटिंग बढाने के होट में वे भी इस घटना का अधिक उपयोग

किया। फलत: जनता पूर्ण रूप में आक्रांतित थे। फिर भी राजीव गाँधी ने जो प्रयत्न भारत केलिए उठाए थे उसे सफल बनाने की पूरी कोशिश करने के कारण इसे राष्ट्रीय स्तर के चाणक्य के रूप में माने जाते है।

बाद में आए भारतीय जनता पार्टी के अटल बिहारी वाजपेय सन् 1996 में और सन् 1998 से 2004 तक भी सत्ता के केन्द्र थे। इन्होने अपने शासन काल में भारत और पाकिस्तान के शत्रुता भाव को कम करने केलिए सुदृढ़ प्रयत्न किए। सन् 1999 फरवरी में इन्होंने पाकिस्तान पर मित्रता कायम करने केलिए बस यात्रा भी की। लेकिन सन् 2001 दिसंबर में नयी दिल्ली के संसद में आतंकवादियों द्वारा हमला हुआ। बहुत से सैनिक भी मारे गए। 12 मार्च 2003 में इराक-अमेरिका के बीच युद्ध हुआ लेकिन प्रधानमंत्री मा. अटल बिहारी वाजपेय ने लोकसभा में बयान दिया कि भारत इसके विरोधी है। इसलिए इन कार्यप्रणाली में भारत शामिल नहीं होंगे। इसके बारे में नया ज्ञानोदय के संपादक प्रभाकर श्रोतीय का मानना है - "भूमंडल के विश्व व्यापार और आकाशगामी सूचना प्रौद्योगिकी पर उसका एकछत्र अधिकार है। हाल ही में उसने अफगानियों के बाद इराकियों के शव के अम्बारों पर सिंहासन सजाया है। वह निश्चय ही एक प्रचंड मिथक-पुरुष है, जिससे संसार भयाक्रांत।"[1] वास्तव में यह इस युद्ध की

[1] नया ज्ञानोदय- मई 2003 - पृ.6

सच्चाई है। इसके बाद 22 मई 2004 से मई 2014 तक इण्डयन नैशनल काँग्रेस के मनमोहन सिंह भारत की प्रधानमंत्री रहे। उन्होंने सन् 2005 में नैशनल रूरल हेल्थ मिशन का आरंभ किया। आँध्राप्रदेश, बीहार, गुजरात, उड़ीसा, पंजाब, महाराष्ट्रा, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश आदि स्थलों में आई.आई.टी का आरंभ किया। उन्होंने भारत की आर्थिक स्तर को दृढ़ बनाने केलिए उदारीकरण एवं निजीकरण को बढ़ोत्तरी दी। इस समय आतंकवादी हमले एवं काश्मीर के प्रश्न भी अत्यधिक ज़ोरों पर थे। सन् 2004 में एशिया में हुई सुनामी की लहर ने भारत को अधिक त्रस्त भी किया था। सन् 2008 में फिर से मुम्बई में पाकिस्तानियों के द्वारा हमला हुआ और 200 लोग मारे गए।

बाद में मई 2014 से भारतीय जनता पार्टी के नरेन्द्र मोदी भारत के प्रधान मंत्री के पद पर आसीन हुई। जन धन योजना, स्वच्छ भारत अभियान, क्लीन गंगा प्रोजक्ट आदि उनकी अब तक की प्रधान योजनाएँ है। इन अनेक योजनाओं के तहत अब भारत की स्थिति कुछ ऐसा है कि बुलेटप्रूफ जैकेट पहने हुए व्यक्ति भी आज सुरक्षित नहीं है, आज हर स्वतंत्रता दिवस विदेशी आक्रमण की डर से ही गुज़ते है। सड़कों में भी ध्वंस एवं बलात्कार आज हो रहे है।

2.2. वैश्वीकरण में फँसा भारत की अर्थव्यवस्था

1980 के दशक में दुनिया में तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई जिनके परिणाम स्वरूप दुनिया एक नये दौर में चल पड़ी।

इनमें पहला है 'सोवियत गुट' के देशों के खेमे ने अपने प्रतिद्वन्द्वी - अमेरिकी गुट के सामने समर्पण कर दिया और स्वयं सोवियत संघ भी टूट गया। परिणाम के रूप में तीसरी दुनिया के देशों की विकसित देशों के साथ सौदेबाज़ी की क्षमता बुरी तरह प्रभावित हुई, क्योंकि वे अब दो साम्राज्यवादी खेमों की प्रतिद्वन्द्विता से फायदा उठाने की स्थिति में नहीं रह गये थे। इसके अतिरिक्त पश्चिमी पूँजीवाद का एक प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी, चीन भी विकास के समाजवादी रास्ते को छोड़ते हुए 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में दोनों साम्राज्यवादी गुटों के प्रति सैद्धांतिक विरोध की अपनी नीति को तिलांजलि दे चुका था। इसप्रकार अमेरिका की अणुआई वाला विकसित पश्चिमी देशों का गुट अब जिस स्थिति में पहूँच गया था कि विश्व अर्थव्यवस्था को अपने हिसाब से चला सकता था।

दूसरे कारण, तीसरी दुनिया के ज़्यादातर देशों की अर्थव्यवस्थाएँ भीषण संकट से गुज़र रही थीं। इनमें से अधिकतर देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के प्रथम दो दशकों के शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी उभारों की लहर के दौरान औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पायी थी। 1970 के दशक तक आते-आते औपनिवेशिक युग अंतिम अवस्था में थे। नये नये आज़ाद होने वाले ज़्यादातर देशों में वहाँ के शासकों ने अपेक्षाकृत स्वायत्त पूँजीवादी विकास के रास्ते को अपनाया। लेकिन इसके विपरीत 20 वीं सदी के मध्य में आकर पूँजीवादी विकास की

राह पर बढ़ना शुरू किया तो उनके लिए ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा था, जिसे लूटकर वे अपने विकास का पथ प्रशस्त करें। फलतः 1970 के दशक के अंत में आकर ये मॉडल विफल रहा। तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाएँ संकटग्रस्त हो गयी। उरुग्वे के विख्यात लेखक एडुआर्डो गैलियोनो ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'ओपन वेन्स ऑफ लैटिन अमेरिका' में लातिन अमेरिका के पिछड़ेपन (जो तीसरी दुनिया के देशों के साथ भी लागू है) के सन्दर्भ में लिखा है - "हमारी पराजय हमेशा दूसरों की विजय में अन्तर्निहित रही है। हमारी सम्पत्ति, दूसरों की - बड़े साम्राज्यों और उनके सहज उत्तराधिकारियों की समृद्धि को लगातार सिंचित करते हुए हमारे लिये गरीबी उपजाती रही है।"[1]

सन् 1970 की इस आर्थिक संकट से निकलने केलिए उसके शासक वर्ग विकसित पूँजीवादी देश से कर्ज़ लेने लगे। नीरजा जैन कर्ज़ की परिभाषा देते हुए कहते है - "आन्तरिक तथा बाह्य ऋण में एक फर्क होता है। जब एक व्यवसायी आन्तरिक ऋण लेता है और उसे ऋण चुकाना होता है तो प्रक्रिया बहुत सरल होती है ..... वह उसी मुद्रा में भुगतान करता है जिसमें कि उसने कर्ज़ लिया था। लेकिन यदि एक व्यवसायी विदेशी स्रोत से ऋण लेता है तो वह सिर्फ विदेशी मुद्रा में ही कर्ज अदा कर सकता है। अतः यदि कर्ज लिया गया धन आन्तरिक विकास में मदद करे, तब भी, कर्ज को तब तक

[1] एडुआर्डो गैलियोनो - ओपन वेन्स ऑफ लैटिन अमेरिका - पृ.12

वापस नहीं दिया जा सकता है, जब तक कि निर्यात पर्याप्त रूप से न बढ़ जाये, जिससे आवश्यक विदेशी पूँजी प्राप्त की जा सके।"[1] इस तरह तीसरी दुनिया निर्यात कर्ज़ों को अदा करने केलिए अपर्याप्त था। धीरे-धीरे कर्ज़ बढ़ ही गया। "1982 तक तीसरी दुनिया के देशों द्वारा, अमेरिकी, यूरोपीय एवं जापानी बैंकों से लिया गया ऋण 785 अरब डॉलर के गुणनचुम्बी आँकड़े तक आ गया था।"[2]

तीसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि विकसित देशों - अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान की अर्थव्यवस्थाएँ खुद गहरे संकट में फँस गयीं। पूँजीवाद मुनाफे के अतिसंचयन की प्रक्रिया का नाम है। मुनाफा कमाने केलिए ही पूँजी का निवेश होता है। इसके लिए निवेश बाज़ार की ही ज़रूरत होती है। यह सफल हो जाए तो निवेश की हुई पूँजी से मुनाफा पैदा होता है जो आगे के निवेश में होता है। इस क्रिया का अंत बाज़ार की माँग के अधिक उत्पादन में ही होता है। इस अवस्था को मन्दी कहा जाता है। इसके लिए पूँजीवादी व्यवस्था के बाहर से मदद लेनी पड़ती है जैसे कि तकनीकी विकास, जिससे निवेश का अधिक अवसर प्राप्त होता है। 19 वीं सदी में आधारभूत उद्योगों, रेलवे तथा संरचनागत क्षेत्रों के निर्माण केलिए अधिक पूँजी की

---

[1] नीरजा जैन - वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण - पृ.10

[2] वाल्डेन बेलो और डार्क विक्ट्री - द यू एस स्ट्रक्चरल एडजस्टमेण्ड एण्ड ग्लोबव पॉवर्टी - पृ.69

आवश्यकता थी। परिणाम के रूप में संचयीकरण के रूप में आए संकट अल्पकालिक थे। निवेश के अवसर असीमित प्रतीत हो रहे थे।

20वीं सदी के आते-आते पूँजीवादी देशों में पूँजीवाद की कई नए बदलाव आ चुके थे। 19वीं सदी में छोटी कम्पनियाँ खत्म हो चुकी थी और उनका स्थान बड़े उद्‍यम ने ले लिए। इससे अधिक पूँजी प्राप्त हुई। इन नयी परिस्थितियों में पूँजीवाद के सामने एक नयी समस्या खड़ी हो गयी थी वह यह था - लगातार बढ़ते लाभ से इकट्‍ठा होती पूँजी को दोबारा निवेश करने का लाभप्रद अवसर कहाँ से पैदा किया जाए। आधारभूत उद्‍योग और आधारभूत ढाँचा पहले ही था। 20 वीं सदी की शुरूआत में हुई यह अवस्था स्थायी मन्दी में परिणत हो गया।

यह समस्या सबसे पहले 1930 में भयानक मंदी के रूप में सामने आया। इन संकट का अन्त द्‍वितीय विश्वयुद्‍ध में हुआ। सन् 1970 के दशक में ये अर्थव्यवस्थाएँ एक बार फिर उसी संतृप्तिकरण के संकट से गिर गया।

सन् 1990 में हुए विकास शेयर बाज़ार की अभूतपूर्व तेज़ी पर निर्भर थी। अमेरिकी शेयरों की कीमत 1993 के मुकाबले 150 फीसदी बढ़ गयी थी। इससे परिवारों की आय बढ़ा। उन्होंने ये पैसे खरीददारी में लगाया। वास्तव में 1999 के शुरूआती महीनों में कर अदायगी के

बाद बची आय का 100.5 फीसदी का ही खर्च हुआ है। दूसरी बात है कि अमेरिकी परिवारों पर कर्ज़ का बड़ा बोझ भी है। यह कर्ज़ औसत अमेरिकी परिवार की कर अदायगी के बाद बची आय का 100 फीसदी है। यह भारी कर्ज़ से लदे अधिकांश परिवारों को अपने खर्चो में भारी कमी करने को मज़बूर करने के कारण अमेरिका फिर से मन्दी के भँवर में फँस गयी।

इन सभी घटना क्रमों ने सन् 1980 के दशक के मध्य में दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं के वैश्वीकरण की भूमिका तैयार की। नीरजा जैन ने वैश्वीकरण के आगम को दर्ज करते हुए रेखांकित किया है - “अपने घरेलू बाज़ार के संकुचन से पीड़ित विकसित देशों ने अब व्यग्रतापूर्वक नये बाज़ारों में निवेश के अवसरों की तलाश शुरू कर दी थी। संयोगवश इसी समय तीसरी दुनिया के देशों के आर्थिक मॉडल भी संकट में फँसे और ये सभी देश पश्चिमी ऋणदाताओं के कर्ज़ से लद गये। अब विकसित देशों केलिए इन देशों की बाँहें मरोड़ कर इन्हें विदेशी सामानों और पूँजी केलिए अपने बाज़ार खोलने को राजी करना आसान हो गया। इसके अलावा अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों - सोवियत संघ और समाजवादी चीन के समर्पण के चलते पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों को अब पृथ्वी के सुन्दर कोनों में भी पूँजी की सुरक्षा की चिन्ता नहीं थी। नतीजा तब साम्राज्यवादी देशों से तीसरी दुनिया के देशों की तरफ पूँजी के प्रवाह में तेज़ी आयी, 20 वीं सदी

के आखिरी दशक में वैश्वीकरण की लहर चल पड़ी जिसका मौजूदा दशक में भी ज़ारी रहना निश्चित जान पड़ता है। इसे वैश्वीकरण का नाम दिया गया।"[1]

सामाज्यवादियों के लिए तीसरी दुनिया की आर्थिक नीतियों का विघटन करना उनकी कूट नीतियों के सरल प्रवाह केलिए आवश्यक था। 'सहायता नीति' इस उद्देश्य की पूर्ति केलिए सहायक हुआ। तीसरी दुनिया के देशों को मिलने वाली सहायता राशि का बड़ा हिस्सा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रोकोष एवं विश्वबैंक सरीखी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा ही आता है। इन संस्थाओं पर अमेरिका और दूसरे प्रमुख विकसित देशों का निर्णायक नियंत्रण है। इन विकसित राज्यों केलिए यह संस्थाएँ एक तरह के आवरण का काम करती है। 1980 के शुरूआती वर्षों में अमेरिका इन अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को ऋण की प्राप्तता तय करने वाले मापदण्डों में परिवर्तन का निदेश दिया। कर्ज़ के जाल में फँसे तीसरी दुनिया के देशों को दिवालिया होने से बचने केलिए पैसे चाहिए थे। विश्वबैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष कर्ज देने केलिए आगे आए। बदले में तीसरी दुनिया के देशों को अपनी अर्थव्यवस्था को पुनर्गठन संबंधी विश्वबैंक का 'ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम' मंजूर करना था। यह कुछ इस प्रकार थी।

---

[1] नीरजा जैन - वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण - पृ.15

*"आयातों का उदारीकरण और निर्यात बाज़ार केलिए उत्पादों को प्रोत्साहन की व्यवस्था करना,

* उद्योग और वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में विदेशी निवेश पर लगे प्रतिबन्ध दूर करना,

* स्थानीय मुद्रा का अवमूल्य करना

* सार्वजनिक क्षेत्र को निजी हाथों में सौंपना और खुले बाज़ार की गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप की नीति बन्द करना

* तनख्वाहों में कटौती करना, सरकारी खर्च में कमी लाना, घरेलू उपभोग को कम करने केलिए उत्पाद शुल्क बढ़ाना और ऐसे ही अन्य उपाय करना, जिससे कि घरेलू उत्पादन को निर्यात बाज़ार के अनुकूल बनाया जाये।"[1] यह कर्ज भी किश्तों में मिलता था ताकि इन शर्तों का क्रियान्वयन संतोषजनक नहीं हुआ तो इसकी अगली किश्त रोकी जा सके। सन् 1980 के अंत में 70 से अधिक देश सुदूर वाशिंगटन से संचालित 'ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम' को स्वीकार किया। 1990 में विश्वबैंक ने इस योजना को सफल घोषित किया।

भारत में आए नेहरू ने भी जो विकास का मॉडल अपनाया था वह पूँजीवादी विकास का मॉडल था। इसकी प्रमुख बिन्दुओं के रूप में मिश्रित अर्थ व्यवस्था, 1948 एवं 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव - स्वयं भारतीय पूँजीपतियों द्वारा गठित एक समिती द्वारा प्रस्तावित

---

[1] नीरजा जैन - वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण - पृ.16

आर्थिक योजना पर आधारित था। 'बॉम्बे प्लान' के रूप में इस योजना को जाना जाता था। इसके निर्माता वरिष्ठ भारतीय उद्योगपति जे.आर.टी टाटा और जी.डी.बिड़ला थे।

नेहरू के विकास तंत्र में पूँजीवादी रास्ते पर देशी उद्योगों एवं कृषि के व्यापक विकास को बढ़ावा देना था। लेकिन आज़ादी के समय पूँजीपति आधारभूत ढाँचे में निवेश करने केलिए देशी उद्योग तैयार नहीं थे। इसका एक कारण इस ढाँचे के मुताबिक उस पूँजी की विशाल मात्र नहीं मिलते थे। दूसरा कारण इस परियोजनाओं में समय बहुत अधिक लगता था और मुनाफा कम। लेकिन इन क्षेत्रों की उन्नति केलिए एक बुनियादी ढाँचे का विकास आवश्यक था। इस तरह की एक योजना के अंतर्गत ही विदेशी पूँजीवादियों ने ऊर्जा परिवहन, इस्पात, तेल, दूर संचार के साथ-साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में तरक्की कर ली थी। लेकिन इस प्रकार के एक योजना तीसरी दुनिया में लागू करने की बहुत सीमाएँ थी। दूसरी तरफ कृषि क्षेत्र को उपेक्षित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली 70 फीसदी से अधिक आबादी की क्रय शक्ति अविकसित ही रही। इसके उपरांत नेहरूवादी मॉडल दशक संकटग्रस्थ था।

1970 के दशक में कृषि में पूँजीवादी विकास को बढ़ावा दिया गया और विकास केलिए उसे प्रेरित भी किया। इससे 'हरित क्रांति' की

शुरूआत भी हुई। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक कारण यह था कि बड़ी मात्रा में कर्ज़ों को कृषि क्षेत्र में भेजा जा सके। इन नीतियों ने कृषि क्षेत्र को एक राहत दिया।

सन् 1980 में अर्थव्यवस्था को ठीक ढंग से चलाने केलिए भारत सरकार ने पुन: विदेशी ऋण में बढ़ोत्तरी कर दी। क्योंकि निर्यात से होनेवाली आय आयात केलिए किये जाने वाले भुगतान से भी कम थी। इसके फल के रूप में देश का चालू खाते के घाटा एक दशक से भी कम समय में सात गुने तक बढ़ गया। सन् 1980-81 में घाटा 1,657 करोड़ रुपये था तो 1989-90 में यह 11,382 करोड़ हो गए। इसका एकमात्र फल विदेशी ऋण ही था। 1980 में यह ऋण 20.58 अरब डॉलर था तो 1990 में 83.7 अरब डॉलर के रूप में इसकी बढ़ोत्तरी हो गयी।

सन् 1985 में विश्वबैंक ने भारत की औद्योगिक और व्यापार नीति को गहराई से जाँझा गया फलत: निचोड़ के रूप में 'एण्डरसन मेमोरेण्डम' 30 नवम्बर 1990 को भारत सरकार के सामने पेश किया। इसमें उल्लिखित सुझाव विश्वबैंक के 'ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम' का ही सार हैं। विश्वबैंक की इन सुझावों को अपनाने केलिए भारत सरकार को देनेवाले ऋणों के भुगतान को स्थगित कर दिया। 1990 में 'मूड़ी' जैसी अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों ने भारत की

रेटिंग को कम बनाया। फलतः अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यक ऋणों का स्रोत सूख गये। अमीर राष्ट्रों के एक झुण्ड 'एड इण्डिया कन्सोर्टियम' ने भी यही कार्य किया। बैठक में भी अमेरिकी प्रतिनिधिमण्डल ने यह आवश्यक अधिक ज़ोर से की - भारत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, व्यापार और आधुनिक वित्तीय बाज़ार पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया जाए। विश्वबैंक ने भी अपने ऋण की कटौती 'भारत सरकार द्वारा 1991-1992 के बजट' और 'अन्य सुधार योजनाओं' के बाद ही ऋण क्रम रूप से मिलेगा यह साबित किया। नतीजा यह हुआ कि भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार तेज़ी से घटने लगा। 31 दिसम्बर 1990 को यह मात्र 1.2 अरब डॉलर रह गया तो अप्रवासी भारतियों ने भी भय के कारण पैसा वापस लेना शुरू किया। 1991 के शुरूआती दिनों में ही अंतर्राष्ट्रीय ऋणदाताओं की शर्तें मान ली थी। इस समय चन्द्रशेखर वाली सरकार थी। यह समय तो शर्तों को लागू करने केलिए उचित वातावरण नहीं था उपरांत दिवालिया होने की संभावना थी। इससे निकलने केलिए 20 करोड़ डॉलर कीमत का 20 टन सोना बेच दिया और 45 टन सोना गिरवी रखकर 40 करोड़ डॉलर कर्ज लिया।

सन् 1991 में पी.वी.नरसिंह राव के नेतृत्व में नया सरकार आया। जिसमें वित्तमन्त्री डॉ.मनमोहन सिंह थे। इस समय तो विश्वबैंक ने अपनी नीति के अनुसार भारत को पूरी तरह तैयार की थी।

सरकार की नियुक्ति के बाद 24 जुलाई में जो बजट निर्मित किया गया था इसकी सारी नीतियाँ विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष

और अन्य विदेशी ऋणदाताओं की माँग के अनुरूप थी। उपरांत कर्ज भी देने लगे। "1991 में विदेशी मुद्रा 97.5 करोड़ डॉलर था तो 1992 में 563.10 करोड़ डॉलर हो गया।"[1] अब तो सरकार ने घोषित भी किया कि देश का विदेशी मुद्रा संकट टल चुका है। 9 नवंबर 1992 को 'इकॉनामिक टाइम्स' में छपे साक्षात्कार में वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा - "जब हम सत्ता में आये तो हमारी अर्थ व्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का विश्वास समाप्ति पर था। कोई भी हमें ऋण देने को तैयार नहीं था.... आज मैं समझता हूँ कोई भी हम पर अविश्वास प्रकट नहीं करता।.... हमने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में अपने लिए विश्वास पैदा किया है। आज अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ हमारे (अर्थव्यवस्था के) ढाँचागत समायोजन से पूरी तरह साथ खड़ी हैं।"[2] ध्यान देने की और एक बात भी है कि देश के सामने गंभीर आर्थिक संकट होते हुए भी 1991 के लोकसभा चुनावों में यह एक विषय भी नहीं था। राजनीति दल इससे पूरी अनभिज्ञ रूप दिखाते थे। मामला साफ है कि उन सब की एक निश्चित एजेण्डा है। पूँजीवादी देशों द्वारा लागू किए जाने वाले सभी नीतियों के प्रति उनकी सहमति भी थी। 1991 में सरकार द्वारा किया गया सभी कार्य इसको प्रमाणित करता है। इसके फलस्वरूप वैश्वीकरण सिर्फ आसानी से ही नहीं बल्कि त्वरित गति से आगे बढ़ते हैं। भूमंडलीकरण के नाम पर आजकल

[1] सं. रजनी एक्स.देसाई - आस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन इकॉनामी- पृ.19

[2] वही - पृ.15

पूँजीवादी, साम्राज्यवादी जड़ें जम रही है। भौगोलिक और प्रशासनिक सीमाओं से परे संसार भर को एक ही पूँजीवादी साम्राज्यवादी कब्जे में फँसाने के पीछे उपनिवेशिक शक्ति के विविध आयाम शामिल है।

2.3. <u>वैश्विक शक्ति का आंतरिक ढाँचा</u>

2.3.1. उदारीकरण

"उदारीकरण की शुरूआत भारत में 1991 में नरसिंह राव की सरकार के द्‌वारा ही आरंभ हुआ था।" [1] गैट समझौता इसका परिणित फल है। उदारीकरण से मतलब - एक नई अर्थनीति है - विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष लगभग इसकी स्थायी नीति के अंग बन चुकी है। इन संस्थाओं के गठन का उद्‌देश्य विभिन्न राष्ट्रों को आर्थिक सहायता और ऋण देना था, क्योंकि वे आवश्यक अनुसार अपने आर्थिक संकट से निकल सकें और अपनी अर्थव्यवस्था को पुनर्निर्मिति कर सकें। इसमें प्रमुख बात यह है कि मुक्त अर्थव्यवस्था की वकालत करनेवाली इन संस्थाओं का निर्माण बाज़ार की शक्तियों ने नहीं, सरकारों ने किया था। स्पष्टत: इनमें उन सरकारों का वर्चस्व था, जो मुक्त बाज़ार की अर्थव्यवस्था का पक्षधर है।

जिस तरह किसी संयुक्त स्कंध की कंपनी में जिसके पास जितने शेयर होते है, उसके हाथ में उतनी ज़्यादा निर्णय शक्ति होती है, उसी तरह ये संस्थाएँ भी पूँजी के बल पर चलती हैं। अत: इनकी

---

[1] डॉ. एन. मोहनन - समकालीन हिन्दी उपन्यास - पृ.27

विचार प्रणाली पर उन सरकारों की ज़बर्दस्त छाया रहती है, जो इन्हें नियंत्रित करती हैं। इसलिए जब विश्व बैंक या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष किसी ऋण लेनेवाले देश को उदारीकरण की सलाह देते है, तो यह सलाह वस्तुतः उन औद्योगिक रूप से विकसित देशों की होती है जिनका इन संस्थाओं पर नियंत्रण है। भारत इसके पाश में बहुत पहले ही गिरे हुए थे। स्वतंत्रता के पश्चात् जो भी नीतियाँ भारत में अपनायी थी वह सब सफल नहीं हुए फलतः भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह बिगड गए।

स्वतंत्रता के बाद से बढ़ते हुए राजस्व घाटे की पूर्ति कर्ज़ से की जाती रही है, जैसे - जैसे घाटा बढ़ता गया, ब्याज भुगतान की जिम्मेदारियाँ भी बढ़ने लगी। "1960-61 में ब्याज भुगतान का प्रतिशत सरकार की कुल देनदारी का 2.32 था, जो 1980-81 में 3.07 प्रतिशत हो गया और 1989-90 में 6.40 प्रतिशत । 1989-90 में ब्याज भुगतान की मात्रा 20,558 करोड़ रुपए थी - जो केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की कुल संयुक्त राजस्व प्राप्ति का 21.21 प्रतिशत था। उस साल सरकारों द्वारा कुल 42,290 करोड़ रुपए उधार लिए गए, जिनमें से 20,558 करोड़ रुपए यानी 48.61 प्रतिशत ब्याज के भुगतान में ही निकल गए।"[1] इसी अवस्था में पंचवर्षीय योजनाओं के लिए भी धन का प्रबंध करने में भारतीय अर्थनीतिज्ञ असफल हो गये

[1] राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - पृ.26

थे। इसका समाधान भी कर्ज़ के द्वारा ही किया था। “छठी योजना (1980-81 से 1984-85) केलिए 24,702 करोड़ रुपए लिए गए, वही सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90) में यह रकम दुगुनी से ज़्यादा हो गई - 20,395 करोड़ रुपए। आठवी योजना (1992-93 से 1996-97) में यह रकम सातवीं योजना की दस गुनी थी - 2,02,255 करोड़ रुपए।”[1] स्पष्ट है कि पूँजी निर्माण तथा योजनाबद्ध विकास केलिए सरकार संसाधनों का प्रबंध करने में विफल रही। ऐसी स्थिति में आर्थिक विकास केलिए निजी पूँजी-देशी और खास तौर पर विदेशी पूँजी पर ही निर्भर रहा जा सकता था। दूसरे शब्दों में उदारीकरण का रास्ता योजनागत विकास की असंगतियों से ही भारत में खुला।

इन सब के फलस्वरूप भारत के स्वप्न को बनाये रखनेवाले बहुत सारे तत्व नष्ट हो गये नहीं तो उनपर बहुराष्ट्र कम्पनियों का अधिकार जम गया। खेती के क्षेत्र में, वनस्पति के क्षेत्र में, औषधियों के क्षेत्र में, विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में आदि सभी में भारत का बहुत बड़ा नुकसान हुआ यह भी नहीं विदेशी कम्पनियों ने भारत के बाज़ारों पर भी अपना अधिकार हासिल कर दिया। इनके प्रमुख नारे थे ‘मुफ्त और किश्त नीति’। आज भारत में शहरों-गाँवों के भेद न करते हुए हर दरवाज़ों पर बहुराष्ट्र कम्पनियों एवं बैंकों के बिचौलिए खड़े हुए है, अपने आकर्षक वादों की तरफ साधारण आमजनताओं को अपने

---

[1] वही - पृ.26

चक्रव्यूह में फँसाने केलिए। जब बाज़ार उनके सामने खुला है और खरीदने केलिए उदार रूप से धन ऋण में मिलने का मौका भी जनता को बाज़ारू संस्कृति में फँसाने की नीति है।

2.3.2. निजीकरण

"विश्व में निजीकरण का आरंभ 1970 के मध्य में चिली में हुआ।"[1] जब से भारत में इसका आरंभ हुआ तब से यह विवादों के घेरे में है। एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के साथ ही भारत में इसका प्रचलन हुआ था। इसको परिभाषित करते हुए बतायाजाए तो यह "अनिश्चित लाभ केलिए निश्चित लाभ को नज़र अंदाज़ करने की प्रक्रिया है।"[2] सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री का उपयोग सामान्य जनता केलिए स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी सुविधाओं का निर्माण करने और व्यापार तथा उद्योग की संरचना के विकास केलिए किया जाना चाहिए परन्तु इसके बदले इसका उपयोग प्रशासनिक खर्च और बजट में होने वाले घाटे को कम करने केलिए किया जा रहा है। अभी तक भारत में जितने भी निजीकरण हुए है सबने विवादों को ही जन्म दिया है इसमें प्रमुख है मॉर्डन फूड्स इंडिया लिमिटेड (M F I L), भारत एल्यूमिनियम कम्पनी लिमिटेड, मॉडर्न फूड इंडिया लिमिटेड ये उड़ीसा में है।

---

[1] डॉ.व्रजकुमार पाण्डेय - भूमंडलीकरण विविध आयाम - पृ.12

[2] वही - पृ.13

2.3.3. विश्व व्यापार संगठन

सन् 1945 में विश्व व्यापी मंदी से मुक्त होने तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को विस्तार देने के उद्देश्य से 30 अक्तूबर 1947 को जेनेवा (स्विटज़रलैण्ड) में 23 देशों द्वारा सीमा शुल्कों से संबंधित एक समझौते पर हस्ताक्षर किया इस समझौते को गैट (जेनरल एग्रीमेन्ट ऑन टेरिफ एण्डट्रेड-गैट) के नाम से जाना जाता है। लेकिन कालान्तर में यह एक स्थायी समझौता ही रह गया तो इसके बदले 1 जनवरी 1995 में विश्व व्यापार संगठन का आरंभ हो गया। इसके कई मूल उद्देश्य थे -

"(अ) सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना।

(आ) विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

(इ) अविरत विकास की अवधारणा को स्वीकार करना।

(ई) पर्यावरण का संरक्षण एवं उसकी सुरक्षा करना।"[1]

इस प्रकार विकासशील देशों को बाज़ार के साथ जोड़ना और उसकी वृद्धि करना W.T.O के मूल लक्ष्य था। लेकिन W.T.O में प्रतिनिधि को भी चुनने का दायित्व अमेरिका जैसे प्रबल शक्तियों के हाथ में था साथ ही साथ विविध नीतियों पर भी अमेरिका अपना हाथ जमाता था। W.T.O की इन सबको मानते हुए आगे बढ़ने की पक्षपातपूर्ण स्थिति के विरुद्ध विकासशील देशों ने अपने विद्रोह

[1] डॉ.व्रजकुमार पाण्डेय - भूमंडलीकरण विविध आयाम - पृ.97

ज़ाहिर करती रही। कालांतर में W.T.O का सारे कार्यक्रम में राष्ट्रीय कंपनियाँ हिस्सा लेने लगे। इस प्रकार की अनेक कमियों को खत्म करने में W.T.O असफल साबित हुआ। इसका प्रभाव भारत की तरह विकासशील देशों की अर्थ व्यवस्थाओं पर भारी प्रहार था।

2.3.4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

वाणिज्यवादी दर्शन के विस्तृत सोच ने ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को जन्म दिया था। हड़सन के कॉरपोरेशन, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी और रॉयल अफ्रीका कम्पनी आदि आरंभिक दशकों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने वाले कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ है।

तकनीकी क्रांति के परिणाम स्वरूप भारत की निजी कंपनियाँ अपने व्यापार के बढ़ोत्तरी की लक्ष्य को साकार करने केलिए कुछ विदेशी राज्यों के कंपनियों के साथ व्यापार शुरू किया। इसमें हमारे बैंकिंग और बीमा क्षेत्र भी मौजूद है। इस प्रकार लगभग स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यहाँ जड़ें जमाना प्रारंभ किया। स्वदेशी वस्तुओं के गुण बताकर आधुनिक तकनीक का प्रयोग करते हुए उनका माल हमारे बाज़ारों में बेजने लगा। इसमें उदाहरण है कोक कोला। “दो दशक पूर्व बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संख्या 14 विकासशील देशों में 7000 थी जो 1992 में बढ़ कर 24,000 हुई। विश्व में 1992 में 37,000 बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ 1.7 लाख से भी ज़्यादा विदेशी

शाखाओं के साथ कार्य कर रही है।"[1] इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से बढ़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारे वस्तुओं के मूल्य एवं संसाधनों के स्थानान्तरण के निर्धारक बन गए है। भारत की अर्थव्यवस्था के मूल क्षेत्र आज विदेशी नियंत्रण में है। तकनीकी एकाधिकार ने इसे बाज़ार पर भी अपना स्वामित्व स्थापित करने में सहायक बने है। वास्तव में मात्र मुनाफा अर्जित करना इन कम्पनियों का लक्ष्य है मेजबान देशों की विकासात्मक आवश्यकताओं में यह कम रुचि ही लेती है।

2.4. नव-उपनिवेश का विकास

विभिन्न नीतियों के तहत विकासशील देशों में अमरीकीकरण के प्रमुख तत्व उपभोक्तावाद जड़ पकड़ हुए थे। उपनिवेश के उपरांत उपजी इस नव-उपनिवेश को समझने में काफी समय हुआ। यह महामारी से निकलना आज नामुमकिन जैसा हो गया है। यह मूलतः उपभोग के बहाने अन्य पर वर्चस्व के स्वामित्व में लेना, वर्चस्व स्थापित करना, वंचित करना इसका प्रधान लक्ष्य है। भौतिक वस्तुओं पर अपना कब्जा कायम रखना मानव की विशेषता है। इसे सामाजिक हैसियत, सम्मान और अवस्था के साथ जोड़ कर विज्ञापन के ज़रिए इसका मार्केटिंग करना इस उपभोक्तावाद की तेज़ी जाल है। यह आज बहुत गंभीर अवस्था पर है। इस पर एक पड़ताल के उपरांत श्री

[1] डॉ.व्रजकुमार पाण्डेय - भूमंडलीकरण विविध आयाम - पृ. 60.

जगदीश चतुर्वेदी जी का कहना है - “आज सारी दुनिया में 1.7 बिलियन उपभोक्ता है। इनमें आधे के करीब विकासशील देशों में है। उपभोक्तावाद के कारण यूरोप, उत्तरी अमरीका, जापान और अन्य एशियाई देशों के एक हिस्से में इकसार जीवनशैली और मासकल्चर ने पैर फैला दिया है। विश्वस्तर पर निजी उपभोग खर्च सन् 2000 में 20 ट्रिलियन डॉलर आंका गया, सन् 1960 की तुलना में यह चौगुना बैठता है। इसका अर्थ यह भी है इस दौरान आमदनी में भी इजाफा हुआ और उसके कारण उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद में भी इज़ाफ़ा हुआ है। सन् 2003 में 1.12 बिलियन घरों में कम से कम एक टी वी सेट था। इसी तरह 1.1 बिलियन लोगों के पास फिक्स फोन था और 1.1 बिलियन लोगों के पास मोबाइल था। आज इंटरनेट से जुड़े लोगों की संख्या साठ करोड़ से ज़्यादा है। अकेले भारत और चीन में दुनिया के बीस फीसद उपभोक्ता रहते है।”[1] इस प्रकार उपभोग की वृद्धि ने हमारे समाज को भिन्न स्थितियों तक पहूँचाया है।

2.5. नव उपनिवेशिक शक्ति की विकृतियाँ

नव उपनिवेशिक शक्ति अपना वर्चस्व बाज़ारवाद से ही कायम रखते है। यह उरभोक्तावादी संस्कृति का पर्याय है। इसके हाथों में पड़कर आज हमारी इतिहास, वर्तमान और भविष्य भी पतनशील

---

[1] जगदीश चतुर्वेदी - नंदीग्राम मीडिया और भूमंडलीकरण - पृ.95

अवस्था में है। इस प्रकार उपभोक्तावादी संस्कृति में कला, संगीत, साहित्य, धर्म, संस्कृति, संबंध यहाँ तक स्वयं मनुष्य भी एक ब्रांड के रूप में बदल गए है। प्रत्येर व्यक्ति की माँग को समझकर ही बाज़ार आज माल को तैयार करते है। इसकी अधिक बिक्री केलिए खूब झूठी खूबियाँ विज्ञापन के ज़रिए फैलाना और उपभोक्ता के आत्मसम्मान से जोड़ना इसी बाज़ार के देन है।

बाज़ार की इस अधिप्रसार को ज़ोर देने वाले एक हथियार है मीडिया। भारत में आज सौ से भी अधिक चैनल मौजूद है। इनमें अधिक रूप से विज्ञापन एवं सीरियल ही होते है। पहले भारतीय बाज़ार में देशी विज्ञापन कंपनियों का वर्चस्व था लेकिन बाद में सन् 1992-93 में भारत की सर्वोच्च बीस कंपनियों में से 11 कंपनियों ने विदेशी विज्ञापन कंपनियों के साथ समझौता कर लिया। सन् 1990 के आंकड़े बताते है कि दुनिया की दस सबसे बड़ी विज्ञापन कंपनियों में सात अमरीकी है। विज्ञापन के क्षेत्र में अमरीकी कंपनियों का यह प्रभुत्व आज ज़ोरों पर है। ये कंपनियाँ अमरीकी व्यापारिक घरानों की मांग पर तीव्रगति से सक्रिय हो जाती हैं, आक्रामक प्रचार शैली के ज़रिए अपने अभियान संचालित करती हैं, जनमाध्यमों की अंतर्वस्तु और नीतियों में बदलाव केलिए दबाव पैदा करती हैं। साथ ही समूची जीवन शैली को भी प्रभावित करती है। इन सत्यों को जानने वाले मनुष्य आज बाज़ार के पीछे है। संचार माध्यमों के नकारात्मक प्रभाव को

रेखांकित करते हुए सुधीश पचौरी बताते है -"अभी कुछ पहले खबर आई थी: पाकिस्तान के 'नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस' इलाके में वहाँ की सरकार ने टी वी पर प्रतिबंध लगा दिया है।

-इससे पहले अफगानिस्तान में इस्लामी तत्ववादी तालिबान सराकर ने टी वी प्रसारण को देखने पर पाबंदी लगा दी थी।

-कुछ पहले मुंबई की एक कॉलोनी के निवासियों ने अपने टी वी सेट ही तोड़ डाले थे।"[1] ये छोटी घटनाएँ असल में अमेरिकी शक्ति को कुछ भी नहीं कर सकता इसका प्रमाण है कि सन् 1995 में विज्ञापन व्यापार केलिए अमेरिका 335 बिलियन डॉलर खर्च कर चुका है। सन् 2020 तक इसके 2 ट्रिलियन डॉलर हो जाने की संभावना है। इसके फलस्वरूप विज्ञापन प्रसारित होने वाले माध्यम भी आज दुगुनी हो गयी है यानी मोबाइल और इंटरनेट। भविष्य में इंटरनेट विज्ञापन का बहुत बड़ा मीडियम होगा।

विज्ञापन जिस दिनचर्या हमें सिखाता है उसमें जीवन का कोई भी मूल्य नहीं है। इस प्रकार अधिक धन कमाने की होट ने मानवीय संबंधों को भी छिन्न भिन्न कर दिया है। जीवन की संघर्ष मयी दुख से छुटकारा पाने केलिए मानव धर्म का सहारा ही लेते है लेकिन अब तो बहुराष्ट्रीय उपभोक्ता निगमों के ब्रांड यहाँ भक्ति के स्पांसर बनकर आने लगे है। इसका नतीज़ा है हमारे टी वी में उपलब्ध अनेक भक्ति

---

[1] सुधीश पचौरी - भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श - पृ.21

चैनल्स। इन चैनलों के ज़रिए बाबा आत्मा की मुक्ति दिलाते है। भक्ति का ऐसा सुन्दर पैकेट असल में विदेशी षड़यंत्र है।

जो भी हमारे राष्ट्र की श्रेष्ठता बढ़ाते है उन सभी को ब्रांड बनाने की अमानवीय नीति नव उपरनिवेशिक षड़यंत्रों का है। हमारे देश के खिलाड़ी एवं फिल्मी लोग या कोई भी खास क्षेत्र के व्यक्ति को लेकर बाज़ार विज्ञापन तैयार करते है जैसे ज़रा 'ये दिल माँगे मोर' (पेप्सी), 'रिफ्रेश हो जा' या 'प्यास - मोहब्बत कोकाकोला' (कोला), 'आल द बेस्ट' (एल.जी)। यह पोपुलर संस्कृति का नये नारे के रूप में लोग इनमें शामिल होते है लेकिन असल में उपभोगी संस्कार उसके हिंसक ही है। फलत: लाभ तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ही होता है। इस प्रकार वैश्विक संस्कृति में राष्ट्र, राष्ट्रीयता, मनुष्यता आदि उसके एजेंडा में नहीं है। वह हमारी नैतिक परिकल्पनाओं को तोड़ते हुए पृथ्वी को एक मंडी यानी कि पूँजीपति केलिए एक विहारभूमि बना रहा है।

इस बाज़ारू माहौल का शिकार ज़्यादात्तर रूप में स्त्रियाँ ही फँस जाती है। शोपिंग सेंटरों और ब्यूटी पार्लरों की दुनिया में स्त्रियाँ और बच्चे विज्ञापन से भ्रमित होते है। आज व्यापारी दुनिया में बड़े-बड़े ब्यूटीपार्लरों में लड़कियों को सेक्स के धंधे केलिए बड़े पैमाने पर नियुक्त किया जा रहा है। इस तरह आज बाज़ार में वेश्यावृत्ति एक उद्योग के रूप में स्थापित हो चुकी है। आज विदेशी मुद्रा कमाने के

आसान तरीके के रूप में देह-व्यापार को प्रश्रय दिया जा रहा है। पर्यटन एवं मनोरंजन उद्योग की आड़ में सेक्स उद्योग को आज बढ़ावा दिया जा रहा है। सेक्स उद्योग भूमण्डलीय अर्थ व्यवस्था को बढ़ावा देने में मदद करता है।

ग्लोबलाइजेशन विघटन और हिंसा को भी प्रोत्साहित करते है क्योंकि देश उथल-पुथल होंगे तो वह उसे अपनी मंडी के रूप में जल्दी बदल सकते है। इस विघटित माहौल का नतीजा है आतंकवाद।

आज के उपभोगी समाज ने हमारे कला, साहित्य को भी बदला दिया है। एकमात्र मकसद 'मुनाफा' होने की वजह से कलाकार की भावना समुदाय की भावना से बिलकुल भिन्न हो गया है। ये साहित्यकार भी कई कंपनियों के उस्ताद बनकर विदेश जाते है पद्मभूषण, पद्मश्री आदि से अलंकृत हो जाते है। इस प्रकार कलाकारों को उपाधि देकर आदर सम्मान करना भी हमारी छद्म संस्कृति का भाग बन गया है। उपभोग की वृद्धि ने हवा और पानी को भी नहीं छोडा है। "संसार के पर्यावरण स्वास्थ्य में सन् 1970 की तुलना में 35 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है।"[1]

---

[1] जगदीश चतुर्वेदी - नंदीग्राम, मीडिया और भूमंडलीकरण - पृ.96

इस प्रकार साम्राज्यवाद और नवउपनिवेशवाद के गिरफ्त में है भारत। समकालीन हिन्दी कहानियों में भारत की इस त्रासदी को तेज़ रूप में चित्रित किया है।

2.6. हिन्दी कहानी में सांप्रदायिक एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण एवं उनका प्रतिरोध

भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य विश्व व्याप्त है। इसमें धर्म का स्थान भी सर्वश्रेष्ट ही है। भारतीय धार्मिक विश्वासों के इतिहास की चर्चा करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी जी का मानना है - "एक जमाना था जब धर्म पूजा-उपासना की चीज़ हुआ करता था और धर्म का स्वैच्छिक चरित्र छा। किसी व्यक्ति को धर्म अच्छा लगता था तो वह अपनी इच्छा से ईश्वर का ध्यान कर सकता था, पूजा कर सकता था, अपने संस्कार कर सकता था। धर्म और संस्कार उसके लिए स्वैच्छिक थे। इसके कारण धर्म ने आम जनता के बीच में तेज़ी से अपना सामाजिक आधार बनाया।"[1] फिर भी धर्म का प्रत्येक राज्य से कोई संबंध भी नहीं था। लेकिन समय के बदलाव के साथ इस पूरे मूल्यों में भी भारी परिवर्तन होने लगा। भारत में हर काल में हुए विविध शासकों की नीतियाँ एवं अंत में आए ब्रिटिश शासन ने पूरी तरह भारत को लूटने केलिए धर्म को राजनीति का एक अभिन्न अंग स्थापित किया।

---

[1] जगदीश चतुर्वेदी -सांप्रदायिकता आतंकवाद और जनमाध्यम - वही - पृ.52

इन साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी षड्यंत्रों का खुला दास्तान अपनी लेखनी के द्‌वारा व्यक्त करने में हर समय के साहित्यकार सफल रहे हैं। हिन्दी कहानी साम्राज्य के सम्राट के रूप में ही प्रेमचन्द का स्मरण होता है उनकी हर एक रचना ब्रिटिश साम्राज्य के पोल खोलने वाले है इसका उत्तम प्रमाण है उनके 'सोचेवतन' कहानी संकलन को अंग्रेज़ों द्‌वारा जब्त करना। उन्होंने 'शतरंज के खिलाड़ी' नाम कहानी के द्‌वारा भारत वासियों को अंग्रेज़ी कूट नीतियों के तहत अपनी स्वाभिमान न खोने की सलाह देते है तो सद्‌गति, कफ़न, ठाकुर का कुआँ आदि अनेक कहानियों के द्‌वारा अंग्रेज़ी शासन ने हमारे राज्य को किस प्रकार गुलाम बना दिया इस इतिहास को ही स्पष्ट करते हुए मानव को हर तरीके से, मौजूदे हालात के विरुद्‌ध संघर्ष के रास्ता को अपनाने की प्रेरणा भी वे देते है।

बाद में आया यशपाल भी 'पर्दा', 'झूठा सच' आदि कहानियों के द्‌वारा भारत विभाजन रूपी घोर सत्य की भीषण अवस्था के चित्रण के साथ कालान्तर में उभरे मध्यवर्गीय समाज के जीवन संघर्षों को भी प्रस्तुत किया है।

अपनी देशकालीन परिस्थिति के विस्तृत चित्रण करने वाले व्यक्तित्व है अज्ञेय। अपनी कहानियों के संबंध में वे स्पष्ट रूप से बताते हैं कि - "ये कहानियाँ आहत मानवीय संवेदन की और मानव

मूल्य के आग्रह की कहानियाँ हैं, और मैं अभी तक आश्वस्त हूँ कि जिन मूल्यों पर मैंने बल दिया था, जिनके घर्षण के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करना चाहा था, वे सही मूल्य थे और उनकी प्रतिष्ठा आज भी हमें उन्नत बना सकती है। निःसंदेह मेरा यह मानवतावाद फिर एक प्रकार का आदर्शवाद है जिसके लिए मैं लज्जित नहीं हूँ, न दीन-हीन होने का कोई कारण देखता हूँ।"[1] साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी शासन काल में पूरे हिन्दुस्तान में पशुता का भाव फैला हुआ था। फिर भी अनेक लोग इस त्रासदी में भी मानवता की रक्षा में लगे हुए थे। ऐसे लोग ही सार्थक मूल्यों के रक्षक होते है। अज्ञेय की ज़्यादातर कहानियों में इन संवेदन क्षमता के दर्शन हमें मिलते हैं। इसलिए इन नए सामन्तों के शोषण एवं षड्यंत्र भरी उनकी कहानियाँ अत्यन्त जीवन्त हैं।

सन् 1946 में लिखित उनकी 'रमंते तत्र देवता' नामक कहानी स्वतंत्रता पूर्व भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक माहौल को व्यक्त करते की कोशिश की है। सन् 1946 में मुस्लिम लीग के आदेश पर कलकत्ता में डायरेक्ट एक्शन हुआ फलस्वरूप हज़ारों की संख्या में हिन्दु मारे गए। इस घटना को पृष्ठभूमि बनाकर लिखे गए इस कहानी के प्रमुख पात्र है बिशनसिंह। वह एक सिख है। डायरेक्ट एक्शन के दिन वह घमरतल्ले के पास दंगे की खबर सुनकर घबराई

---

[1] अज्ञेय - रमंते तत्र देवता - अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ, भाग-1 - पृ.21

हुई बंगाली औरत को देखता है। वह अकेली दिखने के कारण बिशनसिंह उनकी रक्षा करता है। दूसरे दिन वह उसे अपनी घर तो पहूँचाते है लेकिन पति उसे अपनाने में तैयार नहीं होता। पति प्रश्न करता है कि - "तुम रात को क्या जाने कहाँ रही हो, सबेरे तुम्हें यहाँ आते शरम न आई ?"[1] बाद में पाँच सरदारी का जत्था गुरुद्वारे की तरफ से उस औरत को उसके घर ले जाते है उन लोगों ने पति को डराने के बाद वह उसे अपनाने केलिए तैयार होते है। इस कहानी में अज्ञेय ने हिन्दु समाज में स्त्री-पुरुष को लेकर प्रचलित दोहरे मानदण्डों की स्थिति को ही व्यक्त किया है।

विभाजन पूर्व की पृष्ठभूमि को लेकर प्रदीप पंत के द्वारा लिखी गयी एक कहानी है 'राम पुर का रहिम'। इस माहौल को लेकर लिखी गयी एक और कहानी है चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'तांगेवाला'। इसमें वृद्ध तांगेवाला एक हिन्दु युवती की रक्षा करता है लेकिन बाद में उस शरणदाता को अपहरण कर्ता का नाम देता है।

धर्म रूपी विभाजन के बाद भारत की राजनीति की सिद्धांत ही बदल चुका था इसका शिकार सदा निरीह जनता ही होते थे। इसी त्रासदी का चित्रण विष्णु प्रभाकर की 'अगम अथाह', यशपाल की 'खुदा-खुदा की लड़ाई', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'खन्ने का कुँआ' आदि कहानियों में मिलता है। इसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा की 'फटा झंडा'

---

[1] अज्ञेय - रमंते तत्र देवता - अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ, भाग-1 - पृ. 497

नामक कहानी के द्‌वारा उन्होंने बंटवारे की कीमत पर पाई आज़ादी के अधूरेपन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की है।

उपेन्द्रनाथ अश्क की 'चारा काटने की मशीन' नामक कहानी विभाजन के फल के रूप में उठे सांप्रदायिक ज्वार और लूटपाट की मनोवृत्ति की ओर इशारा करते हुए साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण के विभिन्न तरीकों की ओर पाठक वर्ग को सचेत करने की कोशिश की है।

विभाजन के फल के रूप में भारत में उभरी एक और समस्या थी शरणार्थियों की। यह भारत की सांस्कृतिक एकता को तोड़नेवाली समस्या थी। इस विषय पर मोहन राकेश की 'क्लेम', 'कटी हुई पतंग', 'कम्बल' विशेष उल्लेखनीय कहानी है। इन कहानियों में कैम्पों में रहने वाले शरणार्तियों की गंभीर अभावग्रस्तता ही चित्रित है। कहानीकार इस तरह की घटनाओं के प्रदर्शन से भारतीय भ्रष्ट राजनीति के संतान बने सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार तथा शरणार्थियों के बीच उपजी स्वार्थ वृद्‌धि स्थितियों पर भी गंभीर तरीके से समाज को सोचने पर मज़बूर किया है। अज्ञेय की कहानी 'नारंगिया' में लेखक शरणार्थी समस्या के समाधान केलिए आपसी सहयोग का रास्ता बताते हुए इस माहोल के ऊपर संघर्ष का रास्ता ठीक बताते है। शरणार्थियों के पुनर्वास और उसमें बाधक बने रहने

वाले भ्रष्ट सरकारी तंत्र को व्यक्त करने वाले कमलेश्वर की एक कहानी है 'भटके हुए लोग'। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'पतझड़', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'टेबल लैण्ड' आदि कहानियाँ भी साम्राज्यवादियों की शोषण भरी तंत्रों के पोल खोलने वाली कहानियाँ हैं। इस समस्या के ऊपर लिखा गया अज्ञेय की 'लेटर बॉक्स' कहानी बहुत ही रोचक है।

ब्रिटिश शासनकाल और उसके उपरांत भी शोषित हुए एक और विभाग थे औरत। हर काल में किसी भी प्रकार की हिंसा या संघर्ष की भरपाई औरत पर अत्याचार से ही की जाती है। साम्राज्यवादी एवं पूँजीपति वर्ग इस सच्चाई से अवगत थे कि औरत को तोड़ने से भारत की सामूहिक माहौल चिह्न-भिन्न होंगे, तो भारत को लूटना बहुत आसान होगा। विभाजन से पैदा हुई अमानवीयता और घृणा बाद में राजनीतिक फैसले के तहत 'गैर' मुल्क में रह गई औरत की वापसी के फैसले से अत्यधिक पीडित औरत ही थे। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'एक और हिन्दुस्तानी का जन्म हुआ', अज्ञेय की 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई' आदि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

धर्म से ऊपर उठकर मनुष्य के बीच के अटूट बन्धन को रेखांकित करने वाली कहानी है मोहन राकेश का 'मल्बे का मालिक', विष्णु प्रभाकर का 'मेरा वतन', महीपसिंह का 'पानी और पुल', जगदीश चन्द्र का 'पुराने घर' आदि। इसके अलावा उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'ज्ञानी', भीष्मसाहनी ने 'निमित्त', अमृतराय ने 'कीचड़' आदि कहानियों

में धर्म और पाखण्ड के खोखलेपन को दिखाकर इस सांप्रदायिक माहोल में उच्चवर्ग की निष्क्रियता और भाग्यवाद के सहारे अपनी अकर्मण्यता को सहनी मानने वाले प्रवृत्ति के ऊपर लेखक तीखे स्वर में चोट करते हुए अपने समाज की मुक्ति केलिए संघर्ष एवं विद्रोह के रास्ता को प्रदर्शित करते हैं।

इस प्रकार स्वतंत्रता के पूर्व और उसके बाद के कुछ सालों में लिखी गई ज़्यादात्तर कहानियों में साम्राज्यवादी शासन के विभिन्न क्रूरताओं के दर्शन के साथ साथ कहानिकारों के द्वारा समाज को रक्षित एवं स्वाभिमानी बनने का राह दिखाते हुए विद्रोह की ओर उन्मुक्त भी करते है।

2.7. समकालीन कहानी में नवउपनिवेशिक शक्तियों का प्रदर्शन एवं प्रतिरोध

सन् 1960 के बाद समाज के भारी परिवर्तन से ही इस सच का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि भारत अब उपनिवेश से मुक्त है लेकिन नवउपनिवेश के शिकंजे में पूरी तरह बंद हो गए है। ब्रिटिश सरकार के शासन काल में पूरे हिन्दुस्तान को मालूम था कि हम उनके कॉलनी है लेकिन विभिन्न रंगीन नीतियों के उपरांत मानसिक रूप से अमेरिकी महाशक्ति ने हमें नवउपनिवेश के हाथ मे फँसा दिया है। इसकी अपार शक्तियों में पूरा समाज जाने अनजाने आज भी कैद है। समकालीन

कहानिकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से नवउपनिवेशवाद की तीव्र शक्तियों का प्रदर्शन कराते हुए घोर प्रतिशोध की आवाज़ को भी बुलन्द किया है।

<u>2.7.1. उपभोग संस्कृति की अमानवीयता</u>

उदय प्रकाश की एक कहानी है 'उत्तर आधुनिक उपभोक्तावाद' कहानी कुछ इस प्रकार है - दीवाली की रात थी। बच्चों ने कुत्ते की पूँछ में पटाखों की लड़ी बाँधा दी और बत्ती को तीली दिखा दी थी।

पटाखे धड़ा-धड़ फूट रहे थे और कुत्ता बदहवास, होशोहवास खो कर, चीखता, भौंकता, रोता, गिरता, पड़ता भाग रहा था।

कुत्ता जब विनायक दत्तात्रेय के पास से गुज़ारा तो उन्होंने कुत्ते के सामने हड्डी के टुकड़े फेंक दिए।

एक तरफ लालच में कुत्ता हड्डी चबा रहा था, दूसरी तरफ पूँछ में बँधे पटाखों के लगातार फूटने की वजह से चीख-पुकार भी मचा रहा था। एक तरफ कुत्ते के मुँह से लार बह रही थी, दूसरी तरफ उसके गले से चीख निकल रही थी।

एक अद्भुत ट्रैजिक- कॉमिक दृश्य था

विनायक दत्तात्रेय हँसे।

लोगों ने पूछा, "आप क्यों हँस रहे हैं?"[1] तो उन्होंने जवाब दिया "देखो इस कुत्ते को। यह बिलकुल तीसरी दुनिया का उपभोक्तावादी मनुष्य लग रहा है। उत्तर आधुनिक उपभोक्तावाद का दुर्दान्त दृष्टांत।"[2] उपभोक्तावादी संस्कृति की इतनी तेज़ भरी क्रूरता का चित्रण हमें इस युग की दर्दनाक स्थिति को ही दर्शाता है। इस संस्कार ने हमारे जिन क्षेत्रों को तहस नहस कर दिया है इन पर भी विचार करना अतिआवश्यक है।

2.7.1.1. संबंधों का बाज़ारीकरण

वर्तमान संस्कृति संबंधों को महत्त्व नहीं देते है। देती है तो सिर्फ फायदे केलिए। हर चीज़ को व्यापार के नज़रिए से देखने का परिणाम है यह जो कि बाज़ारवाद की देन है। बाज़ार केलिए व्यक्ति मात्र मुनाफे की वस्तु है। चाहे वह नर-नारी में हो या पति-पत्नी में या माता-पिता में या शिक्षक-शिक्षार्थी में। लोगों का दिल और दिमाग बाज़ारीकृत हो गया है। बाज़ारीकरण के प्रभाव से उभरते मानसिक बदलाव एवं स्वार्थपरक विचारधारा का उत्तम उदाहरण है गोविन्द मिश्र की कहानी 'आसमान कितना नीला'। वक्त के अनुसार व्यक्ति अपने रिश्तों को भी तोड़ते है। कहानी के मुख्य पात्र श्वेता असल में सुधीर को 'ड्रॉप' ही करते है। वह वक्त के अनुसार शीघ्र ही बदलते है। अब

---

[1] उदयप्रकाश - उत्तर आधुनिक उपभोक्तावाद - दत्तात्रेय के दुःख - पृ.54-55

[2] वही -पृ. 55

तो उसके सामने न सुधीर है, न उसका प्रेम, केवल ऊँचाई यानी ऑक्सफ़ोर्ड ही ऑक्सफ़ोर्ड है। श्वेता सोचती है - "ऑक्सफ़ोर्ड में अविवाहित विद्यार्थियों के बीच बैठी एक वह विवाहिता।.... सोच कर ही अजीब लगता था।.... इस बीच बच्चे हो गये, तो उन्हों भी...... क्या करेगी।"[1] रिश्ते अब बोझ लगने लगे है। प्रेम जैसी ऊष्मल भाव आज किसी भी संबंधों में नहीं के बराबर है आज है तो सिर्फ 'मैं' है। इसलिए श्वेता, सुधीर से कहती है - "हम एक दूसरे को बाँधकर नहीं रखना चाहिए। ऑक्सफ़ोर्ड से मेरे लौटने पर हम विवाह करेंगे, पर ऐसी कोई बन्दिश नहीं है। इसके पहले अगर तुम्हें कोई बेहतर मिला तो, तो तुम कर सकते हो, मुझे कोई बेहतर मिला तो....."।[2] आज कल रिश्तों की मर्यादाएँ एवं नैतिक मानदंड ढ़ीले पड़ रहे है। असल में विकास तंत्र अपने साथ एक नयी संस्कृति को लेकर चलते है। उनमें मूल्य नहीं के बराबर है।

2.7.1.2. उपभोग संस्कृति और आम आदमी

आज के समय में हर आदमी में आधुनिक बनने, अधिक आधुनिक दिखाने की इच्छाएँ प्रबल है। इन इच्छाओं की पूर्ति केलिए सामाजिक मूल्यों का तिरस्कार वह करते है। जीवन के प्रति यह नए दृष्टिकोण विश्व अर्थव्यवस्था की देन है। इस नयी सोच ने हमें

---

[1] गोविन्द मिश्र - आसमान कितना नीला - पृ.10.

[2] वही - पृ.14.

अधिक धनमोही बनाकर विश्व बाज़ार में खड़ा किया है। “बाज़ार पहले भी था लेकिन बाज़ारवाद नहीं था। बाज़ार हमारी स्थितियों पर निर्भर करता था लेकिन बाज़ारवाद हमारी नियति तय करता हैं।”[1] इस बाज़ारवाद के अन्धी दौड़ में पड़े एक व्यक्ति की जीवन गाथा है ‘पंकजमित्र’ की कहानी ‘क्विज़ मास्टर।’ कहानी के मुख्य पात्र मि.कुमार अपने साथ पढ़ने वाली आई.ए.एस पिता की बेटी गुरप्रीत कौर से शादी करने केलिए उसके पिता रूपी आई.ए.एस बनने के सपने को साकार करने के प्रयत्न में लगे रहते है। लेकिन आई ए एस या गुरप्रीत कौर भी उसे नहीं मिलता बल्कि कालान्तर में वह नगर के जाने माने क्विज़ मास्टर बन जाता है। फिर भी गुरप्रीत को न भूलने के कारण वह उनके याद में प्रीति नामक लड़की से ही शादी करता है। लेकिन प्रीति कुमार के लेक्चररशिप की नौकरी या उनके क्विज़ की शौक दोनों पसंद नहीं था। प्रमुख कारण कम पैसे की प्राप्ति ही था। प्रीति इस अभावग्रस्त जीवन से तंग आकर कहती है “उनका स्कूल तो तरक्की कर रहा है, स्टूडेंट बढ़ रहे है। आपको क्या मिलता है। कभी अठन्नियों मिला है। इतना समय जो देते हैं इस सबमें।.... उसने हैरत से प्रीति को देखा।....ऐसे क्या देख रहे हो। कुछ गलत कहा? ..... देखों प्रीतिः उसने प्रीतो नहीं कहा, ये नोट किया उसने ये सब पैसे केलिए थोड़े करता हूँ। शौक है बस।... शौक बड़े लोगों केलिए होते हैं। दस लोगों ने वाह वाह कर दी, बस कुमार साहब फूल के कुप्पा।बहुत बड़े

---

[1] सूरज पालीवाल - इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिन्दी कहानी - पृ.157

क्विज़मास्टर हो गये। पता भी है, पिछले हफ्ते से दूध वाला पैसा मांग रहा है। टरका रही हूँ किसी तरह, कुछ होश है?"[1] आज की नयी अर्थव्यवस्था ने ही मानव को इस कदम पर पहूँचा दिया है। सब लोग धन लगाने की होट में सदा लगे रहते है। कितने भी धन कमाए उनकी आवश्यकताएँ आज पूर्ण नहीं होते। इस प्रकार मानव अधिक धनमोही बन गए है कहानी के पात्र प्रीति अपने पति मि. कुमार से कौन बनेगा करोड़पति में खेलने को कहती है और उससे ट्यूषन भी करवाता है। इसके बदले वह उनकी शौक के प्रति चिन्तित भी नहीं है। आज के उपभोग संस्कार ने मानव की खूबियों का नाश कर उसे केवल उपभोग केलिए धनार्जन की मशीन मात्र बना दिया है।

एस.आर हरनोट की एक कहानी है 'मोबाईल'। पूँजीवादी संस्कृति भारत पर कब्जा जमाने केलिए निम्न परिवार को भी अपने साजिश में कैसे फँसाते है इसका चित्रण ही इस कहानी के मुख्य बिन्दु है। कहानी के पात्र बच्चे है वो निम्न परिवार के है। भीख माँग कर ही वह अपनी गुजार करते है। कहानी में समाज में व्याप्त धार्मिक बिक्री का भी ज़िक्र है। अधिक होती बाबाओं की संख्या ने हमारे समाज को मन्दिरों से भरा बना दिया है। बाबाओं के कहने के मुताबिक हर आदमी किसी-न-किसी भगवान के भक्त है। हर दिवस एक न एक देवी देवता के विशिष्ट दिवस माने जाते है। इस बाज़ारी माहौल से

---

[1] पंकज मित्र - क्विज़मास्टर - क्विज़मास्टरऔर अन्य कहानियाँ - पृ. 17.

गुज़ार करने वाले है ये बच्चे। उसके कटोरे में सोमवार को शिवजी का फोटो लगाते है तो, मंगल को हनुमान, बुध और वीरवार को बच्ची का कटोरा खाली होता है। उसे पता नहीं कि उस दिन किस केलिए श्रेष्ठ है। शुक्रवार संतोषी माता का तस्वीर लगाते है तो शनिवार शनिदेव की इतवार को सब अवकाश पर रही होती है। हमारे इस बदलते माहौल में हर घर को खरीदना पूँजीवाद का षड्यंत्र है। इस तरह एक कंपनी लोग अपने मोबाईल के विज्ञापन केलिए उसे तय करते है। घरवाले सोचते है -"अब बच्ची के हाथ में न कोई कटोरा होगा और न कोई भगवान। न मैली फ्राक से उसका बदन ही ढका रहता। वह बिलकुल नंगी होती। उसके नंगे बदन पर कम्पनी के नाम और मोबाईल फोन के स्टिकर चिपके रहते। वह दिन भर कम्पनी के बताये रास्तों पर चलती रहती। शाम होती तो कम्पनी वाले उसके बदन से अपने विज्ञापन उतार देते और वही पुरानी फ्राक पहनकर उसे घर भेज देते।"[1] नव उपनिवेशिक शक्तियाँ विज्ञापनों के ज़रिए हमारे दूर दराज के इलाकों तक अपने माल की उपभोक्ता की तलाश में है। वह सब को सपनों के दुनिया की संतान बनाना चाहता है ताकि वह अपना मालबेच सके। इसलिए वह हमारे बाल बच्चों के गरीबी का भी इस्तेमाल करते है। वास्तविक सत्य की ओर इशारा करते हुए लेखक बताते हैं इस अपसंस्कृति में मानवीयता नहीं के बराबर है। गरीबी से निकलने केलिए प्रयत्नरत हमारे परिवार इसे एक सौभाग्य मानते है। असल में वे भी उपभोक्ता

---

[1] एस आर हरनोट - मोबाईल - जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ - पृ.40

संस्कृति के जाल में फँसे है। यानी यह एक सौभाग्य नहीं है हमारी बहु-बेटियों के कमरे तक पहूँचते हुए उन्हें भी अपने उपभोगी बनाने केलिए बाज़ारवाद का जाल है।

पंकज बिष्ट की एक कहानी है ‘मोहन राम (दास), आखिर क्या हुआ ?’ आज भारतीय बाज़ारू संस्कृति में सबसे अधिक बिकाऊ जाने वाले माल आम आदमी के सपने ही है। बाज़ारवाद विज्ञापन के ज़रिए तरह-तरह के खूबियाँ बताकर माल के ऊपर हमें आकृष्ट करते हैं। इन खूबियों एवं सुखों की प्राप्ति की होट में पड़कर उनका पूरा जीवन शिथिल होते है ऐसे लापता हुए एक बच्चे की कहानी है यह। कहानी के पात्र मोहनराम एक घर का नौकर था। वहाँ एक दिन एक हज़ार पिच्चानबे रुपए का एक जूता खरीदते है उसके खूबियों के रूप में वहाँ के सरदार की बच्चे टीटू बताते है “अबे, इसको पहनकर आदमी उड़ सकता है।”[1] मोहनराम को बहलाने में टीटू कामयाब होते है अंत में इस सपनों में डूबकर आखिर उसका क्या हुआ स्वयं कहानीकार भी खामोश है। इस प्रकार यह उपभोग संस्कृति हमें ही नहीं हमारे आनेवाले कल केलिए खतरनाक है इसको प्रामाणित करते हुए कहानी के आरंभ में लेखक कहते है - “ऐसे सपने देखे ही नहीं जाने चाहिए, जो किसी भी तरह की दुर्घटना की ओर ले जा सकते हैं। विशेषकर

[1] पंकज बिष्ट - मोहन राम (दास), आखिर क्या हुआ ? - टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ - पृ.133

उन सपनों से तो बचना ही होगा, जो घातक होने की संभावना मात्र का आभास भी देते हों।"[1] इस प्रकार उपभोग संस्कृति में न पड़ने की सलाह कहानी के द्वारा बताना लेखक का लक्ष्य था।

उपभोग संस्कृति के शिकार बने व्यक्ति मात्र धन कमाने की होट में सदा व्यस्त होते है। इन व्यक्तियों की संख्या भी आज ज़ोरों पर है इसलिए हमारे पूरे समाज भ्रष्ट भी है। दुर्वा सहाय की एक कहानी है 'माँ'। माँ कहानी चिकित्सकों की अमानवीयता के ऊपर लिखा हुआ है। कहानी के पात्र माँ को चार दिन पहले दिल का दौरा पड़ा। प्राइवेट अस्पताल में पहूँचे उस पर डॉक्टरों की मिली भगत या अनगहली से उनकी हालत और बिगड़ जाती है। आज की अर्थ तंत्र व्यवस्था ने इन्सानियत की पूरी हत्या ही कर दी है। कहानी में माँ को मिलने केलिए "खिड़की से झांका, मां सो रही थी, नर्स को इशारा किया, चुपके से बीस का नोट बढ़ाया, मुट्ठियों में नोट कसते हुए उसने कठोर लहजे में कहा "ठीक है, एक-एक करके जाइए, पर शोर नहीं मचाना।"[2] आज की वास्तविकता है यह रिश्वत। इन दिनों में हर कार्यालय में इससे ही काम बनते है। यह नव उपनिवेशिक संस्कृति का नतीजा है। हर व्यक्ति धन मोही बन गए है। कहानी के अंत में घर पहूँचने पर वह फिर से बीमार पड़ते है तो दूसरे प्राइवेट होस्पिटल

[1] पंकज बिष्ट - मोहन राम (दास), आखिर क्या हुआ? टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ - पृ.126
[2] दुर्वा सहाय - माँ - हंस - जुलाई 1999 - पृ.61

ले आते है। चौथे दिन डॉक्टर कहते है कि बाईपास सर्जरी करनी है जबकि ज़बरदस्ती करने पर पता चलता है माँ की मृत्यु हुए तीन दिन हो गए।

दीपक शर्मा की 'मुमूर्षु' नामक कहानी भी चिकित्सालयों के व्यवसायीकरण के बीभत्स चित्रण ही प्रस्तुत करते है। कहानी में बाबूजी अस्पताल में है। शहर के सबसे कुशल सर्जन डॉ.विज की देखभाल में है। डॉ.ऑपरेशन मात्र ही सजस्ट करता है उसके लिए तीन और श्पेशलिस्टों की फीस, दवाइयों, आक्सीजन-सिलेंडर, ताजे खून आदि का एडवांस जमा भी कराया जाता है। ऑपरेशन के बाद कहते है - "ऑपरेशन सफल हो गया है ... सभी डॉक्टरों के चेहरों पर विजय भाव उपस्थित रहा .... इस मशीन पर ब्लड प्रेशर देखिए, सत्तर-बीस है, मगर अभी नार्मल हो जाएगा, नार्मल हो रहा है .... वह मशीन हार्ट बीट दर्ज कर रहा है, इसका ब्राफ भी सही जा रहा है... और वह आक्सीजन के निष्पादन का हिसाब रख रही है... और देखिए, आपके पिता सांस ले रहे है।"[1] लेकिन पूरी जाँझ की बात का पता चलता है कि ऑपरेशन करने का झूठ बोल के फिर उसकी सफलता की घोषणा करते हुए मात्र उनसे पैसा वसूल करना इनका लक्ष्य था। बाद में पता चलता है कि यह सब षड्यंत्र था बाबूजी ऑपरेशन से पहले ही

[1] दीपक शर्मा - मुमूर्ष - हंस - अक्तूबर 2000 - पृ.39

देहमुक्त हो चुके थे। मृत शरीर को भी मुनाफे की नज़र से इस्तेमाल करने वाली क्रूर संस्कृति नवउपनिवेशिक माहौल की ही परिणति है।

संजीव की 'लिटरेचर' नामक कहानी भी कुछ ऐसे ही है। एक समय था जब रोग पहले था फिर उसके उपचार केलिए दवा तैयार की जाती थी। आज समय बदल चुका है। जे.जे.जैसी बड़ी और विख्यात कंपनियाँ पहले दवा तैयार करती है फिर उस दवा के रोग केलिए लिटरेचर तैयार होता है। इस कहानी का कथ्य भी कुछ ऐसा ही है। कम्पनी का विदेश रिटर्नर्ड मालिक जड़ी बूटियों के विशेषज्ञ दीपक को विशेष तौर पर आमंत्रित करता है कि दवा पहले बनाई जाए और रोग वह बताएगा। वह कहेगा कि यह रोग कैंसर, एइड्स, हैपेटाइटिस.बी से भी जानलेवा है और इस दवा के नियमित सेवन से ही बचा जा सकता है। यही व्यापार का असली मूलमंत्र है। इस तंत्र को साधारण जन न पहचानने केलिए इसके मालिक तरह तरह के लोग सेवा में सदा युक्त रहते है उनका एक कॉलेज है "एक ट्रस्ट है 'संजीवन' जो प्रतिवर्ष कला, साहित्य, संस्कृति पर पुरस्कार और गरीब, ज़रूरतमंद और मेधावी छात्रों को स्कॉलरशिप देता है... और यह गागर गुड़ी का मन्दिर भी।"[1] कहानीकार इस वाक्यों से पाठकों के प्रमुख आज की व्यापारिक तन्त्रों का खुला चित्रण ही पेश करते हैं। धीरेन्द्र अवस्थी की

---

[1] संजीव - लिटरेचर - संजीव की कथा-यात्रा - तीसरा पड़ाव - पृ.27

कहानी ‘दुक्खम शरणम गच्छामि’ स्वास्थ्य केन्द्रों के नाम पर चल रहे बाज़ारवाद की कहानी है।

बाज़ार का छद्म व्यवहार उपभोक्ताओं को इतना लुभाता है कि वे अपनी जेब उन्हें समर्पित करके रहते है जब होश आते है तो उपभोक्ता लूट चुका होता है। दिव्या माथुर की कहानी ‘पुरु और प्राची’ में बाज़ार की छद्म को उद्घाटित किया है। कहानी में एक दृश्य है - “प्राची स्पेस सेंटर में चौबीस घण्टे सुहावनी शाम पसरी रहती। संगीत, नृत्य, जलते-बूझते सैकड़ों बल्ब, कंप्यूटर, जैनरेटर परछाइयाँ और जुआ मशीनें जो पैसे निगलती चली जाती थीं, कडी-कभार सिक्कों की छन-छनाहट सुनाई देती तो पर्यटकों की मुडियाँ उसी ओर मुड़ जातीं। कहीं स्टारट्रैक जैसे सीरियल्स पर आधारित स्टेशन्स बने हुए थे तो कहीं पैरिस की आएफ़िल टावर खड़ी थी, कहीं रोम का कोलौसियम खड़ा था तो कहीं वरोना शहर का वह मुहल्ला बसा दिया गया था, जहाँ युवतियाँ जूलियट के छज्जे पर खड़ी इतरा रही थीं और युवक नीचे खड़े दीवार पर चढ़ी बेलों को पकड़े उनसे प्यार का इंतज़ार कर रहे थे। फ़ोटोग्रेफ्रर्स की तो चाँदी ही चाँदी थी। नोटों की गड्डियाँ एक जेब से दूसरी जेब में जा रही थीं। जहाज़नुमा कारों ने सड़कें भरी थी जो दुनिया से आए पर्यटकों को इधर से उधर घुमाती-फिरातीं। पूरा शहर एक बड़े धन्धे में तब्दील हो गया था। दुनिया भर से आए यात्री

चुंधियाई आँखों से भारत की खुशहाली से इश्क कर रहे थे।"[1] कहानी इस सच्चाई को दर्शाते है कि बाज़ार सम्मोहन पैदा करते झूठी खुशियों का संसार निर्मित कर कैसे उपभोक्ताओं को लूटते है। चाँद की सैर पर आए नारायण परिवार भी अंत में तनाव और लूटने की पीड़ा से ही चले जाते हैं।कहानी के आगे दिव्या माथुर लिखती है - "प्राची स्पेस सेंटर सैकड़ों पर्यटकों से दिन और रात भरा रहता। उनमें से कुछ बिरले ही चाँद की सैर के टिकटें खरीदना की हिम्मत रखते थे। बाकी के तो अपनी जेब के मुताबिक सस्ते-महँगे संस्मरण खरीद कर दिल बहला लेते टी-शर्ट, मग, तश्तरी, चप्पल आदि कितनी ही वस्तुओं से दूकानें भरी थीं। चाँद से लाए गए पत्थर, मिट्टी और धूल तक बिक रही थी। यहाँ भी विदेशी बहुत थे। इन लोगों को भविष्य की फ़िक्र नहीं होती। बेचारे भारतीय लोग, जो एक मुश्त पैसा खर्च नहीं कर सकते थे, शहर में खुले हुए ढ़ेरों जुआघरों में पैसा उड़ाते, होटलों की बहार देखते, नग्न औरतों को शोज़ देखकर ही खुश हो लेते। ऐसे पर्यटकों को मूठने केलिए यहाँ बहुत कुछ था। जब तक जेबें खाली नहीं हो जातीं, यो लोग टिके रहते, फिर आहें भरते हुए घर लौट जाते, औरों को बताते उस स्वर्ग की बात जहाँ से वे होकर आ रहे थे, जो सुनता वही प्राची स्पेस सेंटर तैयार हो जाता और इस तरह भीड़ बढ़ती

[1] दिव्या माथुर - पुरु और प्राची - 2050 तथा अन्य कहानियाँ - पृ.53

ही चली जा रही है।"[1] उपभोग संस्कृति में पलने वाले आम आदमी आज किस मुकाम पर है यही दिखाना इस कहानी का लक्ष्य है।

2.7.1.3. धर्म, संस्कृति, दर्शन - बिक्री की वस्तु

नव उपनिवेशिक संस्कृति ने जिस प्रकार बाज़ारीकरण की प्रक्रिया को बढ़वा दिया है उससे समाज, राजनीति, शिक्षा, संस्कृति ही नहीं धर्म भी मुक्त नहीं है। धर्म का मूल लक्ष्य सामाजिक कल्याण है। लेकिन आजकल यह एक व्यक्तिगत स्वार्थ के रूप में परिवर्तित हो गया है। धर्म के इस वाणिज्यिक रूप के बारे में सुधीश पचौरी का मानना है "पूँजीवाद ने धर्म के सार का हरण करके उसे दूकान में बदल दिया है। पुराने धर्म और उसकी अवधारणा से यह धर्म और अवधारणा भिन्न है और इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि आज धर्म का उभार या बढ़ाव नहीं है जितना कि एक नए प्रकार के धर्म का प्रसार नज़र आता है। सभी धर्म को अपदस्थ करता हुआ यह एक नया धर्म पनप रहा है जिसे नई व्याख्या की अपेक्षा है।"[2] इस प्रकार भारत के अस्तित्व रूपी धर्म का नाश कराते हुए है इसके बदले धर्म के नाम को लेकर अनेक संस्थाओं का आगमन कराके उसके श्रेय केलिए धर्म को एक ब्रांड के रूप में उपयोग करते है।

---

[1] दिव्या माथुर - 2050 तथा अन्य कहानियाँ - पृ.33

[2] सुधीश पचौरी - हिन्दुत्व और उत्तर आधुनिकता - पृ.33

असल में धर्म को एक ब्रांड का रूप देना वैश्विक शक्ति केलिए बहुत ही आसान ही था। इसका विस्तार मुख्य रूप में मध्यवर्ग के अमीर बनने की इच्छा से ही हुआ है। इस इच्छा की पूर्ति केलिए वह सदा दमित कर्मों की ओर ही आकर्षित हुआ है। इस पाप बोध से मुक्ति का रास्ता आज बाबा लोग ही दिखाते है आत्मा को चैन प्रदान करनेवाले यही रास्ता आज 'आर्ट ऑफ लिविंग' के रूप में हमारे बीच मौजूद है। यह आर्ट हर बाबा के पास अपनी-अपनी है। इसलिए इन दिनों बाबा बाज़ार बुलंदी पर है। विराट बाबा बाज़ार में से आप अपनी ज़रूरत के अनुसार चुन सकते है। सबकी फीस है यानी दक्षिणा है। इस प्रकार यह एक ब्रांड हो गए है।

आज जितने लोग है उतने बाबा है। "बाज़ार के मंदडियों के दफ्तरों में बाबा हैं, सेठों की कारों में बाबा है, स्टीकरों में कुछ कह रहे हैं, कारें दौड़ रही हैं, बाबा का उपदेश दौड़ रहा है।"[1] समकालीन लेखिका नीरजा माधव की 'पथ-दंश' नामक कहानी बेचारे एवं निर्मल भगवान के इस बिकाऊ रूप को दर्शाते हुए बाबाओं की बागडोर भरी जीवन को ही रेखांकित किया है। कहानी के पात्र मँगरू के काका रामबिहारी अचानक बाबा के रूप में बदल जाते हैं। पूछने पर मँगरू कहता है - "....वह गाँव में अब बहुत कम रहता है।... कभी-कभी आता है.... बड़े ठाठ हो गये हैं उसके.... गरीब दुखियों की सेवा...

[1] सुधीश पचौरी - भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श - पृ.36

जनता की सेवा... लोगों के बीच में प्रभु का सन्देश पहूँचाना.... बदले में जहाँ चाहो घूमो, फिरो, खाओ पियो.... सारा खर्च बैठे बैठाये मिलता रहता है।... काम केलिए दर-दर ठोकर खाने से छुट्टी.... मान सम्मान अलग से।"[1] यही है आज की भक्ति का विश्व बाज़ार।

भक्ति की इस ग्लोबल दुनिया में धर्मान्तरण भी ज़ोरों पर है। असल में यह भी एक वैश्विक चाल है। धर्मान्तरण से वास्तव में धर्म की वृद्धि नहीं होती वास्तविक मूल्यों से वह विघटित होकर उसका रूप शिथिल हो जाते है। धर्मान्तरण से केवल स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति ही होती है। इस कहानी में भी जब छिपुनी को धर्मान्तरण की सलाह दी जाती है तब वह इसका प्रतिरोध करती हुई बोलती है -"करो मेरे दुःख दूर ... मेरे नन्ही के बाबू को लौटाओ। ..क्यों डँसते हो हमारे लोगों को..ढोंगी कहीं के ..जब बिना धरम बदले तुम्हारा परभु भी कृपा नहीं तो वह कैसा परभु ?"[2] असल में आज के धर्म केवल संपन्न वर्गों के लिए ही है। जिसके पास अधिक धन है उसके पास अमीर बाबाएें मौजूद है। इन अमीर बाबाओं के पुत्र है आज के राजनीतिज्ञ एवं सेठ। इन लोगों को पाप बोध से मुक्ति दिलाने वाले हर बाबाएें इन से भी संपन्न है। इसलिए भक्ति के ग्लोबल व्यापार में पड़नेवाले साधारण

---

[1] नीरजा माधव - पथ-दंश - पृ.22

[2] वही - पृ.25

जन धर्मान्तरण रूपी चाल में पड़कर अपने अस्तित्व को भी खो दिया जाता है।

धर्म के इस वाणिज्यक रूप साधारण जनों को अधिक रूप से लूटने वाला है। असल में "बाबाओं का बाज़ार बुलंदी पर है। बाज़ार उतार पर है तो बाबा मौजूद है। बाज़ार चढ़ाव पर था तो बाबा थे।"[1] इस चढ़ाव गिरने का कोई साल आज नहीं उठता। इसका एक प्रमाण है धर्मावलम्बियों द्वारा ज़ारी की जानेवाली तीर्थयात्रा। इस धार्मिक व्यापार की पोल को व्यक्त करनेवाली एक कहानी है पंखुरी सिंह की 'तीर्थयात्रा, अर्थशास्त्र और ईश्वर'। तीर्थयात्रा कहानी में मुक्ति और उसका परिवार तीर्थयात्रा पर जाते है। तीर्थयात्रा में जाने केलिए किन-किन चीज़ों की ज़रूरत है उसे धर्म की आड़ में बेचने का गंभीर दृश्य भी इसमें मौजूद है। जैसे भोजन, पानी की दूकानें, यात्रा में खरीदने केलिए छोटे मन्दिर देवी की तस्वीरों भरी पोस्टकार्ड, चाभियों के रिंग्स, फ्रिज पर चिपकाये जाने वाले रंग बिरंगे मैग्नेट्स आदि लेकिन देवी केलिए विभिन्न प्रकार के चढ़ावें की सामग्रियों की दूकानें वहाँ नही के बराबर है। धर्म और बाज़ार का यह संबंध आजकल मन्दिरों से मिलने वाले प्रसाद में भी पाए जाते है। इस प्रकार यह कहानी धर्म के इस आन्तरिक खोखले पन के विरुद्ध प्रश्न लगाने वाले है।

---

[1] सुधीश पचौरी - भूमंडलीकरण उत्तर सांस्कृतिक विमर्श - पृ.36

भारत में आजकल पेय जल की बिक्री बड़े ज़ोरों पर है। भारतीय संस्कृति के हर अंग को बोतल में पॉक करने वाले नव उपनिवेशिक स्थितियों का प्रदर्शन ही पंकज मिश्र ने अपनी 'बिन पानी डॉट कॉम' नामक कहानी में किया है। इस कहानी के द्वारा हमारा देश किस प्रकार नवउपनिवेशिक बाज़ारू संस्कृति का अंग बन गया इसका उत्तर को ही उन्होंने पेश किया है। कहानी के पात्र एक गाँव में रहने वाले है। वहाँ के सुल्तान अंग्रेज़ियों के साथ मिलकर व्यापार में लग जाते है। नए सुलतान के ताजपेशी के दिन भी आने वाले सभी को कंपनी की ओर से कोल्डड्रिंक दिया जाता है बिलकुल मुफ्त में। लेकिन कुछ देर के बाद सभी को प्यास की रिद्दत महसूस होते है। कालान्तर में सुल्तान ने यह विषय भी बनाया कि सिर्फ कंपनी के पानी का ही उपयोग करना चाहिए। जगह-जगह कंपनी ने पोस्टर भी लगाया - "पानी ही तो ज़िन्दगी है', 'आपकी ज़िन्दगी हमारे हाथ है मेहरबानी करके कोऑपरेट करें', 'आपकी जिन्दगी अनमोल है तो फिर कीमत से क्यों घबराये', 'आपकी ज़िन्दगी महंगी है या पानी।"[1] मात्र मुनाफा कमाना ही इन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति केलिए वैश्विक शक्ति सपनों की ज़िन्दगी का ऐलान करते है यह सपना है विज्ञापन। इसके उपरांत कंपनी ने इंटरनेट पर अपनी वेबसाइट भी खोल रखी थी - 'बिन पानी डॉट कॉम'। इस प्रकार मीडिया की सहायता से न मिलने वाली खूबियाँ इस वस्तु में है यह ये लोग साबित भी करते है। अंत में

---

[1] पंकज मित्र - बिन पानी डॉट कॉम - क्विज़ मास्टर और अन्य कहानियाँ - पृ.31

कहानी के पात्र "घर के पासवाले टीले की तरफ चढ़ दौड़ा। ऊपर जाकर खूब ज़ोर-जोर से सांसे लेने लगा, खूब हवा फेफड़ों में भर-भरकर, क्योंकि क्या पता कल ही नेट सर्फिंग करते हुए 'हवा-हवाई डॉट कॉम' वेबसाइट पर उसने देखा था कि किछ मुल्कों में साफ और ज़रासीम में पाक हवा के भी कियोस्क खुले थे, जिनमें सिर अंदर डालकर कुछ देर तक सांस ले सकते थे आप, सिर्फ कुछ येन या कुछ डॉलरों के एवज़ में ......।"[1] कहानी के द्वारा भारत के संस्कारों का पूरा नाश होने की संभावना पर लेखक ज़ोर देते है। इन रंगीन बोतलों के ज़रामीम से भरा पानी पीने वाले मनुष्य आज गंभीर रोगी बन रहे है। आजकल तो कुछ कंपनियाँ अपनी बोतल वाले पानी को गंगाजल नामक विज्ञापन देते है। इस उपनिवेशिक सभ्यता ने हमारे पूरे मूल्यवान क्षेत्रों को बेईमान तरीके से उपयोग कर उसे भ्रष्ट बना दिया है। इस विज्ञापन रूपी सभ्यता में फँसनेवाले आज के मनुष्य अपनी ज़िन्दगी में कुछ नहीं कमाता सिर्फ तरह-तरह के बिल्स भरके ही आगे बढ़ना उनकी नियति बन गयी है जैसे बिजली का, गैस का कोल्ड ड्रिंक्स का आदि।

एस.आर हरनेट की एक कहानी है 'एम.डॉट.कॉम।' हरियाली से भरा हुआ भारत का हृदय गाँवों में ही बसता है। लेकिन आज सभी गाँव नगरों में तब्दील होता जा रहा है। पूँजीवादी संस्कृति ने विज्ञापनों

---

[1] पंकज मित्र - बिन पानी डॉट कॉम - क्विज़ मास्टर और अन्य कहानियाँ - पृ.32

के ज़रिए यह खबर फैला दी कि गाँव पूरी तरह बेकार की है और गाँव वाले भी। इसलिए आज कोई भी किसान नहीं बनना चाहते। आज गाँव भी नगर बनने की कोशिश में है। कहानी के मुख्य पात्र एक माँ है। उसके घर में भैंस की मृत्यु होती है। पहले परसो चमार घर में छमाही लेने आया करता था लेकिन अब नहीं दिख रहे है तो वह खुद उसको खबर देने जाते है। लक्ष्य में पहूँचनेवाली माँ परसो की अमीरीपन से हैरान हो जाते हैं। भारतीय संपन्न सांस्कृतिक दर्शन के अनुसार हम शवों के भक्षी नहीं है। हम पालतू जानवरों को भगवान के प्रतिरूप मानकर पालते है। अगर उसकी मृत्यु हो जाए तो माननीय रूप से उसे दफनाया जाता भी है। लेकिन आज जो पशु संस्कृति हमारे बीच में पनप रहा है। वह सिर्फ मुनाफे का ख्याल ही करते है। इन अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों ने गाँव में एम.डॉट.कॉम नामक व्यवसाय की वृद्धि की है। इसके उद्देश्य कहानी में बुद्धराम के द्वारा माँ को समझाया जाता है कि "ताई! देख उधर, गाँव के जितने भी आदमी है, उनके नाम पशुओं के साथ इसमें लिखे हैं।... जब कोई पशु मरता है या पैदा होता है, इसमें दर्ज हो जाता है। फीस लगती है उसकी। अगर तेरा नाम होता, मिनट में ई-मेल करके महेन्द्र शहर से दो-चार आदमियों को बुला देता.... ताई! वो लोग शहर से अपनी गाड़ी में आएँगे। तेरी भैंस को ओबरे से बाहर निकालेंगे। ले जाएँगे। उसे काटेंगे, पर फेंकेंगे नहीं। जैसा म्हारे चमार करते थे।"[1] हमारी संस्कृति भ्रष्ट है यह सिखाना ही

---

[1] एस आर हरनोट - एम.डॉट.कॉम - जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ - पृ.48

बाज़ारवाद का षड्यंत्र है। इसलिए वह नई टेकनॉलजी के खातिर नई सुविधाएँ हमारे सामने पेश करके हमें उच्च बनाने की वादा करते है। असल में वृद्धि हमारी या हमारी संस्कृति का नहीं बल्कि अपसंस्कृति का होता है।

इसी प्रकार की एक और कहानी है कैलाश वनवासी की 'बाज़ार में रामधन'। कहानी के आरंभ से अंत तक बाज़ार की ताकत का ज़िक्र है। इस बाज़ार ने गाँव वालों को शहर का सुख और स्वाद देने के वादा करके अपनी चालाकियों से मुट्ठी में कर लिया है। फलस्वरूप गाँव की सामूहिकता और पारस्परिक आत्मीयता समाप्त होती नज़र आ रही है। कहनी के पात्र रामधन के पास बैल है जो मज़बूरी वश उसे बेचना पड़ रहा है लेकिन स्वयं उनका मानना है "बैल हमारे घर की इज्ज़त है .... घर की शोभा है। और इससे बढ़कर हमारे पिता की धरोहर है। उस किसान का भी कोई मान है समाज में, जिसके घर एक जोड़ी बैल नहीं है ! कैसे समझाता कि हमारे साथ रहते-रहते ये भी घर के सदस्य हो गये है। जो भी रूखा-सूखा, पेज-पसिया मिलता है, उसी में खुश रहते है।"[1] भारतीय संस्कृति के मूल्यों का प्रदर्शन ही रामधन के द्वारा यहाँ हुआ है।

---

[1] कैलाश वनवासी - बाज़ार में रामधन -हंस - अगस्त 2006 - पृ.69

बाज़ारी सभ्यता मात्र उपयोग को ही मूल्य देता है। इस अपसंस्कृति के शिकार बने मुन्ना इन बैलों के बदले किराए में टेक्टर को लाने एवं उनके लिए शहरीवाली चमक दमके धंधा भी शुरू करना चाहते है। अपने भाई मुन्ना की तर्कों के खातिर रामधन बाज़ार में घुस जाते है। यह एक आधुनिक सत्य है आज के लोग अपने परिवार के निजी और पर्याप्त वस्तु को बेचकर किराये की मशीन को ले रहे है। लेकिन कहानीकार बिना बताए इस सत्य को दर्शाते हैं कि एक मशीन का विकल्प दूसरी मशीन हो सकती है पर बैलों के विकल्प के रूप में मशीन को रखना दुरूह की बात है। लेकिन रंगीन बाज़ार इस दुरूह को बहुत चालाकी से छिपाकर एक स्वप्न भरी नगर में लोगों को पहूँचाते है। इन स्वप्नों की पूर्ति केलिए हर गाँव वाले नगरीय बाज़ारू सभ्यता अपनाने केलिए तैयार है।

कहानी के अंत में बाज़ार की तीव्रता को व्यक्त करते हुए बैलें रामधन से बातें करते है - "मान लो अगर दाऊ या महाराज तुम्हें चार हज़ार दे रहे होते तो तुम क्या हमें बेच दिये होते ? .... बेचना तो पड़ेगा एक दिन !"[1] बैल कह रहे है, "आखिर तुम हमें कब तक बचाओगे, रामधन ? कब तक ?"[2] कहानी का यह अंत भविष्य की ओर हमें सोचने केलिए मज़बूर बनाता है।

---

[1] कैलाश वनवासी - बाज़ार में रामधन -हंस - अगस्त 2006 - पृ.71

[2] वही - पृ.71.

2.7.1.4. विज्ञापन और मीडिया

आज जो बाज़ार हमारे सामने मौजूद है उसने हमारे पूरे जीवन को प्रभावित एवं परिवर्तित किया है। जीवन और जगत के लगभग सभी क्षेत्रों में बाज़ार उचित एवं अनुचित दखल दे रहा है। आज बाज़ार हमारी प्राथमिकताएँ तैय करता है। विज्ञापन हमें बता रही है कि क्या सच है, क्या गलत ? डॉ.कुमार कृष्ण ने निम्न पक्तियों के द्वारा मनुष्य के अस्तित्व की चिन्ता व्यक्त किया है - "एक समय था जब बाज़ार मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार बनते थे, विकसित होते थे लेकिन आज बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार मनुष्य को ढाला जा रहा है। फिर इस बाज़ारवाद की फाउंड्री में क्या वास्तव में मनुष्य बच पाएगा ?"[1] दो हजार तक आते-आते बाज़ार कहाँ तक प्रवेश कर चुका है इसके बारे में दिनेश भट्ट का मानना है - "जिस सदी में हमने प्रवेश किया है, वह रहस्यों के उद्घाटन की सदी है। कृषि युग, उद्योग युग और विज्ञान टेक्नोलॉजी युग में बाज़ार था तो ज़रूर मगर बाज़ार सिर्फ बाज़ार में था। वह मंडियों में था और ज़्यादा से ज़्यादा उन छद्म सौदों में था जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय हित में गोपनीय ढंग से किए जाते थे। आज बाज़ार कहाँ नहीं है ? वह आपकी जेब में क्रेडिट कार्ड, वीजा कार्ड और मोबाइल फोन बनकर है, आपके घर में स्काई-शॉप बनकर उतर पड़ा है और टी वी के पर्दे पर तो इस कदर है कि रात-दिन आप बाज़ार ही बाज़ार देखते रहते है। अब जिसे

---

[1] डॉ.कुमार कृष्ण - कहानी के नये प्रतिमान - पृ.20

भूमण्डलीकरण कहा जाता है, वह भूमण्डलीकरण बनकर जेब से जहान तक फैल गया है। जिस्म से लेकर आत्मा और आत्मा से लेकर परमात्मा तक का बाज़ार टी वी दिखा रहा है।"[1]

टी वी में दिखाने वाले विज्ञापनों के साथ-साथ उसमें होनेवाले तरह तरह के प्रोग्राम्स भी आज हमारे जीवन शैली और दैनिक व्यापार को बदलता जा रहा है। भारत में इस वक्त छत्तीस से सौ चैनल तक देखे जा सकते हैं। लोगों का मानना है कि यह सौ चैनल अपना है लेकिन भूमंडलीकरण और तकनीत के स्वीकार ने असल में हमारे भारत को प्रसारण मंडी बना दिया है। अस अवस्था को व्यक्त करते हुए सुधीश पचौरी कहते है - "यह व्यवस्था मीडिया में अंततः विदेशी बड़ी कंपनियों को स्वामित्व देने की बात करेगी और हार्डवेयर - साफ्टवेयर दोनों में अधिकाधिक विदेशी प्रभुत्व का स्वागत करने वाली है, अपलिंकिंग और डी.टी.एच प्रसारण को बढ़ाने वाली है। इस व्यवस्था से देशी चैनल किनारे हो सकते है।"[2] डी.टी.एच और अपलिंकिंग के बाद प्रसारण तकनीक इतनी तेज़ी से बदल जाएगी कि जब तक प्रसार भारती डिजिटल पर जाएगा अन्य प्रसारक साइबर स्पेस के अन्य क्षेत्रों के मालिक बन बैठेंगे। संचार माध्यमों के इस प्रभावी षड्यंत्रों में हमारा समाज किस प्रकार पड़ा हुआ है इसके ऊपर

---

[1] दिनेश भट्ट - नई सदी बाज़ार, समाज और शिक्षा की भूमिका से।

[2] सुधीश पचौरी - भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श - पृ.46

अनेक समकालीन रचनाकारों ने अपने कहानी के द्वारा व्यक्त किया है। समकालीन रचनाकार पंकज मित्र की एक कहानी है 'पड़ताल'। इस कहानी में नायक अपने पड़ोसी किशोरीरमण बाबू की अचानक मृत्यु के पड़ताल के द्वारा समाज में व्याप्त संचार माध्यम यानी टी वी के अति प्रभाव के तिक्त फल को ही प्रदर्शित किया है। कहानी के नायक और किशोरीरमण बाबू दोनों पड़ोसी थे। उनके कमरे की खिड़की के ठीक सामने है किशोरीरमण बाबू की खिड़की। इसलिए उस घर में होने वाले घटनाक्रम एक फिल्म की तरह उसे देखने को मिलते है। उनके अनुमान से बासठ साल होने पर भी कोई तीव्र बिमारी न होने वाले किशोरीरमण बाबू की मृत्यु घर में एक टी वी सेट आने के आठ दिन बाद ही हुई है।

एक पड़ताल के रूप में पेश किए गए इस कहानी में किशोरीरमण बाबू की पूरी हिस्टरी और टी वी आने के बाद के उस आठ दिन को भी साफ रूप में व्यक्त किया है। असल में घर में टी वी आने की खुशी उसे भी था लेकिन उसमें इतने सीरियल और फिल्में का प्रसारण है कि उसके प्रसारण के अनुसार ही आज का मानव की दिनचर्या आगे बढ़ती है। कहानी में किशोरीरमण बाबू के पोते एक दिन एक चार्ट बनाते हुए दिखाते है उसके पूँछने पर वे कहते है -

"मम्मी बोली है न दादा जी, टी वी के सब प्रोग्राम का चार्ट बनाने।"[1] असल में आगे इस चार्ट के अनुसार ही घर चलने वाले है।

टी वी में आनेवाले इन सीरियलों ने हमारे घरों को किस प्रकार बिगाड़ दिया है इस का स्पष्ट चित्रण भी कहानी में व्यक्त है। सीरियल देखने के बाद उसकी चर्चाएँ एवं प्रतिचर्चाएँ तो होती है। किशोरीरमण बाबू की बहू एवं पड़ोस की एक लड़की के बीच में हुई वार्तालाप से कहानी का व्यक्त करते है - "जानती है दीदी। इसलिए पाप्पाजी वहाँ घर में किरासन वाला जेनरेटर ले लिये है। किसी भी सीरियल का एक भी एपिसोड छूटा तो मेरी मां का ब्लडप्रेशर हाई हो जाता है।"[2] समाज की इस तीक्ष्ण अवस्था हमें कहाँ पहूँचायेंगे इस प्रश्न को कहानीकार ने इस चित्रण से हमारे सामने रखने की कोशिश की है।

इस तरह के प्रोग्राम्स ने तो किशोरीरमण की नींद ने हड़प ली थी। इसलिए वह छठे दिन हुए तो बेटों से कहा कि टी वी को किसी ओर जगह बिटा दो। इस पर छोटी बहू कहा - "पापा जी सत्रह हज़ार लगा के दिए है टी वी, तो कबाडघर में रखा जाएगा क्या ?"[3] आज कल की भीषण अवस्था है यह। अपनों की सेहत की परवाह न करके

[1] पंकज मित्र - पड़ताल - क्विज़ मास्टर और अन्य कहानियाँ - पृ.61

[2] वही - पृ.62

[3] वही - पृ.63

आज लोग मनोरंजन एवं मीडिया के पीछे है। इसके तीव्र प्रभाव में पड़कर किशोरीरमण बाबू के द्वारा उनके परवरिश केलिए जो भी कार्य किया था उन सभी का मन ही मन वह परित्याग करते है। असल में ये चार बच्चे उनके एक दोस्त का था उनकी मृत्यु के उपरांत किशोरीरमण ने उनकी देखभाल का कार्य उनके कन्धों पर स्वयं ले लिया था। लेकिन अंत में उनकी मृत्यु के समय में भी इन बच्चों ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि रात में अमिताभ का फिल्म चल रहा था। सुबह देखा तो सीने पर हाथ रखे वह मरा हुआ था। इसी प्रकार की एक और कहानी है पंकज बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते'।

नवउपनिवेशिक बाज़ारवादी संस्कृति ने हमारी सुख-सुविधाओं की पूर्ति की जो लिस्ट है उसे काफी लंबा बना दिया है। मीडिया के विज्ञापनों के पीछे भागने वाले मनुष्य की आवश्यकताएँ कभी भी समाप्त नहीं होती। इस होड में पड़कर आम आदमी पूरी तरह अस्तव्यस्त हो जाते है। घर शांति को हड़पने वाले इस विज्ञापन की चाल को भी आज के कहानीकारों ने व्यक्त किया है। अमरीक सिंह दीप की एक कहानी है 'एक कोई और' इसकी नायिका अपने पति से कहती है - "तुम निकम्मे हो, निखट्टू हो। आज तक कौन-सा सुख दिया है तुमने मुझे ? मुझे डायमंड ज्वैलरी चाहिए, बनारसी और साउथसिल्क की साड़ियाँ चाहिए. पशमीने की शॉल चाहिए, लाबेला की

सैंडिलें चाहिए, लैक्से की पूरी मेकअप रेंज चाहिए... होटलिंग चाहिए, शॉपिंग चाहिए, पिकनिक चाहिए, आउटिंग चाहिए।"[1] मानव की ये ज़रूरतें विज्ञापन से ही पैदा हुआ है।

अंजु दुआ जैमिनी की एक कहानी है 'कंक्रीट की फसल का हकदार'। इसके नायक काम खत्म हो जाने के बाद घर लौटना भी पसंद नहीं करता वह सोचता है -"आज फिर सुननी पड़ेगी उसकी चपर-चपर। पता नहीं क्या हो गया है उसे? अच्छी-भली दाल-रोटी खा रहे थे। भौतिक सुखों की चाहना करके आदमी कहाँ खुश रह सका है? इस चाहना का पेट बहुत बड़ा है, जितना भरो उतना खाली का खाली। सब को सब कुछ चाहिए। मोबाइल, कंप्यूटर, कार, अच्छे पकवान, ब्रांडेड कपड़े और बड़ा सा घर। हाँ, बड़ा-सा घर। कितने दिन से मेरे पीछे पड़ी है, एक फ्लैट ले लो। गोया फ्लैट न हो गया चने-भुरमुरे का कोन हो गया, झट से खरीदा और खट से लगे चबाने। इतना भी नहीं जानती कि घर बनाना आज इतना भी आसान नहीं। अव्वल तो अपने पास इतना पैसा है नहीं कि एकमुश्त दे पाऊँ और दूसरे, कर्ज़ लो तो सारी ज़िन्दगी उतारते रहो।"[2] इस उपभोक्तवाद ने मानव को रंगीन सपना दिखाकर उसे नवउपनिवेशिक शक्तियों के जाल में फँसा कर उसकी पूरी ज़िन्दगी को भी चकनाचूर कर दिया है।

---

[1] अमीर सिंह दीप - एक कोई और - पृ.166

[2] अंजु दुआ जैमिनी - कंक्रीट की फसल का हकदार हरिगंधा -अप्रैल - 2008 - पृ.36

2.7.1.5. स्त्री का वस्तुकीकरण

नव औपनिवेशिक संस्कृति ने विविध संचार माध्यमों के द्वारा स्त्री पर होने वाले क्रूर कृत्यों को दर्ज करते हुए उसे आतंकित एवं सचेत तो बना दिया है फिर भी बाज़ार के मोहक जाल में अधिक स्त्रियाँ पड़ने से उसके शोषण के रवैये भी आज बदले हुए है। बाज़ार और मीडिया की सहभागिता ने सौन्दर्य-प्रतियोगिताओं का आयोजन कर स्त्री-देह का व्यापार करने की साजिश आज ज़ोरों पर है। युवा कथा लेखिका पंखुरी सिंहा की कहानी 'समानान्तर रेखाओं का आकर्षण' में एक ऐसी प्रतियोगिताओं के यथार्थ को ही दर्शाता है - "जो भी हो, ऐसी प्रतियोगिताओं में सचमुच हड्डियाँ शरीक नहीं की जातीं। हड्डियों का वजन, आकार-प्रकार, डील-डौल कुछ भी बदला नहीं जा सकता, ऐसी प्रतियोगिताएँ हड्डियों के ऊपर माँस, वसा और चमड़े के नियंत्रण से जीती या हारी जाती है।"[1] विज्ञापनों में पड़कर आज की नारी मन और आत्मा की सुन्दरता की अपेक्षा दैहिक तथा माँसल सौन्दर्य को ही प्रमुख मानते है। क्योंकि माँसल सौन्दर्य ही विज्ञापन की ज़रूरत है। कहानी के आगे कहा है -"हड्डियों के ऊपर लगी माँस पेशियों को बेहतर और बेहतर आकार देने केलिए, हड्डियों और माँसपेशियों के बीच के सुराखों, धमनियों और शिराओं के ईर्द-गिर्द जमी चर्बी की फालतू परतों को निकाल बाहर करने केलिए। प्रतियोगिता की यही शर्त थी कि जो सबसे अधिक चर्बी घटा सकेगा,

---

[1] पंखुरी सिंहा - समानान्तर रेखाओं का आकर्षण - किस्सा ए .कोहनूर - पृ.7

वह विजयी होगा। विक्टर।"[1] और इन सब विजयी सुन्दरियाँ बाज़ार के लाभ की चर्बी बढाने केलिए बाज़ार द्वारा निर्मित छद्म को सम्मोहन में तब्दील करती है। इस प्रकार इस बाज़ार ने हमारे पूरी चेतना को ही बदल दिया है।

वास्तव में इस बाजारवादी संस्कृति में पड़कर स्त्री ने अपनी आत्मा ही खो दिया है। फैशन के रूप में अपने को डालने में ही स्त्री अपना स्वातंत्र्य समझती है। यह मंत्र बाज़ार की ही देन है। उर्मिला शिरीष की एक कहानी है 'उसका अपना रास्ता'। इस कहानी में बाज़ार की मायाजाल की तीव्रता को ही लेखिका ने चित्रित किया है। कहानी के मुख्यपात्र वृन्दा कहती है - "यह मौका बार-बार नहीं आएगा। तमाम मॉडलिंग एजेन्सीज़ आ रही है। उनमें से किसी एक को भी मैं पसन्द आ गयी, तो सोचो मेरी हैसियत क्या से क्या हो जाएगी।"[2] आज की नारियाँ ऐश्वर्या रॉय बनने में लगे हुए है। बाज़ार ने नारियों के करियर के रूप में मॉडलिंग को उनके सामने प्रस्तुत करने में कामयाब हुए है। मल्टी नैशनल कम्पनियाँ हर वस्तु के विज्ञापन में स्त्री को रखना पसन्द करते है। इस प्रकार स्त्री को एक बिकाऊ वस्तु के रूप में परिवर्तित करने में पूरा योगदान बाज़ार की है। कहानी में वृन्दा कहती - "मेरे संस्कार केंचुली की तरह मन को जकड़े रहते हैं।

---

[1] पंखुरी सिंहा - समानान्तर रेखाओं का आकर्षण - किस्सा ए .कोहनूर - पृ.8

[2] उर्मिला शिरीष - उसका अपना रास्ता - निर्वासन - पृ.116

इस दुविधा से मुझे स्वयं ही निकलना होगा। किसी के छू लेने या गले लग जाने या चिपकाकर पकड़ लेने में कोई बुराई नज़र नहीं आती।"[1] बाज़ार की ताकत ने स्त्री के नैतिक मूल्यों में काफी बदलाव किया है। खुले समाज में प्रेम का दर्जा अत्यन्त आम बात हो गया है। समकालीन समाज में स्त्री काफी स्वतंत्र है फिर भी आज की स्त्री की राहों को तय करने वाले बाज़ारू शक्ति में वह पूरी तरह फँसे हुए है।

---

[1] उर्मिला शिरीष - उसकाअपना रास्ता -निर्वासन - 129

2.7.1.6. परंपरागत उद्योगों की हत्या

नव उपनिवेशिक शक्तियों ने हमारे कुटीर उद्योगों को पूरी तरह खत्म किया है। जयनंदन की एक कहानी है 'आई.एस. ओ.9000' । इस कहानी में कम्पनी मालिक का सबसे बड़ी सपना है कि उसके कम्पनी को आई.एस.ओ 9000 का प्रमाण पत्र मिले। इससे उसके व्यापार की व्याप्ति विदेश में भी हो जायेंगे। लेकिन यह मंझिल हासिल होने से कर्मचारियों की बेरोज़गारी की समस्या का हल होगा ! वह नहीं के बराबर है। कहानी के पात्र तरुण से यह सत्य सामने आ जाता है - "देश में सैंकड़ों कम्पनियों ने और खुद इस कारखाने के भी कई विभागों ने ये प्रमाण-पत्र हासिल कर लिए हैं। फिर भी क्यों देश में औद्योगिक मन्दी चल रही है....क्यों सब के माल जमा पड़े हुए हैं? हम देख रहे हैं कि जब से भूमंडलीकरण के तहत खुली बाज़ार व्यवस्था का दौर शुरू हुआ है, देसी कम्पनियों के शेयर्स भाव मुँह के बल गिरते जा रहे हैं.... इन्हें छँटनी करके मज़दूरों की संख्या कम करने को बाध्य होना पड़ रहा है.... उद्योग बढ़ने की जगह कम हो रहे हैं ... बड़ी कम्पनियों पर आधारित छोटी कम्पनियाँ सिक हो रही है या फिर रेंग रही हैं।"[1] उदारीकरण के बाद हमारे समाज का तीव्र चित्रण है यह। हमारी देसी कम्पनियाँ अन्तर्राष्ट्रीय निगमों से होट करने में असमर्थ है नतीजे के रूप में उसका अंत ही होता है। आज

---

[1] जयनंदन - आई.एस.ओ. 9000 - घर फूँक तमाशा - पृ.22

हमारे देश में छोटी कारखाने या देशी कम्पनियाँ नहीं के बराबर है। मशीनी सभ्यता के आगमन से कर्मचारी भी बेरोज़गार है।

कविता की 'पत्थर. माटी, दूब' नामक कहानी बाज़ारवाद के शिकार मूर्तिकार कलाकार गिरीश प्रजापति के जीवन संघर्षों पर आधारित है। अब की स्थिति ऐसी है कि उनके बनाए खिलौने कोई नहीं खरीदता। कहानी के द्वारा लेखिका कहती है कि "मिट्टी के खिलौनों की जगह प्लास्टिक और रबर के सस्ते- टिकाऊ, चाभी वाले आयातित खिलौनों से बाज़ार भरने लगे थे। खूबसूरत मछलियाँ - तितलियाँ- तोते, दुर्गा-काली के मुखौटे, किसी ड्राइंगरूम की शोभा बनने की बजाय घर के पिछवाड़े बने स्टोर रूम में भर रहे थे।"[1] वास्तव में यही है आज का असली भारत।

एस.आर.हरनोटकी 'मिट्टी के लोग' नामक पात्र किसी बैंक से कामकाज बढ़ाने केलिए एक लाख पैसा लेते है। उसके गाँव में उसी की तरह मिट्टी से बर्तन बनाने वाला तो कोई नहीं था लेकिन "अब मिट्टी के बर्तन लेता भी कौन है ? कुम्हार न अपना हुनर बेच पाया, न ही बैंक की किस्तें समय पर दे सका।"[2] अंत में वह परिवार समेत आत्महत्या कर लेते है।

---

[1] कविता -पत्थर,माटी, दूब -नदी जो अब भी बहती है - पृ. 14.

[2] एस.आर.हरनोट- मिट्टी के लोग -पृ.41

2.7.1.7. आतंकवाद : नए ग्लोबल अंतर्विरोध

आतंकवाद जो आज का एक भीषण सत्य है। इसकी गंभीरता को व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध आलोचक सुधीश पचौरी जी का मानना है -"उसकी संरचना 'एक अनिश्चय की संरचना' ही बनी हुई है। अनिश्चय और आतंक का चोली-दामन का साथ है। कब कहाँ किस पर कौन-सा बम गिरेगा? कब कौन मानव बम कहाँ फट पड़ेगा ? यह एक विराट सार्वभौमिक अनिश्चित और अहैतूक भय है जो नया आतंकवाद बनाता है।"[1] उनके अनुसार सबसे बड़ा निर्णायत तत्त्व यह है कि आज का मानव बम का अचूक उपयोगी हो दया है। इसका माहौल तो भारत विभाजन के बाद ही शुरू हुआ था। विभाजन के बाद आए कांग्रेस सरकार देश को फिर से धर्म निरपेक्ष बनाने में कामयाब नहीं हुआ। उस समय तीव्र प्रवर्तन में निर्भर रहे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी मुस्लिम लोगों के अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकी। फलत: वह नई साम्प्रदायिक शक्तियों के रूप में मदलने लगे। बाद में हुआ आपातकाल की घोषणा और 1984 में प्रधान मंत्री राजीव गांधी के द्वारा राम मन्दिर का खुलाव, 1990 के बाद हुई बाबरी मस्जिद की ढहाई यह सारी घटना एवं इसके बाद हुए अनेक दंगे विभाजन से कम भयानक त्रासद और हिंसक भाव भरे हुए नहीं थे। आज यह हिंसात्मक वृत्ति आतंकवाद का रंग ले चुका है। दो हज़ार में हुए दिल्ली के ताज हॉटल के प्रति आक्रमण, अमेरिका की वेल्ड ड्रेइड सेन्टर का गिरानी

---

[1] सुधीश पचौरी - भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श - पृ.142

आदि इस तीव्रवाद का ही नतीज़ा है। कुछ भी हो इस हिंसात्मक वृत्ति के परिणाम अनेक निरीह व्यक्तियों को ही सहना पड़ता है। समकालीन हिन्दी के रचनाकारों ने अपनी कहानियों के द्‌वारा इस भीषण सत्य का उद्‌घाटन भी किया है।

आज के उत्कृष्ट रचनाकार है मुद्राराक्षस। उनका असली नाम तो सुभाष चन्द्र है उनकी कहानी है 'जले मकान के कैदी'। उन्होंने खुद इस कहानी की भूमिका में लिखा है कि - "यह कहानी अलग-अलग सामाजिक समूहों के बीच विरोधी विचारों के संघर्ष से पैदा होने वाले तनावों को पारिभाषित करती है।"[1] इस प्रकार यह कहानी आतंक और फासीवादी प्रवृत्तियों को दर्शाते हुए स्वयं ही नहीं पाठकों को भी इस भीषण अवस्था के ऊपर स्तब्ध कराते हैं।

कहानी दंगे वालों के द्‌वारा जले मकान में कैद रहने वाले कुछ साधारण जनों की है। उसमें कहानी के मुख्यपात्र जो एक पत्रकार है वह भी शामिल है। वह उस जले मकान के अधिकारी से भी परिचित थे लेकिन वह परिवार दंगे में पूरी तरह खत्म हो गए। कुछ देर बाद उसके हाथ में उस जले मकान से काफी जली हुई एक किताब मिली। वह उस घर के मालिक मीम नसीम की नगरी लिपि में लिखी एक ज्योतिष की एक किताब थी। जले हुए इस ज्योतिष ग्रंथ से

---

[1] मुद्राराक्षस - जले मकान के कैदी - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ.7.

कहानीकार व्यर्थ आतंकवादी हमलों से जल कर राख होने वाले भारत के भविष्य की ओर हमें चिंतित बनाता है।

आज आदमी की पहचान जाति बन गए है। धर्म के इस गलत इस्तेमाल से भारत में जो जातीय एकता पुराने ज़माने में बरकरार थी वह आज नहीं के बराबर है। नव उपनिवेशिक जंजाल में पड़ने वाले आज के नव युवक अपने धर्म एवं मुल्क को सर्वश्रेष्ठ मानकर दूसरों की हत्या करने केलिए निकल पड़ते है। इस गंभीर अवस्था पर विचार करते हुए मुद्राराक्षस अपनी कहानी के द्वारा बताते है - "उनकी उस धमकी ने नहीं, बल्कि इस बात ने मुझे उलझन में डाल दिया था कि वे कोई भी तर्क सुनने को तैयार नहीं थे। वे अनपढ़ नहीं थे, पर ऐसे लोग अब अकसर मिल जाते थे, जो दास्तानों में बना ली गई कठपुतलियों की तरह आचरण करते थे। किसी भी तर्क को वे खारिज कर देते थे। किसी भी सवाल का एक ही जवाब उनके पास होता था, 'आप लोग हिन्दु-विरोधी' है।"[1] आज के दिशाहीन आतंकवादी परिवेश का उत्कर्ष चित्रण खींचकर जातीय हमले की व्यापकता पर कहानीकार ने इशारा किया है।

कहानीकार ने बाबरी मस्जिद ध्वंस के समय समाज के गंभीर चित्रण को भी इस में दर्शाया है - "छह दिसंबर को बाबरी मस्जिद

---

[1] मुद्राराक्षस - जले मकान के कैदी - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ.17

टूटने के बाद देश में दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा करते वक्त हिन्दु धर्मान्धों की जो तस्वीर मुझे मिली थी, वह खासी ही डरावनी थी। एक जगह तो उन्होंने बकायदा कुछ औरतों के मारे कपड़े उतार लेने के बाद उन्हें पीटते हुए सड़कों पर दौड़ाया था और बड़े इत्मीनान से इस दृश्य की फिल्म भी तैयार की थी।"[1] आज का जमाना पूरी तरीके से बाज़ार रूपी उपभोग संस्कृति पर टिका है। टी.वी. और इन्टरनेट आदि उपभोक्ता संस्कार का अभिन्न अंग है। धर्मांधता पर आसीन समकालीन मनुष्य अपने सखे संबंधियों की पीड़ा को भी मोबाइल में अंकित करके फिल्म बनाने में किसी भी हिचाव को प्रदर्शित करता नहीं। कहानी के अंत में जले मकान में कैद करने वाले सारे लोगों को दंगे वाले खत्म कर दिया जाता है।

स्वयं प्रकाश की एक कहानी है 'पार्टीशन'। पार्टीशन के इतने सालों बाद भी न बदलने वाले मानवीय सोच को इसमें प्रस्तुत किया है। कहानी के मुख्यपात्र कुर्बान भाई अजमेर में रहने वाले थे। लेकिन दंगे होने पर उनके सखे संबंधी सब मारे गए। बाकि बचे हुए लोग भी पाकिस्तान की ओर रवाना हो गए। लेकिन वे कुछ काम धाम करते-करते यहीं रह गए थे। आज तो उनका एक दूकान है। आदर्शवादिता, ईमानदारी, दयानतदारी, शराफत आदि गुणों ने उन्हें उस कस्बे की जाने माने व्यक्ति भी बना दिया था। लेकिन भिन्न दल के षड्यंत्रों में

[1] वही- पृ.20

पड़कर यहाँ उनका जीना भी मुश्किल में पड़ जाते है। घटना कुछ इस प्रकार है कि एक दिन एक बैलगाड़ी वाले ने उनके दूकान के सामने गाड़ी लेकर आया। बैल खोल और गाड़ी का अगला हिस्सा कुर्बान भाई के चबूतरे पर टिका दिया। तब ग्राहक और खुद का भी आना जाना समस्या बंध हो गया तो वे जाकर गाड़ीवाले से बात की तो गाड़ी वाले ने खुले आम इन्कार भी किया और गालियाँ भी दी। बात बढ़ गयी लेकिन कस्बे के कोई भी आदमी सालों से वहाँ रहने वाले कुर्बान भाई का साथ नहीं दिया। वह पुलिस स्टेशन जाकर जमानत दर्ज करना चाहा लेकिन पुलिस भी उनकी सहायता नहीं की। अंत में वे कहते है - "आप क्या खाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं ? कह रहे है पार्टीशन हुआ था ! हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है...."[1] अंत में कुर्बान भाई को यहाँ से जाना ही पड़ता है। कहानीकार स्पष्ट करते है कि पार्टीशन भले ही देश में हुआ हो, मानव के मन में आज भी वह आतंक रूपी क्रूर भाव में बरकरार है।

धार्मिक स्पर्धा कायम रखने से ही समाज के उन्नत वर्ग को उससे लाभ होगा। इसलिए पूँजीवादी समाज इस संघर्ष को पूरी तरीके से सदा कायम रखने केलिए श्रद्धावान है। फलत: धर्म भी निजीकृत हो रहा है आज तो धर्म की राजनीति चलती है। अपने-अपने धर्म को अधिक प्रज्ज्वल बनाने के उद्देश्य से अनेक बाबाओं के चैनल भी आज प्रचलित है। यह सब धर्म के वास्तविक मूल्य को बरकरार रखने

---

[1] स्वयंप्रकाश - पार्टीशन - आधी सदी का सफ़र नामा - पृ.105

के बजाय विभिन्न धार्मिक लोगों के बीच स्पर्धा बढ़ाने का काम ही आज हो रहा है। इसमें उत्पन्न सांप्रदायिक माहौल आज आतंक में पहूँच गया है। समकालीन रचनाकार वन्दना राग की 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' कहानी समाज के इस माहौल को ही प्रदर्शित कराते है। आज भारतीय संस्कृति को बरकरार रखने वाले सब मूल्य इन्टरनैशनल मार्केट में बिकने केलिए भेज दिया जाता है। इस प्रकार कबीर भी बाज़ार में है। इस भीषण समस्या की ओर इशारा करते हुए कहानीकार कहानी में एक स्त्री की मृत्यु की बात करते है। समस्या यह है कि एक स्त्री की मृत्यु हुई है लेकिन उसकी जाति का कुछ पता नहीं इसलिए किसी भी जाति के लोग उसे दफनाने का कर्म नहीं करता। अंत में उसे दफनाने के बजाय उसकी रीडिस्कवरी कर दी जाती है। कहानी के द्वारा रचनाकार इस भीषण आस्था को प्रेश्रय दिया है कि भारत बाज़ार के रूप में पूरी तरीके से बन रहा है।

इसके अलावा नासिरा शर्मा की 'सरहद के उस पास', निमिता सिंह की 'कर्फ्यू', शानी की 'युद्ध' आदि कहानियों में भी बहार के युद्ध को दर्शाते हुए न अंत होने वाले भीतर के युद्ध की बात को व्यक्त की है। असगर वजाहत की एक चर्चित कहानी है मुर्दाबाद जिसमें राजनीतिक पार्टिबन्दी और आर्थिक मज़बूरियाँ सीधे सादे लोगों को आतंकवादी बनने में कैसे विवश बनाते है इसका चित्रण है। इसके विपरीत नमिता सिंह की 'पर्सनल मामला', 'मूषक', स्वयंप्रकाश की

'आदमजात' आदि कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं की है। जहाँ सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद को इन्सानियत ठेंगा दिखाती है। विश्व पूँजीवाद की देन बनी आतंकवाद आज एक गंभीर मुद्दा है। मानवीय मन में सहृदयता एवं भ्रातृत्व के भाव को बढ़ाने की प्रयत्न में समकालीन रचनाकार सदियों से लगे हुए है।

2.7.2. समकालीन कहानी में नवउपनिवेशिक शक्तियों के प्रति प्रतिरोध

समकालीन कहानी हर अत्याचार के प्रति विद्रोहित है। वह विद्रोह के ज़रिए हमारी संस्कृति की रक्षा करने की सलाह जनता को देते है। उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर' समाज में हो रही बाज़ारू संस्कृति के खिलाफ विद्रोह को ही व्यक्त करते हुए कहानी के अंत में लेखक कहते है -

"जो प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं,
यथार्थ मिटा रहा है जिनका अस्तित्व
हो सके तो हम उनकी हत्या में न हों
शामिल
और संभव हो तो संभालकर रख लें
उनके चित्र .....
ये चित्र अतीत के स्मृति चिह्न है ....."[1]

---

[1] उदयप्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर - अरेबा परेबा - पृ. 170

उनकी एक और कहानी है ‘भाई का सत्याग्रह’। कहानी के पात्र समाज में व्याप्त घोर अराजकता एवं उन पर हुई अमानवीयता पर सत्याग्रह की रास्ता को अपनाता है लेकिन अंत में पुलिस वाले पत्नी से एक पेपर में दस्तखत कराते है जाँझने पर पता चला कि उस पेपर में लिखा था - “पूरे होशोह वास में मैं गंगादेवी यह हलफिया बयान दर्ज करवाती हूँ कि मेरा पति पागल है।”[1] आज के इस दर्दनाक स्थिति को मिटाने का फल मात्र प्रतिशोध ही है। नहीं तो यह उपनिवेशिक शक्ति पूरे समाज को चकनाछूर बना देंगी।

निष्कर्ष

समकालीन समाज एक नयी शासन के शिकार है उसे हम नवउपनिवेशवाद कहते है। इस नयी शासक ने हमारी रीतियों की संरक्षण करने के बदले एक नए तंत्र को संस्कृति में मिला दिया है - ‘उपभोग करो, विचार मत करो।’ नवउपनिवेशवादी अपसंस्कृति के मूल मंत्र बने इस वाक्य को सच मानने वाले वर्तमान मनुष्य पूरी तरह बाज़ारवाद के शिकंजे में है। आज तक इस नए व्यापारिक तंत्र से न व्यक्ति बच सका न हमारे समाज। समकालीन हिन्दी कहानी के रचनाकार अपनी रचनाओं के द्वारा पूरे संस्कृति के घातक बने इस अर्थतंत्र का खुल कर प्रतिरोध प्रस्तुत करते हुए मानव को इन खतरों से सहज एवं सचेत बनाने पर निरंतर प्रयत्नरत है।

---

[1] उदय प्रकाश - भाई का सत्याग्रह - पॉल गोमरा का स्कूटर - पृ.101

अध्याय तीन

समकालीन कहानी में स्त्री विमर्श

अध्याय - 3

समकालीन कहानी में स्त्री विमर्श

इस पूरी पृथ्वी में एक नयी सृष्टि केवल स्त्री द्‌वारा ही संभव है यही कारण है कि आज भी हम 'मातृ देवो भव:' कहते है 'पितृ देवो भव' नहीं कहते। फिर भी इसमें पुरुष की अनिवार्यता को नकारे बिना कह सकते है कि बिना स्त्री के पुरुष एक सृष्टि करने के योग्य नहीं होते। इतिहास को देखें तो पायोंगे कि स्त्री एक समय समाज के केन्द्र में थी। कालान्तर में वह अपने अनेक रूपों के साथ घर के भीतर ही रह गयी। माँ होकर वह सृष्टि करती थी, बहन होकर वह भावना, कर्तव्य, रक्षा तथा दायित्व बोध का निर्वाह करना सिखाती थी, पत्नी बनकर स्त्री पुरुष के शारीरिक और मानसिक दोनों भावों की तृप्ति करती थी। इन अनेक रूपों के बदले वह खुद की एक पहचान बनाना चाहती तो समाज उन्हें पारंपरिक नियमों में बन्द करने की कोशिश करने लगी। फलस्वरूप आज नारी के सामने कई प्रश्न है जिसका हल वह स्वयं ढूँढती है। आत्मपरीक्षण द्‌वारा वर्तमान नारी जानना चाहती है कि उसका अतीत कैसा रहा। स्त्री समाज की यही विचार आज एक गंभीर विमर्श का रूप धारण कर चुके है।

3.1. स्त्री - विमर्श के रूप निर्धारण

समकालीन समय में जगत में एक शब्द सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है, वह है स्त्री-विमर्श अर्थात् समाज पुरुष प्रधान बनते चले जाने से स्त्री अपने को पूरे व्यक्तित्व और उसके इतिहास के साथ अपने ओर जाँगने पर मज़बूर होती है। अपने श्रेष्ठ अस्मिता की प्रतिष्ठा केलिए वह विमर्श भी करती है। वैश्वीकरण के इस युग में अधिक उपभोग की वस्तु बनी। स्त्री को लेकर सभी जगह में काफी विचार विमर्श हुआ है। जिसे साहित्य में नारी-विमर्श कहा गया।

काफी विद्वानों के एक प्रश्न है कि स्त्री केलिए एक विमर्श की आवश्यकता क्यों ? इन गंभीर परिस्थितियों में स्त्री-विमर्श अत्यन्त प्रासंगिक भी बन जाता है क्योंकि स्त्री-विमर्श द्वारा ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक आदि में स्त्री की पारस्परिक स्थिति का गहन चिन्तन कर गलत पारम्परिक स्थितियों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की जा सकती है। स्त्री-विमर्श द्वारा ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी अस्मिता स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध हुआ जा सकता है, उच्च मध्य एवं निम्न वर्ग की स्त्रियों में अपने अधिकारों को प्राप्त करने की चेतना भी स्त्री-विमर्श द्वारा ही जागृत की जा सकती है और जब तक अधिकारों की प्राप्ति न हो, तब तक उनको प्राप्त करने केलिए

संघर्ष करने को प्रेरित भी स्त्री-विमर्श द्वारा ही संभव है अर्थात् एक दिन शुरू करके एक दिन समाप्त होने वाले क्षीण आन्दोलन न बनकर यह आज की युगीन परिस्थितियों की एक माँग बन गयी है, स्त्री विमर्श आज एक ज्वलन्त आवाज़ बन गयी है। भारतीय समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप स्त्रियों की स्थितियों में सुधार केलिए वह सदा प्रतिबद्ध भी है। इसका स्पष्ट प्रतीक है आज का स्त्रीवादी साहित्य-

"जितने आत्मविश्वास से
धरती पर पाँव रखते हो तुम
उतने ही आत्मविश्वास से
धरती पर चल नहीं पाती हूँ मैं
जिस आत्मविश्वास से चलते हो तुम गर्वोन्नत
उसी आत्मविश्वास से
क्यों नहीं सिर उठा पाती हूँ मैं
तुम करके अनगिनत अपराध
जी लेते हो एक सम्मानित जीवन
और तरेरते हो आँखें
सच के सूरज की
पर बिना किये कोई अपराध
एक अपराध-बोध जीती हूँ मैं।"[1]

---

[1] तसलीमा नसरीन-(सं.डॉ. विनयकुमार पाठक)-हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि - पृ.138-139

इस प्रकार स्त्री जीवन की वेदना, व्यथा और उसके आत्मबोध का तीक्षण मूल्यांकन आज के युग की ही विशेषता है। उनके जीवन में जन्म से ही बसे व्यर्थ आत्मबोध की गंभीर सोच ही आज का स्त्री विमर्श है।

स्त्री विमर्श का जन्म ही पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ उठी एक विद्रोही आन्दोलन है। इसलिए पितृसत्ता की सही व्याख्या भी अत्यंत ज़रूरी है। प्रभा खेतान ने 'उपनिवेश में स्त्री' में पितृसत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा "पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हज़ारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया। उसे साधन के रूप में प्रयोग किया - उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने सन्दर्भ में पारिभाषित किए। स्त्री का यह अमानवीकरण दलित के अमानवीकरण से कहीं ज़्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि दलित पुरुष भी तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सदस्य है और पुरुषोचित अहंकार के कारण स्त्री का शोषण और उत्पीड़न करने से वह भी बाज नहीं आता।"[1] इस प्रकार पितृसत्तात्मक मूल्य भी मानवीयता से बाहर है।

पितृसत्तात्मक समाज ने जिन निरंकुश मूल्यों को खड़ा किया था वे सब स्त्री-विमर्श के द्वारा ही सामने आए। पितृसत्तात्मक मूल्य ने

---

[1] प्रभाखेतान - उपनिवेश में स्त्री - पृ.39

स्त्री को एक घरेलू चीज़ बना दिया था जबकि पुरुष को बाह्य के संपूर्ण जगत के अधिकारी का रूप भी प्रदान किया गया था। इस प्रकार के षड्यंत्र के कारण स्त्री अतीत में भी शोषित की गई, वर्तमान में भी उसे सताई जा रही है। इस मूल्य व्यवस्था के विरुद्ध भी स्त्री-विमर्श डटकर संघर्ष करती है।

स्त्री विमर्श की सोच पुरुषों के विरोधी नहीं है बल्कि स्त्री विमर्श महिला-उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को समझने की दिशा में गतिशील और निरंतर परिवर्तित होनेवाली विचारधारा है और स्त्री को भी मनुष्य माना जाए, उसे लिंग भेद से स्वतंत्रता एवं समानता भी प्राप्त हो। इस प्रकार स्त्री विमर्श आज की एक ज्वलंत मुद्दा है।

3.2. स्त्री विमर्श का पश्चिमी दृष्टिकोण

विमर्श यानी 'डिस्कोर्स' अर्थात् विचार-विनिमय, जीवन्त बहस, सोच विचार, परिचर्या।[1] नारी के प्रति सोच विचार करने का पहला प्रयत्न तो पश्चिम में ही शुरू हुआ था। इसलिए स्त्री विमर्श पश्चिम की उपलब्धि है।

नारी आन्दोलन की शुरूआत पाश्चात्य देशों में होने के कई कारण है इसमें प्रथम है 'पाश्चात्य संस्कृति'। पस्चिमी संस्कृति के अनुसार स्त्री को प्राप्त पहला स्थान तो प्रेयसी की थी। बाद में दूसरा

---

[1] डॉ.एन मोहनन - समकालीन हिन्दी उपन्यास - पृ.110

स्थान तो पत्नी को प्राप्त थी तो माँ को तीसरा स्थान ही दिया जाता था फिर भी माँ को वह पूजनीय नहीं मानता था। स्त्री को एक इनसान या मनुष्य के रूप में देखने की क्षमता उस समाज पर नहीं थे। यह स्थिति स्त्रियों को एक आन्दोलन की ओर प्रेरित किया।

फिर एक कारण कामगार औरतों को लेकर था। सालों से मज़दूर औरत पुरुषों से अधिक समय तक काम करने पर भी उसे कम वेतन ही मिलते थे। साथ ही वे वहाँ शोषण का शिकार भी बनते थे। इसके विरुद्ध सन् 1857 ई. मार्च 8 में अमेरिकी कामगार औरतें कारखानों में अपने अधिक वेतन एवं काम के घंटों को सोलह से घटकर दस घंटे कर देने की माँग को लेकर कपड़ा मिलों में काम करना बंद कर दिया। सड़कों पर उतरकर प्रदर्शन किए - “इस प्रथम संगठित प्रदर्शन को ही महिला-आन्दोलन की प्रेरणा मानते हुए 8 मार्च सदा केलिए ‘अंतर्राष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस’ के रूप में मनाया जाने लगा है।”[1]

अमेरिका में हुए इस उज्ज्वल आन्दोलन के उपरांत स्त्रियाँ अपने बारे में सोचने लगे, वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगे। फिर हुआ एक आन्दोलन मताधिकार को लेकर था। इंग्लैंड और अमेरिका में पहले स्त्रियों के मताधिकार को लेकर आन्दोलन शुरू हुआ उस समय किसी भी महिला वर्गों को यह अधिकार प्राप्त नहीं थे।

[1] डॉ.ओम प्रकाश शर्मा - समकालीन महिला लेखन- पृ.87-88

विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप 1869 में अमेरिका में मतदान का अधिकार देना प्रारंभ हुआ। फ्रांस में 1932 ई.में, इंग्लैंड में 1928 में यह अधिकार प्राप्त हुआ। लेकिन 1920 में कानूनी वैधता प्रदान कर महिलाओं को मतदान अधिकार प्रदान किया गया।[1]

स्त्री आन्दोलन का एक ओर शुरूआत साठ के दशक में पश्चिम में दूसरे विश्वयद्ध से प्रभावित होकर ही शुरू हुआ था।[2] स्त्रियाँ समझ गयी कि कानूनी तौर पर समानता के नियम के पारित होने पर भी समाज में व्यावहारिक स्तर पर अब भी भेदभाव बरकरार है। इसके खिलाफ ज़ोर से आन्दोलन तो नहीं हुआ। फिर भी सिमोन द बुआ, बेट्टी फ्राइडन आदि साहित्यक विद्वानों के लेखन से समाज उद्वेलित था। बाद में स्त्रियों ने केट मिलेट को स्त्री मुक्ति आन्दोलन के माओ त्से तुंग माना। फलतः आन्दोलन उग्र रूप में बदल गया। इस उग्रवादी आन्दोलन ने स्त्री-पुरुष संबंधों में दरारें प्रस्तुत किया। लेकिन यह भी सत्य है कि पुरुष के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। इसका परिणाम था पश्चिम का 'बैक टु होम' आन्दोलन।

नारीवाद के तीन विभेद का उद्भव भी हुआ। समाजवादी नारीवाद, उदारवादी नारीवाद, उग्रवादी नारीवाद। इन सारे विमर्शों से प्रबावित होकर 1968 में एक संगठन 'सोसाइटी फॉर कटिंग अपमैन'

---

[1] डॉ. एन.मोहनन - समकालीन हिन्दी उपन्यास - पृ.112

[2] वही - पृ.113

(SCUM) की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य ही समाज में पुरुषों का कद छोटा करना था।

उग्रवादी नारीवादियों के स्त्री-विमर्श में यौन स्वतंत्रता ही स्त्री मुक्ति है। पुरुषों के साथ के संबंध को उग्रवादी बलात्कार कहा। परिणाम आज मौजूद है - लैस्बियन सोसाइटी और लैस्बियन राइट्स के रूप में। उन लोगों ने तमाम परम्परागत यौन - निषेधाज्ञाओं का विरोध किया जैसे समलैंगिकता और नाजायज बच्चे पैदा करना, विवाहपूर्व विवाहेतर यौन संबंधों आदि उनके अनुसार कोई बुराई नहीं है। उग्रवादियों के अनुसार स्त्री सेक्स का आनन्द ले सकती है। समाज की इस भयावह स्थिति को देखकर 80 के दशक में बेट्टी फ्राइडन ने कहा - “यदि नारी-मुक्ति का अर्थ इस प्रकार का स्वेच्छाचार है, तो इस मुक्ति से भगवान बचाए।”[1] इस प्रकार समाज पर इस नारीवाद के द्वारा बुरा प्रभाव भी पड़ने लगा तो बेट्टी फ्राइडन जो इस उग्रनारीवाद के वक्ता है उन्होंने अमेरिकी पत्रिका में एक लेख के माध्यम से अपने आप को उस नेशनल आर्गनाइज़ेशन ऑफ वुमैन (NOW) से अलग कर लिया तथा ‘सेंकेंड स्टेज’ पुस्तक लिखकर उस उग्रवादी विमर्श के प्रति आश्चर्य भी प्रकट किया। आज भी जो लोग इससे युक्त है वे परिवार एवं विवाह को नकारते है इसे बचाने केलिए 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ के आह्वान पर ‘परिवार वर्ष’ मनाया गया। हर साल इसकी

[1] उषा महाजन - उठे, अन्नपूर्णा साथ चलें - पृ.101

घोषणा करके अपने जड़ों की ओर लौटने केलिए लोगों को प्रेरणा देते है।

उदारवादी नारी आन्दोलन सन् 1960 ई.में शुरू हुआ। इसमें प्रमुख है बेला अबलेक्स, बेट्टी फ्रीडाँ, एलिज़बेथ हाऊसमैन आदि। इनके अनुसार “स्त्री जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर सकती है, बशर्ते समाज उसे पुरुषों के बराबर सुविधाएँ प्रदान करें।”[1] उदारवादी आन्दोलन का सबसे बड़ा मुद्दा था गर्भपात का जो कि अपने आप में एक बड़ी क्रांतिकारी माँग थी। कालान्तर में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उदार नारीवाद केवल मध्यवर्गीय अमेरिकी श्वेत स्त्री के अधिकार एवं कर्तव्य का लेखा-जोखा बनकर रह गया।

समाजवादी नारीवाद जो आजकल विश्व प्रसिद्ध है यह पुरुष विरोधी नहीं है। बल्कि पुरुष को स्वीकारते हुए अपने समान अधिकार की माँग की जाती है।

ईसाई धर्म तो स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देती है। पारसियों में पुरुष दूसरे विवाह कर सकते है स्त्री नहीं। कुछ आदिवासियों में स्त्री पूजा करने केलिए अयोग्य मानते है। मेक्सिको में स्त्री मुक्ति केलिए आवाज़ उड़ाने वाली प्रथम व्यक्ति है ईसाई सन्यासी सिस्टेर जुआना। इस प्रकार कई देशों में कई स्त्रियों ने संपूर्ण शोषण भरी अवस्था के

---

[1] राजेन्द्र यादव,अर्चना वर्मा - अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य - पृ.183

खिलाफ आवाज़ उठाई इनमें प्रमुख है - इंग्लैंड की मेरी बुलस्टण क्राफ्ट, बारबरा ले स्मिथ, बेस्सी रैनर, पार्क्स, एमिली डेविड, जोसफेंन, बटलर, फ्रांस में ओलिंपे गौज, अमेरिका में लुक्रिषिया मोटट, एलिज़बथ केटी स्टॉटण आदि। साहित्य के क्षेत्र में यह आन्दोलन एक विमर्श के रूप में सन् 1950 के आसपास रूपायित हुआ था। अनेक पाश्चात्य साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से भी इन आन्दोलन को आगे बढ़ाया है।

3.2.1. मेरी वोल्सटन क्राफ्ट

स्त्री विमर्श को एक विषय बनाकर साहित्य जगत में प्रस्तुती करनेवालों में प्रथम स्थान प्राप्त व्यक्ति है मेरी वोल्सटन क्राफ्ट। इनकी सन् 1772 में प्रकाशित 'द विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमैन' जिसका हिन्दी अनुवाद 'स्त्रियों के अधिकारों का औचित्य-प्रतिपादन' नाम से मीनाक्षी जी ने किया है।

इस पुस्तक के द्वारा वालस्टान क्राफ्ट ने सर्वप्रथम नारी अधिकारों की माँग की। उन्होंने लिंगगत विभेद भूलकर स्त्रियों में मनवोचित गुणों को विकसित कराने का आह्वान भी दिया और वह यह भी स्वीकार करने से इनकार किया कि स्त्रियाँ बुद्धि के मामले में पुरुषों से कमज़ार है। इस प्रकार उसने समाज की उस व्यवस्था पर सवाल उठाए जो स्त्रियों की दोयम दर्जे की स्थिति के लिए जिम्मेदार

है। इस तरह नारी आन्दोलन को एक वैचारिक आधार प्रदान करने के कारण उनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है और उन्हें मुक्ति -आन्दोलन की पितामही कहा जाता है।

3.2.2. जॉन स्टुअर्ट मिल

ब्रिटन में जन्म लेने वाले जे.एस.मिल ने ही ‘द सब्जेक्शन ऑफ वूमैन’ लिखा था जिसका अनुवाद प्रगति सक्सेना ने ‘स्त्रियों की पराधीनता’ नाम से हिन्दी में किया है। उनकी यह पुस्तक 1851 ई. में ही प्रकाशित हो गई थी। उन्होंने न केवल स्त्रियों की पराधीनता पर विचार किया बल्कि इस पराधीनता, असमानता, गुलामी के प्रमुख कारण के रूप में अशिक्षा को बताया। उनके अनुसार स्त्रियों को भी पुरुष के समान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का एकमात्र उपाय शिक्षा को प्राप्त करना है।

जे. एस.मिल के इन विचारों को पढ़ने के बाद प्रमुख साहित्यकार कात्यायनी सत्यम अपने मतों को व्यक्त करते है कि - “आज पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, घुमाकर नाक पकड़ने और बाल की खाल निकालने की आदी तमाम अकर्मक नारीवादी विमर्शकों से भी अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में और अधिक व्यावहारिक-वैज्ञानिक ढंग से स्त्री-प्रश्न को लगभग डेढ़ सौ साल पहले जॉन स्टुअर्ट मिल ने देखा - समझा था। स्त्री प्रश्न पर

मिल का चिन्तन स्त्री-मुक्ति के तमाम सच्चे पक्षधरों की क्रांतिकारी विरासत है। स्त्री-मुक्ति विमर्श की इतिहास-यात्रा में मेरी वोलस्टन क्राफ्ट की पुस्तक के बाद यह पुस्तक दूसरे मील का पत्थर है, यह इतिहास का स्थापित तथ्य है।”[1]

3.2.3. एंगेल्स

मार्क्स मतों से प्रभावित होकर एंगेल्स द्वारा 1884 ई.में लिखा हुआ एक पुस्तक है ‘परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति’। इस ग्रन्थ का नारी विमर्श में महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। इस ज्वलन्त कृति में उन्होंने नारी को चूल्हे चौके से मुक्त करके, घर से बाहर एक मज़दूर के रूप में निकालने की पूँजीवाद की भूमिका को नारी मुक्ति की दिशा में एक श्रेष्ठ कदम बताया। उन्होंने महिलाओं के रोज़गार को ही उनकी प्रगति का मुख्य अंश बताया।

3.2.4. बेट्टी फ्राइडन

पश्चिमी नारीवाद को एक नयी पहचान दिलानेवालों में प्रथम नाम है बेट्टी फ्राइडन। उनकी 1963 ई. में प्रकाशित पुस्तक है ‘द फेमिनिन मिस्टिक’। इसमें उन्होंने अमेरिकी महिलाओं की ओर ध्यान दिया है। अनन्त काल से विश्व के अतुल्य शक्तिशाली राज्य के रूप

---

[1] प्रगति सक्सेना - स्त्रियों की पराधीनता - पृ.30

में माने जाने वाले अमेरिका के स्त्रियों की स्थिति इससे कुछ भिन्न नहीं थे।

अमेरिकी मध्यवर्गीय महिलाएँ भी घर की चारदीवारी को ही सुखों के ढेर मानती थी। अमेरिका की सबसे बड़ी मुद्दा श्वेत और अश्वेत स्त्री का उठा। अपभोक्त समाज ने इस स्थिति को काफ़ी गंभीर बना दिया था। उपभोक्त समाज मानते थे कि नारी को नारीत्व की आकांक्षा को ही सर्वप्रथम पूर्ण करना है। इसके परिणाम बने उपभोक्त सामग्रियाँ भी इनकी आकांक्षाओं को पूरी नहीं कर सका। अनेक मध्यवर्गाय अश्वेत स्त्रियाँ इसके शिकार हुए।

इस प्रकार बिगड़े गए नारी समाज को अपनी नैतिकता की ओर आकर्षित करना बेट्टी फ्राइडन अपना आदर्श एवं कर्तव्य मानते थे। इसलिए उन्होंने स्त्री शिक्षा को ही सर्वप्रथम बल दिया, कहा कि - "यदि हम इसी प्रकार लोखों युवा माताओं को पैदा करते रहे जिन्होंने अपना विकास तथा अपनी पहचान बनाने के पहले ही अपनी शिक्षा को बन्द कर दिया है, जिनके पास अपने बच्चों को देने केलिए मानवीय मूल्य बोध या कोई ठोस सन्देश नहीं है तो सीधे अर्थों में हम एक जन-हत्या का अपराध कर रहे है जिसका प्रारंभ अमेरिकी महिलाओं के सामूहिक दफन से हो रहा है तथा जिसका अंत उनके

बेटी-बेटियों के अधिक से अधिक अमानवीयकरण में होगा।"[1] इस प्रकार शिक्षा को उन्होंने सर्व दुख संहार के रूप में व्यक्त किया।

उन्होंने 1966 में नेशनल आर्गनाइज़ेशन ऑफ वूमैन (NOW) की स्थापना करते हुए इसकी अध्यक्षा के पद धारण किया। यह आजकल नारीवादी संस्थाओं में सर्वप्रथम है।

उन्होंने इस पुस्तक के द्वारा स्त्री को विमेन नाम से प्रगति कर दिया गया। उन्होंने अपने कर्मों के द्वारा औरत को अपने अस्तित्व के संबंध में चेतना जगा दी, लड़कियों का अधिकार लड़कों के बराबर है यही वह समाज को सिखाती थी बच्चों केलिए संभाल गृह की माँग की, उन्होंने गर्भधारण के बाद भी स्त्री शरीर पर पुरुष का नहीं स्त्री पर ही पूरा अधिकार है और औरत के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण के बदलाव पर भी बल दिया।

3.2.5. सीमेन द वोउवार

प्रांसीसी लेखिका सीमेन द वोउवार नारीवादी साहित्य की एक अतुल्य शब्द है। उन्होंने नारी समाज से संबंधित सभी धर्म, इतिहास, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का अध्ययन करके सन् 1949 में 'दि सेकेंड सैक्स' नामक पुस्तक प्रस्तुत किया। जिसको 'स्त्री उपेक्षिता'

---

[1] बेट्टी फ्राइडन - दि फेमिनिन मिस्टीक - पृ.38

नाम से हिन्दी साहित्यकार प्रभा खेतान ने हिन्दी में अनूदित भी किया है।

उन्होंने नारी को अनेक तरह से परखा और कहा कि - "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बढ़कर औरत बनती है। कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबो-गरीब जीव का निर्माण करती है।"[1] अपनेमतों से वह खुलकर प्रकट करती है कि किसी भी दर्जे की स्त्री सामाजिक शोषण से मुक्त नहीं है।

वोउवार मातृत्व को भी एक तरह की गुलामी मानती थी। मासिक धर्म, गर्भवस्था, प्रजनन आदि को एक अनावश्यक व्यवस्था के रूप में वह मानती थी। उनके अनुसार स्त्री शोषण के प्रमुख कारण लिंग भिन्नता है। इस प्रकार स्त्रियों केलिए एक खुला इतिहास रचनेवाली वोउवार नारीवाद की एक श्रेष्ठ हिस्सा ही है।

3.2.6. कैट मिलैट

नारी विमर्श के समर्थक एवं उग्र नारीवादी कैट मिलैट ने 1970 ई. में (Sexual politics) सेक्सुअल पोलिटिक्स नामक पुस्तक प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज को स्त्री शोषण का केन्द्र बताया। पितृसत्ता अपने अधिकार जमाते-जमाते प्रमुख रूप में स्त्री को

---

[1] प्रभा खेतान - स्त्री उपेक्षिता - पृ.121

घरेलू कामों में फँसाकर रखते थे। फलस्वरूप यौन शोषण, प्रजनन का भी वह खूब विमर्श किए है। कैट मिलैट के अनुसार स्त्री के कारगर है पितृसत्तात्मक समाज।

3.2.7. सुलोमिथ फायरस्टोन

उनकी स्त्री की विविध मुद्दों से संबंधित प्रकाशन है 'दि डायलेक्टिक्स ऑफ सैक्स'। इसमें भी उन्होंने स्त्री के शोषण के कारण के रूप में प्रजनन को बताया है। स्त्री के शारीरिक भेद, उनकी प्रेयसी, पत्नी रूप भी उनके अनुसार शोषण के विविध नाम है। पितृसत्तात्मक समाज के विविध रूपों एवं भावों का विश्लेषण ऐतिहासिक भौतिकवाद की मार्क्सवादी पद्धति के प्रयोग के द्वारा ही चित्रित किया है। आर्थिक वर्ग संघर्ष और लिंग वर्ग संघर्ष की तुलना करने के साथ 'तकनीकी कुंडी' के माध्यम से गर्भधारण का समर्थन भी उसने इस पुस्तक में प्रस्तुत की है।

3.2.8. जर्मन गीयर

नारिवादियों में जर्मन गीयर भी अत्यन्त श्रेष्ठ है। उन्होंने 1971 ई. में 'विद्रोही स्त्री' नामक पुस्तक लिखा। उन्होंने स्त्री मुक्ति को विद्रोह नाम दिया। 'विद्रोही स्त्री' में उन्होंने स्त्री देह, उसकी रूढ़ छवि, ऊर्जा, शिशुरूप, लड़कीपन, वय:सन्धि,कच्चे माल की छवि, उसकी

शक्ति एवं काम काज की चर्चा करने के साथ ही, उसके प्रेम की भी चर्चा की है।

स्त्रियों के बदलाव का भी इशारा करते हुए वे कहते है - "वे अपनी बात होंठों पर ला रही है और एक-दूसरे से बात करने लगी हैं। एक साथ मिलकर बात करती औरतों को देखकर पुरुष हमेशा से ही बेचैन होते आये है। आजकल तो इसका मतलब चरम विद्रोह है।"[1] इसलिए उन्होंने सदा स्त्रियों को शांत न रहने का आह्वान किया क्योंकि विद्रोह से ही क्रांति जन्म लेती है। क्रान्ति के आगमन केलिए पूँजीवादी राज्य में उपभोक्ता बने रहने वाले उन संस्कृति के खिलाफ भी विद्रोही भावना या इनकार के स्वर मुखर होना भी चाहिए। अंत में वह पूछते है - "क्या वे (स्त्री) इस विद्रोह में स्त्रियों का साथ देंगी। आप क्या करेंगी ?"[2] इस प्रकार के प्रश्नों के साथ पूरे स्त्री समाज को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने की कोशिश में भी वे सफल हुए है।

3.2.9. नाओमी वुल्फ

नारीवादी साहित्य से जुडी हुई एक लेखिका है नाओमी वुल्फ। उनकी 'Fire with fire' नामक पुस्तक में उन्होंने दो तरह के नारीवाद की चर्चा की वह है - उत्पीड़ित नारीवाद, शक्ति नारीवाद। पहला तो

---

[1] मधुबी जोशी - विद्रोही स्त्री - पृ.15.

[2] वही - पृ.299

लिंग पर आधारित है तो दूसरा शक्ति पर। अपनी पुस्तक के द्‌वारा वह समाज से स्त्री शक्ति का खुलकर विश्लेषण करते हुए कहा कि स्त्री पुरुष को नहीं उसकी श्रेष्ठता की ग्रंथी को ही अपनी शक्ति से पराजित करता है।

3.2.10. लूसी इरिगारे

नारीवाद से संबंधित लूसी इरिगारे की एक प्रमुख प्रस्तुति है 'एन एथिक्स ऑफ सेक्सुअल डिफरेन्स'। अपनी पुस्तक के द्‌वारा उन्होंने समाज के नीतिशास्त्रों में क्रांति का आह्‌वान किया। अपने इतिहास एवं सामाजिक नीति परंपराओं के विश्लेषण से समाज के स्त्री समुदाय को अपने प्रति एक बार भी ना सही सोचने पर बाध्य बनाना उनका लक्ष्य था।

3.2.11. वर्जीनिया वुल्फ

पाश्चात्य नारीवाद के प्रेषक साहित्यकार है वर्जीनिया वुल्फ। उनकी रचना है (A room of one's own) 'अपना कमरा'। वुल्फ ने खास तरीके से अपनी लेखनी के द्‌वारा ही पुरुष समाज के खिलाफ आन्दोलन चलायी। उनका मानना है कि नारी को समाज में स्थान अर्थ से ही प्राप्त होती है। उसे घर में भी एक अलग पहचान या अलग कमरा आर्थिक वृद्‌धि से ही प्राप्त होती है। स्त्री को सामाजिक

मान्यता प्राप्त करने की राह बताने वाला यह ग्रन्थ नारीवाद का बैबिल कहा जाता है।

इन लोगों के अलावा यूरोप और अमरीका में नारीवाद ने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में खूब ज़ोर पकड़ा और मोनीक विटिंग, काटे मिलर, जूलिया क्रिस्टीवा, हेलेन सिक्सस, एलीन मोअर्स, एलेन शोवाल्टर, एंजिला कार्टर, मैरी जैकोबर्स आदि अनेक नारीवादी लेखिकाओं की पुस्तकें भी इस समय प्रकाशित हुई।[1] लेखनी एवं सामाजिक बदलाव से स्त्री विमर्श प्रगति की ओर है। जिसके फलस्वरूप नारी स्वयं को 'फेमिनिस्ट' कहने के बदले 'मैं एक इन्सान हूँ' कहती हुई परिलक्षित होती है।

पाश्चात्य स्त्री विमर्श की वृद्धि एवं सामाजिक बदलाव को देखकर भारत में हुआ परिवर्तन को जानने केलिए स्त्री विमर्श के प्रति भारतीय दृष्टिकोण एवं इसके फलस्वरूप उभरी साहित्यिक परंपराओं को जानना ज़रूरी है।

3.3. स्त्री विमर्श का भारतीय दृष्टिकोण

समाज के सभी क्षेत्रों में विराजमान एक अद्‌वितीय व्यक्तित्व के धनी है स्त्री। जो ऐतिहासिक काल से सभी शास्त्रों, इतिवृत्तों, धर्मग्रन्थों एवं साहित्य के केन्द्र में भी विद्‌यमान है। अर्द्‌धनारीश्वर

---

[1] डॉ.नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.432

एवं ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:’ आदि संकल्पनाओं को भारतीय परंपराओं की आधारशिला मानने वाले भारतीय समाज आज ‘अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी’ ऐसी स्थिति में कैसे पहूँचे इसे जानने केलिए वैदिक युग से लेकर भारतीय चिन्तन परंपरा में स्त्री के विकासमान स्वरूप को जानना ज़रूरी है।

भारतीय समाज में जब आर्यों का आगमन हुआ तब से ही यहाँ सामाजिक व्यवस्था का उद्‌भव हुआ था -इन सब का परिणाम था परिवार एवं कुटुम्ब। इस समय के पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों का स्थान सम्मानपूर्ण थी। इसका ज्ञान इस समय में रचित वेद ग्रन्थों से प्राप्त होता है जैसे -

“यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवं त्वं सम्राजेधि प्रत्युरस्तं परेत्य च ।।”[1]

इस समय में स्त्री शिक्षा का प्रचार था। विधवा विवाह का भी प्रोत्साहन थी, कन्याओं को अपने जीवन साथी चुनने का भी अधिकार था। उस समय कहा करते थे कि - “वह पुरुष धन्य है जिसकी कई पुत्रियाँ है।”[2] लेकिन इसके विपरीत ब्राह्मण काल में पुत्र-जन्म महोत्सव मनाते हुए कहा जाता था - “पत्नी एक साथी है, पुत्री एक

---

[1] अथर्ववेद - 14.1.43

[2] ऋग्वेद - 6.75.2

विपत्ति हा, पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है।"[1] वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषद में स्त्री को पुरुष के सहचरी के रूप में माना जाता था -"नर शक्तिमान कहलाता है और नारी उसकी शक्ति।"[2] लेकिन ईसा के लगभग 600 वर्ष पूर्व रची गई वाल्मीकि रामायण एवं ईसा पूर्व लगभग 500 वर्ष में रची गई वेद व्यास के महाभारत में भी स्त्री शिक्षित, सर्वज्ञान के अधिकारी होकर भी वह शोषण की शिकार थी। कौशल्या, सीता, द्रोपदी इसका प्रमाण है। आगे स्मृतिकाल में जो मनुस्मृति की रचना हुई थी उसमें कहा गया कि - "स्त्रियों केलिए पति ही यज्ञ है, पति ही उपवास, पति की सेवा से ही वे स्वर्ग लोक में पूजित हो सकती है।"[3] इस प्रकार वैदिक काल के अनेक धर्मग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट है कि स्त्री की स्थिति नगण्य थी क्योंकि इन सब नियमों की रचना पुरुष द्‌वारा ही हुआ था।

इस प्रकार वैदिक साहित्य के बाद और आधुनिक काल के पहले अर्थात् 19 वीं शताब्दी के पहले बौद्‌ध, जैन और इस्लाम के प्रभाव में जो संहिताएँ तैयार की थी उसमें तो स्त्री पर पुरुष का शिकंजा मज़बूत थी। बाद में आए गौतम बुद्‌ध और भगवान महावीर ने बौद्‌ध एवं जैन धर्मों में संघों की स्थापना की। इनमें स्त्री भिक्षुणी को भी शामिल किया। लेकिन बाद मे इसे सम्मान के स्थान पर व्यभिचार का दर्जा

---

[1] ऐतरेय ब्राह्मण - 3.3.1

[2] डॉ.लता सिंहल - भारतीय संस्कृति में नारी - पृ.19

[3] मनुस्मृति - 5.155

ही प्राप्त हुआ था। इस समय में शंकराचार्य भी नारी को 'नरक का द्वार' ही घोषित करते थे।

मध्यकाल तक आते पर्दा प्रथा ने ज़ेर पकड़ लिया। दक्षिण में देवदासी प्रथा की शुरूआत कर दी। इस काल में स्त्री के केवल तीन नाम थी - पत्नी, रखैल तथा गणिका माने वेश्या।

इस ऐतिहासिक मध्यकाल के अंतर्गत ही हिन्दी साहित्य का आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल समाहित हो जाता है। आदिकाल में स्त्री सती-प्रथा, पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली एक वस्तु ही थी। भक्तिकाल के समय में भी स्त्रित्व की रक्षा केलिए स्त्री परदे के पीछे थी फिर भी कुछ भक्त कवियों जैसे मीरा बाई, रविदास रूप दलित कवियों के द्वारा इस असमानता के विरुद्ध एक आवाज़ तो सुनाई पड़ी।

कबीरदास ने पितृसत्तात्मक समाज को ही अपना स्वर माना था -

"कबीर नारी नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होई।

भगति, मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकै कोई,"[1]

अर्थात् कबीरदास ने नारी को ज्ञान मार्ग में बड़ी बाधा ही माना था तुलसीदास भी नारी को "अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुख

[1] कबीरदास - साखी (सं.माताप्रसाद गुप्त) - कबीरग्रन्थावली - पृ. 67

खानि"[1]. अर्थात् सब अवगुणों की मूल ही कहा था। इसके विपरीत सुर तो नारी को पुरुष वर्चस्व से दूर रख कर ही रचना की है। इन सब से साबित होता है कि सती प्रथा, बाल विवाह, बहु पत्नि प्रथा, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, कन्या वध आदि समस्याओं से इस समय भी स्त्री जूझती रहीं।

रीतिकाल में स्त्री भोग्य के रूप में वर्णित थी लेकिन सामाजिक स्तर पर स्त्री के सुधार के प्रयास इस काल से ही होने लगे। इस काल को पुनर्जागरण काल कहा जाता है। इस समय में फ्रांस में राज्यक्रान्ति और इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई। इसका प्रभाव समाज पर पड़ा तो राजनीतिक, औद्योगिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में एक नई क्रान्ति हुई। उस समय ब्रिटिश शासकों का गढ़ बंगाल था। अतः भारत पर इसका प्रभाव पड़ा। ईसाई मिशनरियों, रेल, डाकतार तथा प्रेस के प्रचार के कारण एवं भारतीय-यूरोपीय टकराव से एक ऊर्जा मिली यही पुनर्जागरण काल है।

इस समय में स्त्री के उद्धार केलिए पुरुष उसके साथ थे। जिनमें दो विचारधारावाले लोग थे एक थे समाज सुधारवादी लोग इसमें राजाराम मोहन रॉय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बहरामजी मलबारी, महादेव गोविन्द रानाडे, महर्षि घोंडो केशव कर्वे, दुर्गादास

---

[1] तुलसीदास - आरण्य कांड - रामचरितमानस –दोहा - 77

मेहता, नर्मदा शंकर, दलपत राम, करन दास मूल जी, लालशंकर उर्मियाशंकर आदि अनेक लोग शामिल थे। दूसरा वर्ग था पुनरुद्धारवादी -जिनके अनुसार वैदिक कालीन आदर्श व्यवस्था के टुकराव ही इन सबका कारण है इसीलिए इसका पुनरुद्धान होना चाहिए इनमें - स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, गोपाल कृष्ण अगरकर, ज्योतिबा फुले आदि शामिल थे।

इन लोगों के संघर्ष के फलस्वरूप स्त्री समाज के सुधार कलिए कई अधिनियम पारित हुआ। जैसे 1779 ई. का 'बंगला बालिका हत्या निवारक अधिनियम 1804', 1829 में राजाराम मोहन रॉय के सती प्रथा के विरुद्ध किए गए प्रयास में 'सती प्रथा निषेध अधिनियम' पारित हुए, 1929 में 'बाल विवाह नियंत्रक अधिनियम', 1872 में केशव चन्द्रसेन के प्रयासों से 'सिविल मैरिज एक्ट', ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न में 'हिन्दु विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम' पास हुआ,1937में हिन्दु स्त्री का 'सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम' पास हुआ, इसके अलावा इन समाज सुधारकों द्वारा स्त्री शिक्षा पर भी बल दिया गया। इन सब परिवर्तनों से स्त्रियों में चेतना का भाव अवश्य उठा।

इन समाज सुधारकों से प्रेरणा पाकर स्त्री ने आगे आए स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी भरपूर भागीदारी व्यक्त की। गाँधीजी ने

भी उस समय स्त्री को अपनी शक्ति दिखाने का एक अवसर उसे दिया था। फलस्वरूप बंगाल विभाजन (1905), असहयोग आन्दोलन (1920-1922), सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930), भारत छोड़ो आन्दोलन (1942) आदि में स्त्रियों ने बहुसंख्य रूप से भाग लिया। इन संघर्षों से 3000-3500 वर्षों से समाज में व्याप्त स्त्री की छवि को बदलने में भी नारी सफल हुए।

इस समय में पश्चिम में नारी आन्दोलन चल रहा था। इससे प्रेरणा पाकर 19 वीं सदी के अंतिम दशक में पंडित रमाबाई रानाडे, आनन्दी बाई जोशी, फ्रनिना ऐनी, जगनाथ, रुक्माबाई आदि स्त्रियाँ पश्चिम गयी थी और वापस आकर यहाँ पर अनेक संगठनों का प्रारंभ किया जैसे सर्वप्रथम स्वर्णकुमारी देवी ने 1886 ई. में लेडीज़ एसोसिएशन 1892 में पंडित रमाबाई ने शारदा सदन, 1902 में उन्होंने ही हिन्दु लेडीज़ सोशल एंड लिटरेरी क्लब भी खोला, 1903 में सरला देवी चौधरानी द्वारा भारती स्त्री महामंडल, 1917 डॉरथी जिनारदास द्वारा 'वीमैन इंडियन ऐसोसिएशन', 1917 में ऐनी बेसेंट मारग्रेट कजिन्स आदि के द्वारा पहला अखिल भारतीय संगठन 'वुमैन इंडियन ऐसोसिएशन', 1925 में 'नेशनल काउण्सिल फॉर वुमैन इन इंडिया', 1927 में अखिल हिन्दी महिला परिषद इसके अतिरिक्त देश सेविका संगठन, स्वयं सेविका संघ, नारी सत्याग्रह समिति, महिला राष्ट्रीय संगठन, लेडीज़ विकेटिंग बोर्ड, स्त्री स्वराजसंघ, भारतीय मंडल,

आर्य महिला समाज आदि आदि अनेक संगठनों की स्थापना से स्त्रियाँ अपने अवकाश के प्रति जागरूक हुई। धीरे-धीरे एक नयी नारी का निर्माण हुआ। इससे भारत की बुनियादी संस्था परिवार भी हिल गया। स्त्री अपनी अस्मिता के ऊपर सचेत हुए, मताधिकार प्राप्त की, चुनावों में भागने लगे, उनकी पत्रिकाएँ भी शुरू होने लगी। इस युग में स्त्री आत्मनिर्भर होने लगे।

भारत की स्वतंत्रता के बाद 1950 के भारतीय संविधान ने महिलाओं के विकास पर बहुत बल दिया था। इसके फलस्वरूप कुछ संवैधानिक उपलब्धियाँ भी प्राप्त हुआ जैसे -

अनुच्छेद 14 में राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में समान अधिकार एवं अवसर देने का प्रावधान है।

अनुच्छेद 15 में लिंग के आधार पर भेदभाव निषिद्ध का नियम है।

अनुच्छेद 15(3) में महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव का अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 39 में आजीविका के समान साधन एवं समान कार्य केलिए समान वेतन का अधिकार दिया है।

अनुच्छेद 42 में कार्य की न्यायोचित एवं मानवीय दशाएँ तथा प्रसूति सुविधाओं का प्रावधान है।

अनुच्छेद 51(क) (ङ) में महिलाओं के प्रति अपमानजनक प्रथाओं के त्याग का मौलिक उत्तरदायित्व भी दिया है।

सन् 2001 में 'राष्ट्रीय महिला शक्ति सम्पन्नता नीति' नामक एक परिकल्पना भी बजट में था। संविधान में जो संरचनात्मक बाधाएँ है उसे दूर करके स्त्री को सम्मुन्नत बनाने केलिए पंचवर्षीय योजनाएँ उनके लिए बनाए। जैसे सातवीं योजना ने महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा स्त्री को प्रबुद्ध बनाने का एक स्कीम था। नवीं योजना में महिला घटक योजना की अवधारणा आरंभ हुई। दसवीं और ग्यारहवीं में उनके विकास केलिए कुछ बजट आयोजन की बात सामने आयी। स्त्रियों केलिए अनैतिक व्यापार अधिनियम 1956, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, स्त्री अशिष्टरूपण अधिनियम 1986, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 आदि भी कानून के द्वारा बनाया है। उनकी सहायता केलिए बलात्कार की शिकार महिलाओं को राहत एवं पुनर्वास स्कीम, 1982-83 महिला आर्थिक कार्यक्रम, 1986-87 जागरूकता विकास कार्यक्रम, 1969 महिलाओं एवं बालिकाओं हेतु अल्पावास गृह स्कीम, 2002-03 महिलाओं हेतू हेल्प लाइन आदि भी भारत सरकार द्वारा चलायी जाती है। आजकल इन सब नियमों की सहायता से स्त्री हरक्षेत्र में अपनी काबीलियत दिखाने में सफल हुए फिर भी उनके शोषण की प्रथा तो चलती ही रहती है। समाज में स्त्री के विकसित स्वरूप को पहचानने के बाद साहित्य के स्तर पर नारीवाद को आगे

बढ़ाने में मदद करने वाले कुछ नारिवादियों को जानने से ही भारत में नारीवाद की समकालीन दशा क्या है यह जान पाएँगी।

3.3.1. एक अज्ञात हिन्दु औरत

इनके द्वारा सन् 1882 ई. में लिखी गई एक पुस्तक है 'सीमन्तनी उपदेश' जिसे 1982 में धर्मवीर भारती ने संपादिय किया था। इसका संपदान करते हुए धर्मवीर भारती का कहना है "यह पुस्तक हिन्दुस्तान की बेटियों केलिए 'आज़ादी का घोषणापत्र' के समान है ।.... यह किताब नारी के भीतर के उसी सशक्त व्यक्ति की खोज का हिस्सा है।"[1] उन्होंने अपने इन पुस्तकों के द्वारा पितृसत्तात्मक समाज की व्यवस्था से मुक्ति की आवाद़ बुलन्द की। पतिव्रता धर्म पर भी विद्रोह का भाव दिखाती हुई लेखिका अंत में कहती है - "हिन्दुस्तान को नेक राह पर लाना चाहते हो तो पहले उन किताबों को फूँक दो जिनमें स्त्रियों के वास्ते इस धर्म की हिदायत है और मर्दों के वास्ते कुछ भी नहीं। बस इस ज़माने के वास्ते नया धर्म बनाओ जिसमें स्त्री पतिव्रता धर्म का पालन करे और मर्द दूसरी का ख्याल भी मन में न लावे। अखर ख्याल करे तो फौरन स्वर्ग से निकाला जावे।"[2] इस समय पाश्चात्य में मेरी वोलस्टन क्राफ्ट की पुस्तक का विमर्श ज़ोरों पर था। भारत में भी इसकी छाव लगती हुई

---

[1] सं.धर्मवीर - एक अज्ञात हिन्दु औरत - पृ.10

[2] वही - पृ.98

लेखिका स्त्री को पुरुष के विरुद्ध नहीं खड़ा करती बल्कि पुरुष के सहयोग से एक स्वस्थ समाज की कल्पना करती है।

3.3.2. महादेवी वर्मा

हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में सन् 1882 ई. के पश्चात् स्त्री विमर्श की कोई पुस्तक मिलती है तो वह महादेवी वर्मा द्वारा सन् 1941 ई. में लिखी गई 'श्रृंखला की कड़ियाँ' है। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को बचाने केलिए जिस स्त्री विमर्श की आवश्यकता आज है उसके लिए सिर्फ श्रृंखला की कड़ियाँ को पुनर्जीवित करना ही काफी है। क्योंकि यह पुस्तक स्वयं ही एक गंभीर विमर्शीय साहित्य है।

महादेवी जी अपने विमर्श के अंतर्गत शिक्षित आर्थिक रूप से स्वावलम्बी, अन्धविश्वास को तोड़ने में सक्षम राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग में दक्ष, नैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अपने को बदलने की क्षमता रखने वाली, घर और बाहर में सामंजस्य स्थापित करने में कुशल स्त्रियों की चाहना प्रस्तुत करती है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था किसी भी वर्ग के पतन के कारण बन जाते हैं तो महादेवी जी के अनुसार "जब वह व्यक्तियों के नैतिक पतन का कारण बन जावे, तब अवश्य ही उसमें किसी अनिवार्य

संशोधन की आवश्यकता समझनी चाहिए।"[1] इस प्रकार संशोधन की एक माँग को भी वर्मा जी ने अपनी रचना के खातिर समाज के सामने रखने की कोशिश की है।

3.3.3. आशारानी ब्होरा

नारी विमर्श के अन्तर्गत श्रीमती आशारानी ब्होरा का योगदान अत्यन्त सराहनीय है। वे अपनी रचनाओं के द्वारा समाज से अनेक प्रश्न करती है। स्वतंत्रता संग्राम में समान भागीदारी निभानेवाली स्त्री को स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्रता की एक ओर लड़ाई क्यों लड़नी पड़ती है? राजनीति में भी पचास प्रतिशत अधिकार होने से तैंतीस प्रतिशत आरक्षण क्यों माँगनी पड़ती है ? आदि - आदि।

वह मातृत्व को खोई हुई गरिमा प्राप्त करने का साधऩ मानती है। उनके अनुसार स्त्री-पुरुष सहयोग से मातृ-पद की पुनः प्रतिष्ठा ही भारतीय अस्मिता की रक्षा और किसी भी तरह से स्त्री मुक्ति भी इसी से ही संभव है। फिर वह बताती है कि स्त्री की कोख पर केवल उसे ही अधिकार होनी चाहिए।

श्रीमती आशारानी ब्होरा जी ने आज के बाज़ारवादी संस्कृति पर भी घोर विमर्श किए है "औरत ने जन्म दिया मरदों को, मरदों ने उसे बाज़ार दिया। बाज़ार का अर्थ सीमित था, यानी वेश्यावृत्ति का कोठा।

---

[1] महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ - पृ.21

पर अब बाज़ार अर्थ विस्तार पा गया है, यानी उपभोक्ता बाज़ार में स्त्री अथवा उपभोक्ता समाज में स्त्री का बाज़ार-मूल्य।"[1] लेखिका उदारीकरण के बाद में आए बाज़ारवाद के शिकार बने रहनेवाली स्त्रियों की भी विमर्श प्रस्तुत की है। दहेज प्रथा के ऊपर विचार करते हुए भी आशाजी सोचती है कि विवाह के बाद स्त्रियों की प्रतिभा का क्या हो जाता है। इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के द्वारा लेखिका समाज की असली स्थिति पर स्त्री को सतर्क बनाती है।

3.3.4. मृणाल पाण्डे

नारी विमर्श के ऊपर कई पुस्तकों की रचना करने वाली मृणाल पांडे का विमर्शीय साहित्य अत्यन्त सटीक है। उनके स्त्री विमर्श की श्रेष्ठता यह है कि उन्होंने पीड़ित ग्रामीण एवं शहरी घरेलू एवं कामकाजी महिलाओं के दुख-दर्द को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत भी किया है, साथ ही इस गंभीर स्थिति के बदलाव केलिए संपूर्ण मानवीय दृष्टि को विकसित करने पर भी बल दिया है ताकि नारीवाद सिर्फ नारों या कुछ संगठनों तक ही सीमित न हो जाए।

उन्होंने अपने विचारों के द्वारा स्त्री शिक्षा के प्रति श्रेष्ठ सोच भी प्रस्तुत किया है। शिक्षा के संदर्भ में उनका वक्तव्य है - "एक पुरुष को साक्षर बनाने से एक व्यक्ति ही साक्षर होता है, जबकि एक

---

[1] आशारानी ब्होरा - स्त्री सरोकार - पृ.76

स्त्री के शिक्षित होने से पूरा कुनबा।”[1] स्त्री मुक्ति की एक उपाय के रूप में शिक्षा के प्रस्तुत करनेवाली लेखिता स्त्री की वृद्धि न होने के अनेक कारणों को हमारे सामने प्रस्तुत करती है जैसे - न्याय व्यवस्था एवं सामंती ढाँचा दोनों में पुरुष की अधिक भागीदारी, कन्या भ्रूण हत्या, मीडिया द्वारा स्त्री-देह, स्त्री हिंसा को बढ़ावा देती फिल्मों एवं स्त्री के प्रति पुरानी रूढ़िवादी धारणाओं को पुरन्ता करते धारावाहिक आदि इस प्रकार स्त्री के अनेक पक्षों को अपनी चिंता का माध्यम बनाकर जनता के मन में एक पुन: सोच जगाने वाली मृणाल ने स्त्री के प्रति एक सटीक विमर्श ही प्रस्तुत की है।

मृणाल ने प्रजनन- स्वास्थ्य के संदर्भ में भी खुलकर बातें की है इस तरह हर स्त्री-पुरुष से अपने यौवनजीवन तथा शारीरिक सम्बन्धों के बारे में खुलकर बात करने की एक प्रगतिगामी सोच वे प्रस्तुत करती हई स्त्री पुरुषों को इससे संबंधित अनेक बिमारी से बचाना, लिंगगत तथा जातिगत पहचान से जुड़े ताकतवर समूहों के दलित स्त्रियों पर छाए प्रभुत्व को नकारना तथा गर्भ निरोधकों के उपलब्ध विकल्पों के प्रति समाज को जागरित करना भी उनका लक्ष्य रहा है।

उनकी ‘स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक’ नामक पुस्तक स्त्री शोषण की करुण कथा होने के साथ-साथ उसके कारणों

---

[1] मृणाल पाण्डे - परिधि पर स्त्री - पृ.52

की जड़ में जाकर किया गया "भारतीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का सटीक विश्लेषण है जो पाठकों को स्त्री के साथ-साथ हरिजनों,भूमिहीनों, दलितों जैसे समाज के हर क्षेत्र में छाए शक्ति असन्तुलनों के शिकार वर्गों को समझने की नई दृष्टि देगा।"[1] इस प्रकार निस्संदेह कह सकते हैं कि मृणाल जी हर पुस्तक जैविक, सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों में स्त्री की शक्ति और शक्ति हीनता का विवेचन प्रस्तुत करते हुए उसे हर तरफ से आगे बढ़ाने की एक कोशिश है।

3.3.5. क्षमा शर्मा

समकालीन परिदृश्य के अनुरूप स्त्री-विमर्श को प्रस्तुत करने वाली एक नारीवादी लेखिका है क्षमा शर्मा। उनकी 'स्त्री का समय' नामक पुस्तक में आर्थिक स्वतंत्रता को स्त्री-मुक्ति के प्रमुख आधार के रूप में बताया है और दहेज के प्रति होने वाली मौतों के प्रति चिन्ता व्यक्त करने वाली लेखिका पितृसत्तात्मक व्यवस्था के दोहरे मानदंडों को धिक्कारती हुई कहती है- "सन् 1978-83 तक 'एमीनोसेंटेसिस टेस्ट' की बदौलत 78,000 मादा भ्रूणों की हत्या कर दी गई, कारण ?यही न, वे सबकी सब लड़कियाँ लड़के क्यों न हुई ? स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के शोषण को हमने मूल्य बना रखा है कि कौन दहेज केलिए ताने देती है - माँ, कौन लड़के को अच्छा भोजन देती है

---

[1] मृणाल पाण्डे - स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, दूसरे फ्लैप पर।

- माँ, क्योंकि हमारे रीतिरिवाज़ और सोच-समझ ने इस बात को काफी मज़बूत किया है कि स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण हमारे इस समाज का हिस्सा है।"[1] वस्तुतः लेखिका परिवार नामक संस्था को स्त्रियों के साथ भेदभाव करने वाली सबसे बड़ी संस्था मानती है।

पुरुष विरोधी स्त्री-विमर्श के स्थान पर पुरुष-सहयोगी स्त्री-विमर्श की पक्षधर मानने वाली लेखिका आज के स्त्री के परिवर्तित व्यवहार को भी बुरा नहीं मानती। आज के सौन्दर्य - प्रतियोगिताओं के गलत अर्थ ना निकलने वाली लेखिका का मानना है अपनी मर्जी या मुक्ति का मतलब सदियों से ज़ारी कैद से मुक्ति है।

3.3.6. रमणिका गुप्ता

लेखिका रमणिका गुप्ता का स्त्री विमर्श नारियों की विविध वर्गों की समस्याओं पर केन्द्रित है, जैसे श्रमिक वर्ग की स्त्रियों, आदिवासी स्त्रियों की समस्याओं, खदानों एवं जन-जाति क्षेत्रों में स्त्री-मज़दूरों की समस्याओं (प्रसव-छुट्टी की समस्या, छँटनी की समस्या, कार्यस्थलों में यौन-उत्पीड़न, पुनर्वास की योजना का ना होना), कोल इण्डिया में महिलाओं की दुर्गति, बलात्कार तथा स्त्री मुक्ति आन्दोलन आदि।

लेखिका के अनुसार स्त्री मुक्ति का अर्थ है - "स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री के खुद

[1] क्षमा शर्मा - स्त्री का समय - पृ.27

का दृष्टिकोण भी शामिल है। पुरुष के बराबर अधिकार, स्त्री के चयन, वरण और नकारने की स्वतंत्रता स्त्री की अस्मिता की प्रमुख शर्तें हैं।"[1] स्त्री को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त करने की कोशिश करने वाली लेखिका बलात्कार के शिकार बने स्त्री को अपराध-बोध से भी मुक्ति दिलाने की कोशिश करते हुए स्त्री-मज़दूरों को अपने विमर्श का केन्द्र बनाया है। क्योंकि वे लोग ही धरती से वास्तविक अर्थ में जुड़े हैं।

3.3.7. सरला महेश्वरी

सरलाजी की नारीवाद से संबंधित एक पुस्तक है 'नारी प्रश्न' । इसमें नारी की समस्याओं का एक वैज्ञानिक विश्लेषण उन्होंने प्रस्तुत की है। दहेज, वधू-दहन, औरतों द्वारा आत्महत्याएँ, औरतों के शरीर का व्यापार, महिला-मज़दूरों का शोषण आदि उनके विमर्श के केन्द्र है। महिलाओं के कम होती आबादी पर चिन्ता व्यक्त करते हुए उनका कहना है "सवाल यह है कि आखिर हमने यह कौन-सा समाज बनाया है जहाँ एक अबोध बच्ची को, एक औरत को बेमौत मरने को मज़बूर होना पड़ता है।"[2] इस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभाव जो समाज में व्याप्त है उसे दूर करते हुए सब को 'मानव' का दर्जा दिलाने वाले एक जगत की कामना लेखिका करती है।

3.3.8. अनामिका

---

[1] रमणिका गुप्ता - स्त्री-विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने - पृ.56

[2] सरला महेश्वरी - नारी प्रश्न - पृ.90

नारीवाद को जीवनाधार मानने वाली अनामिका जी ने 'स्त्रीत्व का मानचित्र', 'पानी जो पत्थर पीता है', 'मन माँझने की ज़रूरत' आदि स्त्री के श्रेष्ठ व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने वाली अनेक पुस्तकों की रचना की है। इन पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने स्त्री आन्दोलन, प्रमुख कानूनों के व्यावहारिक रूप में लागू करने पर, कामकाजी स्त्रियों, बलात्कृत महिलाओं, घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं, बागी महिलाओं, स्त्री अस्मिता, स्त्री लेखन तथा गरीब श्रमिक यौन-उत्पीड़ित महिलाओं आदि लोगों से संबंधित अनेक प्रश्नों को विचाराधीन लाकर खुद अपने लिए ही नहीं दूसरों के भी अनेक प्रश्नों के सुझाव भी ढूँढने का प्रयास किया है।

उनका नारीवाद पुरुष-विरोधी नहीं है। पुरुष को विरोधी के रूप में मानने वाले आज की स्थिति को वे मानते ही नहीं है। आज के नारियों की एक नारा है 'वीमैन लिव' उसे भी लेखिका स्वीकार नहीं करती। इसके बदले समाज में जो महिलाएँ बलात्कार के शिकार होते है उसे मनोबल वह प्रदान करती हुई कहती है - "लोक जीवन में अंगों के कुछेक अमानवीय झटकों को इज्जत जाना या इज्जत लूट जाना कहते है, पर मेरी समझ में बिलकुल नहीं आता कि इज्जत जैसी बड़ी चीज़ के साथ अंगों के अमानवीय घर्षण का हादसा क्यों जोड़ा जाता है ? देह पर कीचड़ या विष्ठा पड़ जाने से उसकी इज्जत नहीं जाती तो आखिर किस तर्क से एक ताकतवर पशु के अंग विशेष के बीमार स्राव

की कुछ बूँदें गिर जाने से उसकी इज्जत चली जाएगी। यौन-शोषण की शिकार लड़कियों के सामने सरस्वती बहुत बड़ा आदर्श हैं।"[1] इस वक्तव्य उन्होंने पुराण मिथों में प्रस्तुत देवियों के जीवन कथाओं को आधार बनाकर कहा गया था।

इस प्रकार अनामिका जी अपनी रचनाओं से केवल स्त्री को ही नहीं पुरुष वर्ग को भी अपनी दुनिया के सच्चे स्वरूप का प्रदर्शन करती हुई एक विवेकमान नागरिकों की सृष्टि की कामना वह करती है।

3.3.9. प्रभा खेतान

'दि सेकेंड सैक्स' के अनुवाद 'स्त्री उपेक्षिता', 'उपनिवेश में स्त्री'। मुक्ति कामना की दसवार्ताएँ, बाज़ार के बीज: बाज़ार के खिलाफ आदि प्रभा खेतान के उज्जवल ग्रन्थें स्त्री विमर्श के ऊँचे सोच को प्रस्तुत करने वाले है। लोखिका के अनुसार स्त्री-विमर्श या नारीवाद "नारीवाद एक विचारधारा और शैली है। चूँकि स्त्री भी सोचना-समझना जानती है। इसलिए मानवाधिकार की विचारधारा और उससे प्रभावित आन्दोलन स्त्री-जीवन केलिए परिवर्तनकामी है।" [2]

---

[1] अनामिका - मन माँझने की ज़रूरत - पृ.16-17

[2] प्रभा खेतान - उपनिवेश में स्त्री - पृ.10

आज के स्त्री विमर्श ने स्त्री की अनेक प्रश्नों की हल निकाली है, फिर भी आज स्त्री को नई विषमताओं और असुरक्षा का सामना भी करना पड़ा है। भूमंडलीकृत दौर में बाज़ारवादी और उपभोक्तावादी के चंगुल में पड़े आज की नारी के प्रति लेखिका ज़्यादा चिन्तित है। लेकिन इस बाज़ारी संस्कृति में पड कर स्त्री भी अपने को स्वतंत्र मानती है लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। वह कहती है कि "शिकार यदि खुद जाल में फँसने को तैयार है, तो शिकारी को फिर और क्या चाहिए।"[1] बहुराष्ट्रीय बाज़ार व्यवस्था के कारण यौन वस्तुकरण और राष्ट्रेतर यौन बाज़ार में स्त्री का जींस की भांति बिकना वास्तव में भारतीय जनतंत्र में एक शोषणकारी परिणाम के रूप में उभरा है। लेकिन इन सब स्तर के ऊपर नारियों को सचेत करनेवाली आज के नारीवाद के सक्रिय परिश्रम के ऊपर लेखिका अधिक प्रसन्न भी है।

3.3.10. मृदुला सिन्हा

सन् 1998 से 2004 तक केन्द्रीय समाज बोर्ड की अध्यक्षा रही, मृदुला सिन्हा की उत्कृष्ट पुस्तक है 'मात्र देह नहीं है स्त्री'। उसमें वे बताती हैं कि स्त्री की सबसे अधिकांश समस्याएँ उसे केवल देह मानने से ही आरंभित होती है। उनका मानना है कि लड़कियों के विकास केलिए उसे लड़के बनने की ज़रूरत नहीं है। 'मानव-अधिकार दिवस'

---

[1] प्रभा खेतान -बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ - पृ.219

को वे 'मानवी संरक्षण अभियान दिवस' के रूप में चाहती है। विवाह को लेखिका अनिवार्य नहीं, आवश्यक मानती है। सौन्दर्य - प्रतियोगिताओं को मात्र स्त्री देह का प्रदर्शन वह मानती है। उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री केलिए स्त्री देह के अर्द्धनग्न प्रदर्शन को वह गलत मानती है।

आज बलात्कार, कार्यस्थल पर छेड़छाड़, भेदभाव, घरेलू हिंसा आदि बढ़ती जा रही है। बहुओं के घर से निकलने के कारण वृद्धों की समस्या, बच्चों के पालन-पोषण की समस्या आदि इससे उत्पन्न होती हैं। फलत: एक स्वस्थ स्त्री के विकास होने से ही एक स्वस्थ समाज की सृष्टि हो जाती है। लेखिका मृदुला सिन्हा भी यही साबित करने की कोशिश में है कि स्त्री के विकास ही समाज के विकास को प्रेरणा देते है।

इन लेखकों के अलावा उषा महाज की सन् 2001 में प्रकाशित 'बाधाओं के बावजूद नयी औरत', मनीषा की सन् 2002 में प्रकाशित हम सभ्य औरतें, विभा देवसरे की सन् 2002 में प्रकाशित स्वागत है बेटी, कुमुद शर्मा की 2002 में प्रकाशित स्त्री-घोष, नासिरा शर्मा की औरत के लिए औरत, मैत्रेयी पुष्पा की सन् 2003 में प्रकाशित खुली खिड़कियाँ, सुमन राजे की सन् 2003 में प्रकाशित हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास आदि अनेक लेखिकाओं के माध्यम से आज भी

नारीवाद एक उज्ज्वल विमर्श के रूप में साहित्य में विराजित है। समकालीन कहानी में नारी विमर्श की चुनौतियों को जानने केलिए नारीवाद से संबंधित पूर्वोत्तर कहानी के विकास को जानना भी आवश्यक है।

3.4. स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कहानी साहित्य

एक शब्द नारे के रूप में पूरे समाज में गूँज रही है, सभी साहित्यिक विधाओं में भी यह एक मान्यता प्राप्त शब्द बन गए है, वह है स्त्री विमर्श। हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श की चर्चा क्यों की जा रही है ? इसका उत्तर यह है - शताब्दियों से स्त्री चिरपीड़ित रहने से सभी मुद्‌दों के केन्द्र हो गई थी, कालान्तर में हर कोई इसके प्रति सोचने लगे। यही कारण है कि आजकल साहित्यिक जगत के एक ज्वलंत विमर्श है स्त्री विमर्श। स्त्री विमर्श सदा स्त्री मुक्ति की बात करता है, “जिस दिन समाज स्त्री-शरीर का नहीं, उसकी मेघा और श्रम का मूल्य देना सीख जाएगा, सिर्फ उस दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी।”[1] दरअसल में यही स्त्री विमर्श का मूल लक्ष्य है। कथा साहित्य में स्त्री विमर्श के विकासमान स्वरूप की चर्चा करने केलिए प्रेमचन्द पूर्व प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर तथा स्वतंत्र्योत्तर युग के कथा साहित्य के स्त्री विमर्श के दायरे में विश्लेषित करना है।

---

[1]तसलीमा नसरीन - औरत के हक में - पृ.99

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी कथा साहित्य में गद्य विधाओं के साथ 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कहानी विधा का भी आविर्भाव हुआ। इस युग में जिस कहानी का लेखन हुआ था उसमें कथात्मकता, घटनात्मकता, कौतूहल औत्सुक्य जैसे तत्वों का प्राधान्य ही दर्शित है। यह युग तो अंग्रेज़ी शासन काल था, स्त्रियाँ खूब पीड़ित हो रही थी, स्त्रियाँ बदलाव की ओर ही था फिर भी स्त्री विमर्श में जिस विशिष्ट स्त्री की चर्चा कर रही है उसका चित्रण इस युगान कहानी कला में नहीं के बराबर थे।

इस युग में रचित श्रेष्ठ कहानियाँ है इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी'। इसमें रानी केतकी की प्रेमकथा का वर्णन है। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' में भी एक विशिष्ट प्रेमिका के ही चित्रण मिलते है। शिवप्रसाद सिंह सिप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' में एक विधवा स्त्री के शोषण का चित्रण है। हिन्दी के प्रथम मौलिक कहानी के रूप में स्वीकृत बंगमहिला की 'दुलाईवाली' में ऐसे स्त्री का वर्णन है जिसे सहारे केलिए पुरुष की आवश्यकता है। इसके बदले उपन्यास साहित्य में स्त्री चित्रण के कुछ विकसित रूप दर्शित है जैसे भारतेन्दू की 'पूर्वीप्रकाश', 'चन्द्रप्रभा'; श्रीनिवास दास की 'परीक्षा गुरू', किशोरीलाल गोस्वामी की 'मालती माधव वा भुवन मोहिनी'; व्रजनन्दन सहाय की 'राधाकान्त', 'एक और चित्रलेखा'; मन्नन द्विवेदी की 'रामलाल', 'कल्याणी'; आदि उपन्यासों में स्त्री-रूढ़ियों के प्रति विद्रोह

दर्शित है। अतः इस युग के कथा साहित्य में नाम मात्र ही स्त्री विमर्श दर्शित है।

कहानी साम्राट प्रेमचन्द जी ने जिस युग में साहित्य में प्रवेश किया था वह समय भारत वर्ष में पुनर्जागरण ज़ोरों पर था। समाज के हर तरफ स्त्रियों को अपनी शक्ति के प्रति बोध अर्जित कराने की कोशिश चल रहे थे। गांधीजी के आदेश के अनुसार स्त्रियाँ घर को छोड़कर सहयोगी की भूमिका निभाने लगी थी। समाज के इन महारथों के उद्देश्यों को सफल बनाते हुए, स्त्रियों को अपनी कई समस्याओं के प्रति सचेत करने की कोशिश से प्रेमचन्द ने भी अनेक कहानियों की रचना की है जैसे 'बड़े घर की बेटी' में आनन्दी के द्वारा संयुक्त परिवार की श्रेष्ठता को व्यक्त करते हैं तो 'मिस पद्मा' कहानी के पद्मा के द्वारा स्त्री शिक्षा देश के विकास केलिए एक अनिवार्य अंग बताया है। 'नैराश्य' कहानी के निरूपमा के द्वारा स्त्री के प्रति समाज में व्याप्त असमानता को दर्शाया है तो 'अंतिम शांति' कहानी की सुन्नी के द्वारा अपनी अस्मिता को बनाए रखने में संघर्ष करनेवाली औरत का चित्रण है। 'कुसुम' कहानी की नायिका कुसुम के द्वारा समाज में व्याप्त दहेज प्रथा के ऊपर विद्रोह करने वाली स्त्री का चित्रण है तो 'नया विवाह' की आशा, 'नरक का मार्ग' कहानी में अनमेल विवाह की समस्या को केन्द्र में रखा है। 'अन्तिम शान्ति' कहानी की गोपा के द्वार विधवा समस्या को चित्रित किया है तो

'रानी सारन्धा', 'होली के उपहार', 'माँ' नामक कहानी के द्वारा देश प्रेमी सित्रियों का चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द समाज की कुप्रथाओं की निंदा करते हुए कहते है -"पुरुष ने नारी का शोषण करने केलिए कायदे-कानून बनाए हैं उसी तरह जैसे ब्रिटिश गवर्नमैंट ने हम लोगों केलिए। जैसे हम लोगों के मूर्ख होने से सरकार को लाभ है वैसे ही स्त्रियों के मूर्ख होने से पुरुषों को।"[1] इस प्रकार स्त्री शिक्षा पर ज़ोर देती हुई समाज में व्याप्त कुप्रथाओं की ओर एक विद्रोही स्त्रियों के समूह की सृष्टि की कामना ही प्रेमचन्द अपने साहित्य से रखते है।

प्रेमचन्द के बाद आए जयशंकर प्रसाद भी 'धीसू' कहानी की बिन्दो एवं 'ममता' कहानी की ममता के द्वारा स्त्री के दयनीय जीवन पर ज़ोर डाला है। उनकी 'भिखारिन' कहानी में भी स्त्री चरित्र के चित्रण यथार्थवादी होते हुए भी गरिमा एवं आदर्श भी व्यक्त करता है। 'पुरस्कार' की मधूलिका के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना से भी परिपूर्ण नारियों का चित्रण प्रसाद ने व्यक्त की है। इस प्रकार प्रसाद ने भी अपनी कहानियों में स्त्री विमर्श को भरपूर प्रस्तुत करने की कोशिश की है। उनके उपरान्त आए विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की 'युगधर्म' नामक कहानी में विधवा पुनर्विवाह को एक मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया है।

---

[1] प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य - पृ.104

इस प्रकार प्रेमचन्द युगीन कथा साहित्य स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक पक्षों को अत्यन्त प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुए है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, फ्रायड के मनोविश्लेषण तथा यौनवाद, गाँधीजी के अहिंसावाद तथा सार्त्र के अस्तित्ववाद आदि ने अतिरिक्त रूप से हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया। फलस्वरूप प्राचीनता के स्थान पर आधुनिकता का आविर्भाव हुआ। प्रेमचन्द युग में सामाजिक समस्याओं को लेकर कथा-साहित्य की रचना होती थी तो अब मानसिक गुत्थियों, कुंठा एवं ग्रन्थि को लेकर पात्रों पर विचार करने लगे थे। प्रेमचन्दकालीन समस्याओं को भी इस युग में सैक्स से जोड़कर देखा जाने लगा क्योंकि इस समय के साहित्यकार यौनाकर्षण को एक महाशक्ति मानते थे क्योंकि उन लोगों के अनुसार यही जीवन को नियंत्रित करने वाली है।

प्रेमचन्दोत्तर कहानी जगत के श्रेष्ठ लेखक हैं जैनेन्द्र। जैनेन्द्र के कथा साहित्य की नारी सतीत्व का विरोध करने वाली है। वह अपने ऊपर परंपरा से लगी हुई नैतिकता का अतिक्रमण कर नारी मुक्ति की आवाज़ उठाने वाली है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य के दौरान स्त्री के यौन संबंधी प्रश्नों और उससे उत्पन्न होनेवाली कुंठाओं, द्वन्द्वों, तनावों को भी प्रमुख रूप से चित्रित करने की कोशिश की है। उनकी

कहानी 'एक रात' की सुदर्शना और 'घुंघरू' कहानी की ऊर्मिला आदि पात्रों के द्वारा स्त्री के स्वच्छन्त व्यवहार का चित्रण जैनेन्द्र ने खींझा है इसी से उनके कथा साहित्य के पाश्चात्य प्रभाव भी दर्शित होता है।

इनके बाद आए इलाचन्द्र जोशी ने अपनी रचना के माध्यम से पुरुष की पिछलग्गू न बनकर उनके समकक्ष आने में तत्पर स्त्रियों की चर्चा की है। उनके कथा साहित्य की स्त्रियाँ मध्यवर्ती स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने अपने स्त्री विमर्श के बारे में स्वयं कहा है - "ऐसी सबल और सचेत नारियों की सृष्टि कर मैं ने आज के युग की संघर्षशील नारी का चित्र मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।"[1] उनकी कहानी 'चरणों की दासी' और 'चौथे विवाह की पत्नी' में भी पुरुष के अहं के ऊपर सीधा प्रहार करती स्त्री का चित्रण दर्शित है। फलतः कह सकते है कि उनके स्त्री विमर्श विद्रोही स्वर लिए हुए हैं।

हिन्दी कहानी साहित्य के नवीन युग के उसी नए रूप में चित्रित करने वाले लेखक है अज्ञेय। उन्होंने स्त्रियों के विकास में बाधक बनी परंपराओं एवं मूल्यों का विरोध किया साथ ही अहं और सैक्स को स्त्री-जीवन के अनिवार्य तत्त्व के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया उनकी दृष्टि में स्त्री माता, बहन, पत्नी या पुत्री भी नहीं है, स्त्री

---

[1] इलाचंद जोशी - विवेचना - पृ.124

केवल स्त्री होती है। उनकी कहानियों के स्त्री पात्र भी विद्रोही स्वर से भरे है जैसे 'विपथगा', 'साँप' आदि कहानियों में स्त्री अपने व्यवस्था के प्रति विद्रोही बनकर क्रांति का नारे लिए हुए देख सकते है। अज्ञेय की विद्रोही भावना को देखकर प्रकाश चन्द्र गुप्त कहते है, "अज्ञेय के हृदय में एक अग्नि प्रज्ज्वलित है, उसकी ज्वाला आपकी कला में भी झलक जाती है। हिन्दी कहानीकारों में आपकी कला में ही सबसे अधिक विप्लव और क्रांति की भावना है।"[1] इस विद्रोही भावना के साथ प्रेम के नए पाश्चात्य रूप भी इन के साहित्य में दर्शित है।

इसके आगे आए यशपाल की कहानी 'औरत की रीतिया', 'शोभा की साहस' कहानी 'शोभा' को भी आर्थिक गुलामी के कारण अपने माँ-बाप द्वारा बूढ़े से शादी कर दी जाती है। लेकिन वे दोनों स्वेच्छा की पूर्ति केलिए भाग जाती है। इसी प्रकार यशपाल ने भी स्त्री की स्वेच्छा पर बल दी है। उन्होंने नारी की परंपरागत दासता से मुक्ति केलिए शिक्षा एवं आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने पर बल दिया है।

बाल विवाह, दहेज प्रथा, वेश्या समस्या आदि नारी की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाली एक लेखिका है शिवरानी देवी। उनकी 'बूढ़ी काकी', 'स्मृति', 'सौत' आदि कहानी में पारिवारिक संबंधों में ईर्ष्या, कलह, प्रेम आदि का चित्रण है। उनकी 'हत्यारा' कहानी के

---

[1] प्रकाशचन्द्र गुप्ता - नया हिन्दी साहित्य,एक दृष्टि - पृ.60

रामेश्वरी और 'प्रेमा' की नायिका भी स्त्री को आर्थिक स्वावलंबी बनने की आवश्यकता को समझाती, राजनीति में अग्रसर बनने की सोच को अग्रसर किया है।

सुमित्रा कुमार सिंहा जो एक श्रेष्ठ लेखिका है जिनके स्त्री विमर्श पाश्चात्य से प्रभावित है। उनकी 'विवाहिता', 'व्यक्तित्व की भूख', 'मेरी माँ लूट गई' आदि कहानियों में स्त्री के अवैध संबंधों का चित्रण है। आगे आए सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी अपनी कथाओं के माध्यम से आधुनिक स्त्री-विमर्श को आगे बढ़ाया है।

स्वतंत्रता के पाश्चात सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार संविधान द्वारा प्राप्त हुआ। फलस्वरूप स्त्री जीवन में गहरा बदलाव भी दर्शित है जैसे शिक्षित हुई स्त्री अपने कमाऊ के बल पर समाज में आर्थिक समानता का एहसास करने लगी। फलस्वरूप वैयक्तिक रूप से भी वह अधिक जागरूक हो गई। लेकिन दोहरे उत्तरदायित्वों को निभाने के कारण अधिक मानसिक तनाव वह झेल रही है। पति-पत्नी नौकरी करने की वजह से उसने जुड़ी नयी समस्याएँ उभरने लगे। जिनके कारण दोनों के जीवन में तनाव, कुंठा, आक्रोश, तलाक की समस्या, पति पत्नी के ईष्यालू दृष्टिकोण में भी वृद्धि हुई। बदले हुए स्त्री विवाह पद्धति पर, नैतिक प्रतिमानों पर, प्रश्न चिहन डालने लगे।

वैज्ञानिक तकनीकों के आविर्भाव से जैसे गर्भनिरोधकों के आविष्कार ने नैतिकता की अवधारणा को खंडित किया। स्त्री-पुरुष के यौन-संबंधों को उसने अनैतिक नहीं माना। इस प्रकार यह एक स्पष्ट सत्य है कि स्त्री की चिन्तन एवं प्रवृत्तियों में खूब परिवर्तन हुआ लेकिन उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं आ रहा है जिसके कारण स्त्री जीवन आज भी तनाव ग्रस्त है।

स्त्री के इस तेज़ बदलाव ने पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार को समाप्त कर दिया। इससे उत्पन्न मध्यवर्गीय परिवार की कामकाजी स्त्री, परंपराओं को ढोने केलिए और नवीन सामाजिक संरचना का सामना करती हुई भी अधिक पिस रही है।

समाज में पड़े इस भारी परिवर्तन ने साहित्य को भी परिवर्तित किया। इस युग में साहित्य समाज का दर्पण हो गया। इस समय में स्त्री के साथ ही पुरुष भी इस लेखन में व्यस्त थे। स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में अनेक स्त्री विमर्शी कथाकार आए इनकी रचनाओं में प्रमुखतः स्त्री शोषण, उस शोषण की चेतना तथा उससे मुक्त होने का संघर्ष आदि विषय प्रमुख रूप से दृष्टव्य है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में प्रमुख है राजेन्द्र यादव। जिन्होंने अपनी कहानी कला से परंपरागत जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह करती हुई, स्वतंत्रता की कामना करती हुई स्त्री चित्रण पर अधिक ज़ोर दिया

है जैसे 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' की लक्ष्मी अपनी मुक्ति के लिए तड़पती है, बड़ी बेचैनी से उस राजकुमार की राह ताकती है जो उसे इस केन्द्र से मुक्ति दिलाएगा। 'प्रतीक्षा' कहानी में गीता और नन्दा दोनों समलैंगिक संबंध रखते है। गीता किसी से प्रेम भी करती है यह जानते हुए भी नन्दा उनसे संबंध जोड़ती है, और नन्दा चली जाएगी तो गीता कैसे जी पाएगी इसलिए वह दोनों के माध्यम से एक स्वार्थवश प्रेम का चित्रण कथातार करते है फिर भी इन कहानियों में नैतिक मूल्य का पतन ही सर्वत्र दर्शित है।

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के एक ज्वलंत हस्ताक्षर है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से मातृत्व रूपी मूल्य पर विमर्श करते हैं। साथ ही दाम्पत्य संबंधी जटिलता को भी दर्शाया है उनकी 'अपरिचित' नामक कहानी नायिका अपने वैवाहिक संबंध में मिसफिट होते हुए भी अपनी गहनें बेचकर अपने पति की कोई एक साथ पूरी होते देख सन्तोष करना चाहती है। इसी प्रकार 'आर्द्रा' कहानी की माँ जिसके पास है वह बेटा आर्थिक रूप से समृद्ध है इसलिए उसके पास रखती हुए माँ दूसरे बेटे जो आर्थिक रूप से दयनीय है उसके प्रति दयनीयता का भाव रखते है। इसमें संयुक्त परिवार की शिथिलता, रोज़गार की तलाश में युवकों की मानसिकता आदि का चित्रण है। उनकी 'सुहागिनें' नामक कहानी की नायिका धन लिप्सा की वजह से माँ के कहे अनुसार अपनी मातृत्व का गला घोंट

देती है लेकिन कालान्तर में वे अकेलापन, हताश, झुंझलाहट के यातनादायक अभाव झेलने केलिए अभिशप्त बन जाती है। वह सुशील को लिखती है "यहाँ अकेली रहकर उसे डर लगता है और वह उनके पास आना चाहती है .. और वह अपने इस अभाव को भरने केलिए उससे क्या चाहती है।"[1] मोहन राकेश ने अपनी कहानी कला से नैतिक मूल्यों के पतन की चरम सीमा के दर्शन प्रस्तुत किए हैं।

इस युग के और एक श्रेष्ठ लेखक हैं कमलेश्वर उन्होंने अपनी कहानी कला के माध्यम से स्त्री के जिन प्रश्नों पर प्रकाश डाला है वह है - जीवन द्वन्द्व एवं स्वतंत्रता, परंपरागत जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह, स्व-अस्मिता की तलाश और उसकी सार्थकता, अमानवीय अनाचारों के विरुद्ध आक्रोश, समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुरीतियों के प्रति संघर्ष, आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक अव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष आदि इस दृष्टि से उनकी, 'जन्म', 'सींखचें', 'देवी की माँ', 'दुनिया बहुत बड़ी है', 'तीन दिन पहले की रात', 'तलाश', 'माँस का दरिया', 'जो लिखा नहीं जाता', 'अधूरी कहानी', 'राजा निरबंसिया', 'इतिहास कथा', 'मेरी प्रेमिका', 'बयान', 'ब्रांच लाइन का सफ', 'तुम्हारा शरीर मुझे पाप केलिए पुकारता है', 'अजनबी लोग', आदि कहानियाँ महत्वपूर्ण है।

---

[1] मोहन राकेश - सुहागिने - पहचान - पृ.43

शशिप्रभा शास्त्री की ‘धुली हुई शाम’, ‘पतझड़’, ‘उस दिन भी’, शिवानी की ‘लाल हवेली’, ‘पुष्पहार’, ‘स्वयंसिद्धा’, ‘अपराधिनी’, कृष्णा सोबती की ‘मित्रो बरजानी’, ‘बादलों के घेरे’, ‘सिक्का बदल गया’, मन्नू भण्डारी की ‘मैं हार गई’, ‘यही सच है’, ‘एक प्लेट सैलाब’, ‘त्रिशंकू’, उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’, ‘गुलाब के फूल’, ‘फिर वसन्त आया’, ‘एक कोई दूसरा’, ‘कितना बड़ा झूठ’, ममता कालिया की ‘छुटकारा’, ‘सीट नं.6’, ‘एक अदद औरत’ आदि कहानियाँ इस युग की स्त्री समस्याओं पर केन्द्रित है।

3.5. समकालीन समाज में स्त्री

भारतीय संविधान की विभिन्न नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से स्त्री सशक्तिकरण के प्रयास किए गए और अब भी वह श्रम ज़ारी है। इसका उदाहरण है 8 मार्च, महिला दिवस, वर्ष 1975, महिला वर्ष तथा वर्ष 2001 को स्त्री-सशक्तिकरण वर्ष घोषित करना। इन सब के परिणाम के रूप में अनेक महिलाएँ जागरूक हुई। जैसे नन्दीग्राम की शबनम आरा पहली महिला काजी बनी और प्रतिभासिंह पाटिल जो राष्ट्रपति के पद पर विराजित हुई आदि इस प्रकार के समाचारों से लगता है कि जब स्त्रियाँ अपनी खोई हुई सफलताओं को प्राप्त करेंगी। लेकिन ऐसे भी कई समाचार आते है जो हमें इस गंभीर मुद्दे को लेकर सोचने पर मज़बूर करते है जैसे - 12 वर्षीय फूला की मृत्यु हुई, जान लेने वाला उनकी खुद की माँ !

गर्भावस्था के दौरान पाँच महिलाओं की मृत्यु हुई एक की मृत्यु के कारण एनीमिया आदि।

समाज से सती प्रथा, बहुविवाह प्रथा, बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ हटा दी गयी थी। फिर भी राजस्थान के जैसे कुछ गाँवों में राजनीतिज्ञों की आँखों के सामने ही ऐसी प्रथाएँ अभी भी चल रही है। 20 वीं सदी के आरंभ में 1000 प्रति पुरुष पर 972 स्त्रियाँ थी जो 21 वीं अर्थात् 2001 की जनगणना में 927 रह गयी है।

समाज में तलाक की संख्या बढ़ती जा रही है। निम्न स्त्रियों केलिए स्त्री स्वास्थ्य भी एक गंभीर प्रश्न है। पहले की कन्या हत्या अब कन्याभ्रूण हत्या में बदल गयी है। पहले के देह व्यापार अब 'कार्ल गर्ल' संस्कृति में परिवर्तित हो गयी है। सती प्रथा के रूप में भी बदलाव आया है वह अब दहेज के नाम पर की जाने वाली आत्महत्या हो गयी है। बलात्कार की आँकड़ों में भी वृद्धि है। पहले स्त्री अपने घरों में सुरक्षित थी तो अब वह घरों में भी सुरक्षित नहीं न बाहरी परिवेश में। यौन उत्पीड़न, अपहरण, बलात्कार आदि अपराध की गति में भी तीक्ष्ण तीव्रता है। यही है समकालीन समाज की स्त्री की स्थिति।

समकालीन स्त्री का स्वरूप सूर्य के पहली किरण के समान है जो भीषण अन्धकार को अपनी हल्की चमक दिखाती है यह हल्की

चमक कभी न कभी उसके तरफ से होने वाले गंभीर अन्धकार को चीर कर सदियों से शोषण की पीड़ा से व्यक्त स्त्री समूह को रोशनी प्रधान करेगा। यही आशा स्त्री को आगे बढ़ाती है। इस प्रकार कुछ सुधार तो दृष्टव्य है। आजकल पुरुषों की मानसिकता में एक भारी परिवर्तन हो रही है, पुरुष वर्ग स्त्री के साथ मिलकर उनकी सहयोगी बनने का परिश्रम कर रहे है।

3.6. समकालीन हिन्दी कहानी में स्त्री विमर्श के विभिन्न आयाम

'स्त्री' शब्द केलिए भारतीय समाज में दो अर्थ ही निकल पाए है। एक है 'श्रद्धा', दूसरा है 'वस्तु'। वैदिक समाज में माता, पत्नी, पुत्री, वामा, भार्या और भामिनी आदि श्रद्धा के अनेक रूपों को भारतीय परंपराओं के उत्कृष्ट स्वरूप के रूप में मानने वाले आज फिर से इस श्रद्धा रूपी नारी को वस्तु मानने लगे है। लेकिन कालान्तर में भारतीय स्त्री की मानसिकता में भी अपेक्षाकृत परिवर्तन आया। इसका एक नहीं अनेक कारण है जैसे स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों की प्रभावी भूमिका, उसके परिणामस्वरूप आए अस्तित्वबोध, अनेक स्त्री-संगठनों का उदय, पश्चिमी नारीवाद की प्रभावी भूमिका, वैश्विक बाज़ारवाद, औद्योगीकरण और शहरीकरण का बढ़ता हुआ प्रभाव, भूमंडलीकरण, संचार क्रांति और आर्थिक उदारीकरण, बढ़ती हुई शिक्षा के कारण उत्पन्न आत्मविश्वास, राजनीति में उनका हस्तक्षेप, विभिन्न उच्च पदों की प्राप्ति आदि कुछ ऐसे कारण है जिनके द्वारा वह एक नवीन

प्रकार की नैतिकता और नए मूल्यों का आधार तैयार कर रही थी। इसके फलस्वरूप आज की नारी अपने को वस्तु समझने वाले समाज के प्रति घोर विद्रोह कर रही है। समकालीन कहानी में नारी का यह विद्रोही भावना सर्वत्र दर्शित है। इसकी परिणति के रूप में स्त्री के परंपरागत अनेक रूपों में बदलाव आया। इसका प्रत्यक्ष रूप समकालीन कहानियों में चित्रित है।

3.6.1. पुरुषवर्चस्ववादी समाज में स्त्री

पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने स्त्री केलिए अनेक नियमों का निर्माण किया था। इन रूढ़ियों से सदियों बढ़ी स्त्री अपने अदम्य परिश्रम से आज स्वतंत्र हैं। समकालीन लेखिकाएँ पुरुषवर्चस्ववादी समाज के उन अमानवीय रीतियों का वर्णन भी अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल हुए है। उस रूढ़ियाँ प्रमुख रूप से निम्न क्षेत्रों से जुड़े हुए है।

3.6.1.1. परिवार

पुराने ज़माने से परिवार में स्त्री कैसी होनी चाहिए उसका एक नियम है। पुराण ग्रन्थों में भी नारी को माता, जननी, जगतकल्याणी, भार्या आदि विविध उपमान प्राप्त था। इसका मतलब यह है कि परिवार में स्त्री सेवा का प्रतिरूप होना चाहिए। घर-परिवार में सुबह से रात तक बिना थके सेवा भाव से रहने वाली माँ, बहन, पत्नी आदि

रूप में स्त्री का संपूर्ण जीवन अपने परिवार केलिए समर्पित करना चाहिए।

जया जदवानी की ‘परिदृश्य’ नामक कहानी में स्त्री की त्यागमयी स्वरूप का चित्रण मिलता है - पत्नी पति का संवाद इसका प्रमाण है-

“सुनो, खाना तैयार है।”

हाँ।

टिफिन जल्दी बना हो, देर हो रही है।

बना देती हूँ

रोहित को आज स्कूल छोड़ देना,

मैं जल्दी में हूँ।

छोड़ दूँगी।”[1]

पत्नी की कहे हुए हर शब्द सदियों से खराब न होने वाली एक मशीन की याद दिलाती है।

3.6.1.2. शिक्षा

पहले तो स्त्री शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। गाँव की नारियाँ तो शिक्षा से काफी दूर थी। समाज में एक स्त्री पैदा हो जाए तो केवल एक ही जल्दी समाज को होता है कि - झटसे उसका

---

[1] जया जादवानी - परिदृश्य - अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता है - पृ.53

विवाह कर दी जाए। आज भी देश की आधी आबादीवाली स्त्रियाँ शिक्षा से कोसों दूर है। फलस्वरूप नारी का यह पिछड़ापन उसे पीढ़ि दर पीढ़ि शोषण का शिकार बनाती गयी। दूसरों पर निर्भर रहनेवाली इस जीव को पुरुष ने एक नाम दिया अबला नारी।

समकालीन कहानी की अनेक कथाएँ स्त्री की इस त्रासदी को रेखांकित करने वाली है। निर्मला सिंह की कहानी 'संजीवनी बूटी' सदियों से अपने ऊपर हो रहे अन्याय को चुपचाप सहने या अपनी नियति के रूप में माननेवाली स्त्रियों की कहानी है। कहानी में दर्शाया गया है कि इस प्रकार अबला बनी नारी को गूँगे पशुओं की तरह बेचा और खरीदा जाता है। कहानी में राजस्थान के एक बाज़ार का चित्रण है - "मेमसाहबजी, वहाँ तो डंग इलाके में बाज़ार लगता है, बकरियाँ और औरतें बिकती है। पचास साल की औरत सस्ती होती है। हमारा देवर कह रहा था कि कोई-कोई बकरी औरत से महंगी बिकती है। वैसे पचास साठ हज़ार रुपयों तक में औरतें बिकती है। मेमसाहबजी यह तो उम्र और सुन्दरता पर निर्भर करता है। पता है, आपको इस खरीदी हुई रकम को वहाँ 'झगडा राशि' कहते है।"[1] इस झगडा राशि को पति देता है तो बाप उसे लेता भी है। कहानी के मीध्यम से लेखिका भारतीय नारी के इतिहास की वास्तविकता के ऊपर चर्चा करती है। पुरुष केन्द्रित समाज के नियम में स्त्री केलिए शिक्षा पाप के समान

[1] निर्मला सिंह - संजीवनी बूटी - पृ.129 -130.

था नतीजा यह हुआ कि वह सदा पुरुष की भोगलिप्सा का साधन मात्र रह गयी। शिक्षित न होने के कारण स्त्री का आर्थिक स्तर भी प्रबल नहीं था।

3.6.1.3. धर्म

स्त्री अपने जीवन को कैसे जीना चाहिए इसके लिए धर्म ने अनेक पद्धतियों का निर्माण किया था। क्योंकि धर्म के उच्च स्तर के अधिकारी पूँजीवादी समाज के पुरुष थे।

भारतीय धर्म के अनुसार स्त्री की स्वामी उसके पति हैं उसे जीवन के अंत तक परमेश्वर के प्रतिरूप मानकर उसकी पूजा अर्चना करनी चाहिए। भारतीय स्त्रियाँ अपनी पति की लंबी आयु एवं सुख केलिए कठोर व्रत, उपवास करने का प्रावधान भी है। आज भी पति की लंबी आयु एवं अगले जन्म में भी उसकी पत्नी रहने की कामना से करवा चौथ, तीजा जैसे कठोर व्रत का पालन भी स्त्रियाँ करती है। भारतीय धर्म के अनुसार पुरुष जो भी कुकृत्य करे स्त्री उसका सहन करती हुई सती सावित्री के प्रतिरूप से अलग नहीं होना चाहिए।

सुमन मेहरोत्रा की 'चाँदनी चाँद की है' नामक कहानी की नायिका अपने पति एक धोखेबाज होते हुए भी भारतीय धर्म एवं पुरुष द्वारा निर्मित लीक पर चलने को ही धन्य मानती है। कहानी की नायिका चाँदनी भारतीय धार्मिक नीति को जीवन में प्रमुखता देनेवाली

है। इसलिए पति चार्ल्स उसे छोड़कर दूसरे विवाह करने पर भी चाँदनी अपने पति की पूजारी है। वह अपने दोस्त आलोक के सामने भारतीय धार्मिक नीतियों को अपना मानने वाली उनकी चिंताएँ व्यक्त करती हुई कहती है कि आलोक तुम सोचो - "गंगा को कितनी आह्लादित अनुभूति हुई होगी। जब भगीरथ ने कहा होगा कि मैं आगे-आगे चलता हूँ तुम मेरे पीछे-पीछे आओ। कैसी निर्द्वन्द्व होकर गंगा बह चली होगी। कुछ सोचना नहीं, कुछ भय नहीं, कोई रास्ता बनाना नहीं। बने बनाये रास्ते पर सिर्फ आँख बंद करके बहते जाना। न गिरने का डर, न चोट लगने का।"[1] चाँदनी के अनुसार तभी गंगा इतना उन्माद और पवित्र है। भारतीय धर्म की स्त्री की खिलाफ रचे गये या उन पर पीढ़ियों से ठोसे गए अनेक अंधविश्वासों का पर्दाफाश लेखिका ने कहानी में किया है।

3.6.1.4. राजनीति

आरंभिक कालों में स्त्री केलिए सरकार का दरवाज़ा पूरी तरह बंद था। न स्त्री को राजनीति में स्थान दिया जाता था। न समाज द्वारा उनके ऊपर की गई क्रूरताओं पर उन्हें इन्साफ मिलता था। शिक्षा की प्राप्ति न होने के कारण अपने अधिकारों के प्रति भी नह अनभिज्ञ थे। इसलिए स्त्री की आँखों में उनकी पूर्णता केवल एक पवित्र पत्नी होने में ही था। पति जो कुछ भी करे या कहे यही स्त्री

---

[1] सुमन मेहरोत्रा - चाँदनी चाँद की है - मुझे नहीं मालूम - पृ.23

केलिए उनका जीवन होता था। स्त्री की इस दर्द भरी गाथा का चित्रण भी समकालीन कहानी में भरपूर मिलता है। प्रभा दीक्षित की कहानी 'कोई पछतावा नहीं' की कहानी कुछ ऐसा ही है। कहानी की नायिका बतशिया के जीवन में कोई प्रमुख व्यक्ति है तो वह उनका पति ही है। उनके अनुसार उनके पति को उनपर कुछ भी करने का हक है। पति तो सदा उसे मारते थे एक बार उसे मारकर घर के बाहर धकेल देते है फिर भी उनका कहना है - "भाभी, उठो हमारे घर चलो।

नहीं, मैं यही दरवाज़े पर बैठी रहूँगी। पहलवान का गुस्सा शाम तक उतर जायेगा।

खुले आम बेइज्जती कराने में तुमको क्या मिलता है ? इस तरह कब तक चलता रहेगा ?

बेइज्जती एक बार होती है। बार-बार हो तो वह ज़िन्दगी बन जाती है। उसे सहा नहीं जाता, वैसे ही जिया जाता है। अब यही मेरी ज़िन्दगी है। यह बात पहलवान अगर समझ लेते तो हर चौथे दिन सड़क पर खड़ी करके न पीटते।

एक बार फिर कहता हूँ। मेरे साथ चलो। नहीं मैं यही रहूँगी। शाम को गुस्सा उतरने पर मुझे यहीं नहीं देखेंगे तो दुखी होंगे।"[1] कहानी में व्यक्त बतशिया की जवाब यह साबित करती है कि पति को यह सब कुछ करने का अधिकार है। समाज उसे पाठशाला में न भेजते हुए भी यह पाठ पढाया जाता है कि पति शराबी, झगडालू,

---

[1] प्रभा दीक्षित - कोई पछतावा नहीं - हंस - नवम्बर 1992 - पृ.60

शंकालू, अकड़ू कुछ भी हो पत्नी उसकी इन खामियों को दूसरों से छिपाते भी उसे अतुल्य एवं आत्मीय प्रेम करना चाहिए। इसलिए पहले तो स्त्री के प्रति हो रहे यह अत्याचार किसी पुलिस थाने में भी दर्ज नहीं होते थे। क्योंकि स्वयं स्त्री समाज भी अनभिज्ञ था कि यह उनके प्रति होने वाले अमानवीयता है।

अत: पुरुष मुख्या बनी समाज में परिवार, शिक्षा, धर्म, राजनीति सभी क्षेत्रों के नियम स्त्री के खिलाफ ही था। लेकिन काल के बदलाव के अनुसार जब से स्त्री शिक्षा पर ज़ोर देने लगी तो वे कामकाजी महिला के रूप में बदल गयी। आज स्त्रियाँ अपनी अधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से सहज एवं सचेत है। वह अपने प्रति हो रहे अत्याचार का खुल कर विद्रोह भी कर रही है। वर्तमान समाज में दोहरे व्यक्ति को निभाने वाली स्त्री की शोषण के रवैये भी आज हज़ारें हो गयी है।

<u>3.6.2. कामकाजी महिला</u>

पुरुषवर्चस्व वादी समाज में पुरुष की उन्नति की 'सीढ़ियाँ' बनकर रहनेवाली स्त्रियाँ जब से शिक्षित हुई तब वह नौकरीपेशा महिला बन गयी। नारी शिक्षा में हुई अधिक बढ़ोत्तरी ने आज नारी को पुरुष-प्रधान समाज में जीवन के विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने और अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने के भरपूर अवसर प्रदान किए। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्ब

महिला आज आत्मविश्वास से दीप्तित है। फिर भी उसकी दोहरी भूमिका को निबाहने केलिए घर और नौकरी के बीच उसे जिस रूप में खटना और तजना पड़ा है इस दर्द का गंभीर चित्रण हर लेखिका की रचनाओं में मौजूद है। अपने अस्तित्व केलिए संघर्ष करती महिला कभी कभी तो अपने सहकर्मी की शिकार बन जाते है या बाँस की। इस प्रकार नौकरी पेश महिलाओं की समस्याएँ भी आजकल बढ़ रही है।

3.6.2.1. आवास एवं यौन शोषण की समस्या

नौकरी केलिए निकलनेवाली महिला सबसे पहले आवास की समस्या से जूझती है। अचला नागर की 'सिफारिश' नामक कहानी इस समस्याओं पर ही चित्रित है। कहानी के प्रमुख पात्र के सोच के द्वारा लेखिका बताती है - "विशेष रूप से, अगर सरपरस्तों को यह मालूम हो जाय कि महिला अकेली रहती है - तो बस फिर तो सहानुभूति प्रक्षेपण का वह फार्मुला चलाते है जो अच्छी-अच्छी समझदारों को भी धराशायी कर देता है।..... और फिर देखिए उनके ठाठ...वेतन कुल जमा चार सौ रुपए लेकिन शरीर पर फ्रेंच शिफॉन से लेकर इंटिमेट का मादक स्प्रे टैक्सी से आना-जाना, घरों पर फ्रिज से लेकर टी.वी तक का होना....वगैरह - वगैरह।"[1] कहानी में वर्तमान समाज की समस्याओं में बंदी महिला का चित्रण है।

---

[1] अचला नागर - सिफारिश (सं. पुष्पपाल सिंह) - नौकरी पेशा नारी - कहानी के आईने में - पृ.9

कहानी की नायिका रुचि नौकरी चले जाने के डर से एवं अपने सहकर्मियों के शोषण से मुक्त होने केलिए एक सरकारी नौकरी ढूँढ निकालती है। उस नौकरी को किसी भी कीमत पर हाथ से न छूटने केलिए आज की सच्चाई बनी .सफलता माने सिफारिश नामक फोर्मुला को भी वे अपनाती है। वह वाकन्सी तो सचिवालय केलिए एक क्लर्क का था रुचि की मामाजी सचिवालय के कर्मचारी है। मामाजी इन्टर्व्यू पैनल पर बैठने वाले एक कर्मचारी के पते देकर रुचि को उसे लने का सलाह देते हैं अंत में वह उसके यौन शोषण का शिकार हो जाते है। रुचि कहती है कि "किसी भी गली से जाने पर भी पहूँचना एक ही मकान को है ....."[1] कहानी में अपने स्वतंत्र अस्तित्व के बनाये रखने केलिए सदा प्रयत्नरत वर्तमान नारी का चित्रण है।

अलका सरावगी की 'मिसेज डिसूज़ा के नाम' नामक कहानी भी इसी समस्या को ही दर्शाती है। कहानी एक चिठ्ठी की शैली में प्रस्तुत है। कहानी की नायिका सुस्मिता गुप्ता अपनी बच्ची वंदिता की स्कूल की प्रधानाध्यापिका श्रीमती डिसूज़ा को एक खत लिखती है। सुस्मिता गुप्ता रेडियो की नामी कलाकार है। अपनी व्यवस्थों के बावजूद भी एक बार वह अपनी बेटी की स्कूल में हुई मीटिंग में पहूँचती है तो उनकी छोटी-छोटी हरकतों को लेकर डिसूज़ा उसे अपमानित करती है उस समय तो वह कुछ भी नहीं करती लेकिन कुछ समय बाद वह

---

[1] अचला नागर - सिफारिश - (सं.पुष्पाल सिंह) - नौकरी पेशा नारी - कहानी के आईने में - पृ.10

चिट्ठी के द्वारा उनसे अनेक सवाल करती है - "ऐसा क्यों होता है मिसेज डिसूज़ा ? आप लोग सब मुझे क्यों बार-बार कठघरे में खड़ा करना चाहते हैं ?..... क्या आप भी औरों की तरह यही सोचती हैं कि आँखों को अपने लिए जीने का कोई अधिकार नहीं ? क्या मेरे जीवन में वंदिता और संगीत एक साथ नहीं रह सकते ? क्यों नहीं रह सकते, मिसेज डिसूज़ा.... मेहनत मुझे करनी होती है, परेशानी मुझे होती है - किसी और को उससे क्या मतलब है ? वंदिता जब कभी बीमार होती है, तो क्यों सब मुझे अजीब सी निगाहों से देखने लगते हैं ? यहाँ तक कि वंदिता के पापा भी मुझे कहते हैं उसका ध्यान रखना... जैसे कि यदि वे नहीं बोलेंगे तो मैं ध्यान नहीं रखूँगी।"[1] कहानी के द्वारा लेखिका यह सारा प्रश्न समाज के सामने डालती है। अपने अस्तित्व को बनाए रखने केलिए संघर्ष करती नारी की कई शत्रुएँ है इसमें खुद नारी भी शामिल है। कहानी से लेखिका प्रस्तुत करती है कि स्कूलों में चल रही अधिक अनुशासन की प्रणाली बच्चों में गंभीर डर ही पैदा करती है। "यदि हम अपनी प्रतिभा, अपनी ऊर्जा का कुछ उपयोग नहीं करते, तो हम अपने बच्चों को कैसे सिखाएँगे कि जीवन नष्ट करने केलिए नहीं है।"[2] कहानी का लक्ष्य आत्मनिर्भर नारी के द्वारा आने वाले पीढ़ी को महत्वाकाक्षा प्रदान करने के साथ दोहरे जिम्मेदारी से त्रस्त नारी जीवन को प्रस्तुत करना भी है।

---

[1] अलका सरावगी - मिसेज डिसूज़ा के नाम - (सं.पुष्पपाल सिंह) - नौकरी पेशा नारी - कहानी के आईने में - पृ.16

[2] वही - पृ.17

इस प्रकार अपने जंज़ीरों से खुद लड़ती हुई नारी अनेक समस्याओं के बावजूद भी आज अपने आप में आत्मनिर्भरता महसूस करती है।

3.6.2.2. आत्मविश्वास भरी नारी

नारी विमर्श की मूल चिंता ने नारी के मन में उपजे आत्मविश्वास को वाणी देने का काम भी किया है। नासिरा शर्मा की 'गली धूम गई' नामक कहानी में प्रमुख पात्र एक मां है। उसकी चार बच्चे है। पति कुमार साहब अधेड़ उम्र में ही दूसरी शादी करते है। लेकिन वह ज़िन्दगी से हार न मानते हुए नौकरी करती हुई अपनी जीविका चलाती है। वह अपनी बेटी की शादी भी कराती है। बेटी की शादी में कुमार साहब द्वारा दे गये वस्तुओं को लौटाकर वह अत्यन्त निडर होकर कहती है - "घर से जाते हुए आप जिन बच्चों को छोड़ गए थे उनकी जिम्मेदारी मैं उठा रही हूँ। आर आ गये बहुत-बहुत धन्यवाद। वरना यह काम भी मैं अपने बलबूते पर पूरा कर लेती। इन भौतिक चीज़ों की आपसे पाने की कोई तमन्ना अब शेष नहीं है।"[1] अर्थात् स्पष्ट है कि जो काम बिना पिता से नहीं हो जाएगा इन विश्वास को आत्मनिर्भर भरी नारी अपनी उज्ज्वल आत्मविश्वास से तोड़ती है। आर्थिक रूप से स्वावलंब नारी अपने कर्तव्यों का निर्वाह भी

---

[1] नासिरा शर्मा - गली धूम गई - दूसरा ताजमहल - पृ.126

सही ढंग से करने में कामयाब हो जाती है। इसलिए वर्तमान नारी में आत्मविश्वास का प्रतिशत अत्यधिक ऊँचा है।

मृणाल पांडे की कहानी 'एक स्त्री का विदागीत' की नायिका सुषमा एक अध्यापिका है। परिवार को सही ढंग से चलाने से पति बच्चे और सास के बीच में भी उसे एक महत्व प्राप्त होते है। नौकरी पेश होने से उपजी आत्मविश्वास में भरे हुए गर्व का वर्णन करती हुई लेखिका व्यक्त करती है कि - "राजहंसिनी की तरह कलफदार स्वच्छ वस्त्रों में रिक्शे में बैठकर गुज़रते जाने का गर्व।"[1] यह पंक्तियाँ स्पष्ट करते है कि यह कर्म से उपजी आत्मसंतुष्टि है।

इस तरह आत्मविश्वास भरी हुई नारी आज अनेक प्रकार के व्यवसायों के प्रति भी आकर्षित है। जैसे कुसुम अंसल के 'संबंधों का दर्पण' की बिन्नि लेखिका है उसी तरह उसकी 'इंतज़ार' नामक कहानी की 'देविशा' दफ्तर में काम करती है। कुसुम अंसल की एक और कहानी है 'अंधी यात्रा' इसकी नायिका सीमा इटीरियर डेकोरेटर है और 'और कुछ नहीं' की नायिका राष्ट्रपति से पुरस्कार प्राप्त एक नारी है। जैसे कुसुम अंसल की ही नहीं नमिता सिंह की 'मक्का की रोटी' की वंदना डी एम ऑफिस में काम करने वाली तथा इन्दु समाज सेविका

---

[1] मृणाल पाण्डे - एस स्त्री का विदागीत - पृ.26

का काम करने वाली है। इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में व्याप्त स्त्री के क्रियाकलाप ने उसकी नैतिक सोच पर भी काफी बदला दिया है।

3.6.3. स्त्री की बदलती नैतिक सोच

वर्तमान समाज में स्त्री को अनेक अवसर प्राप्त है। इन अवसरों ने स्त्री को व्यक्तिगत रूप से काफी प्रबल तो बना ही दिया है। यह बदलाव बड़े पैमाने पर उसकी नैतिक सोच को भी बदला दिया है।

3.6.3.1. विवाह की अवधारणा

समकालीन समाज में नारी विवाह रूपी संस्था को ठुकराती हुई बच्चे भी पैदा नहीं करना चाहती। आज की नारी पतिव्रता या सतीत्व को भी ठुकराती हुई अपनी ज़िन्दगी को स्वेच्छा से जीना चाहती है। नारी की इस तरह के बदले हुए रूप का चित्रण अनेक महिला कहानीकारों की कहानियों में चित्रित है।

इन्दिरा मित्तल की कहानी है 'प्लीस हमें बेबी चाहिए'। कहानी की नायिका नौकरी पेश है। वह अपनी करियर को दाव पर लगाना नहीं चाहती। पहले ही उसे दो बच्चे है। इसके बीच वह तीसरी बार भी गर्भवती हो जाती है तो वह उसे अपनाने केलिए तैयार नहीं होती। इन सभी परिस्थितियों से न अवगत बच्चे लोग दूसरे की तरफ अपने घर में भी बेबी लाने केलिए होस्पिटल की चक्कर लगाती है। यह आज की

समाज की सच्चाई है कि आज अबोषन की संख्या भी ज़ोरों पर है सभी स्त्रियाँ कहानी की नायिका की तरह पूछती है कि पर डार्लिंग, जॉब ? आधुनिक नारी अपनी करियर पर प्रमुखता देती है। वह विवाह की अवधारणा एवं पत्नी की बने बनाये परंपरागत नियमों से मुक्ति चाहती है। कुसुम अंसल की कहानी 'स्पीड ब्रेकर' में भाव शून्यता से बेचैन नारी दाम्पत्य के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए कहते है - "जी चाह रहा था - विद्रोह कर डालूँ, सबसे बदला लूँ...में...बाप से, जिन्होंने जाने क्या सोचा, जहाँ जी चाहा ब्याह दिया, विद्रोह करूँ अपने आप से जो बिना प्रतिवाद किए सिर झुकाए चलती रही, फिर अपने पति विवेक से, जिसने घर के कीमती फर्नीचर या फ्रिज की तरह मुझे भी घर का एक विषय समझकर प्रयोग किया।"[1] इस प्रकार वर्तमान नारी विवाह के बंधन को आक्रोश से ही देखते है।

कुसुम अंसल की कहानी है 'एक नई मीरा'। कहानी की नायिका रत्ना विधवा है। विधवा होते हुए भी वह अपने जीवन में जो पीछे छूटी सारी खुशियाँ ले आने की कोशिश वह करती है। वह अपने अदम्य जीवन की इच्छा से अन्य पुरुषों से संबंध भी रखती है। वह अपने मन में विकारों को प्रकट करती हुई बताती है - "शायद मुझे लोकलाज है ही नहीं.... ढोंग मुझसे होता नहीं और सच दुनिया पसंद

---

[1] तुसुम अंसल - स्पीड ब्रेकर - (सं.मीना अग्रवाल) - महिला कथाकारों की उन्नीस श्रेष्ठ कहानियाँ - पृ.42-44

नहीं करती। हर चेहरे की खुशी में अपनी खुशी ढूँढ रही हूँ।"[1] रत्ना शराब पीती है और अश्लील कपड़े भी पहनती है इससे समाज पूरी तरह आज भी सहमत नहीं। लेकिन आज की नारी पुरुष के समान जीना चाहती है। लेखिका कहानी के द्वारा पूछती है कि पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुष पुनः यौन संबंध अपना सकती है तो नारी क्यों नहीं ? समकालीन समाज में परंपरागत विवाह की अवधारणा मरे हुए समान है।

मैत्रेयी पुष्पा की 'उज्रदारी' नामक कहानी की नायिका शान्ति भी विधवापन की वास्तविकता से अवगत है लेकिन अपने देह-सुख को भी मान्यता देती है। शान्ति सतीत्व एवं पतिव्रता नारी की सारी बने बनाए नियमों को तोड़ती हुई प्रधान के साथ संबंध जोड़ती है। उसके सोच के मुताबिक लेखिका बदलते स्त्री की छवि को प्रस्तुत भी करती है - "सोमू का बाप कुछ भी सोचे, मरे आदमी की इच्छा क्या अनिच्छा क्या ? सब हमारे मन का ढोंग है।"[2] वर्तमान नारी अपने अस्तित्व को खोना नहीं चाहती। वह नए संबंधों से उनके जीवन की अदम्य चाह को पूर्ण कराती है।

मंजुल भगत की कहानी है 'बावन पत्ते और एक जोकर'। कहानी की नायिका मम्मी अपने को पुरुष जैसा बनाने केलिए सदा प्रयत्न

---

[1] कुसुम अंसल - एक नई मीरा - इक्तीस कहानियाँ - पृ.31

[2] मैत्रेयी पुष्पा - उज्रदारी - गोमा हंसती है - पृ.116

करती है। इसलिए वह अपनी बच्चों की परवरिश भी आया को सौंपती है। यह वर्तमान विडंबना है। आज की नारी अपने बच्चे को पालना पोसना तो दूर उसे दूध भी नहीं देती। क्योंकि इससे उसका सौंदर्य नष्ट हो जाएगी। वह अपना सारा वक्त क्लबों में बिताने में पसन्द करती है। कहानी में पति समीर अपने पुत्र सोनु को देखकर सोचता है - "उसने ममी काँ ? पापा माँ भी नहीं कहा।"[1] असल में लेखिका बदलते नैतिक मूल्यों के चित्रण से समाज में उभरकर आने वाले अनेक प्रश्नों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

आजकल बोर्डिंग स्कूल की संख्या भी अत्यन्त ऊँचाई पर है। माँ-बाप सदा सभी खुशी हासिल करने की होट में सभी मानवीय संबंधों को भूल कर भाग रहे है। समकालीन नारी न पति से डरती है न बच्चों के ऊपर अधिक चिंतित है। इसलिए आजकल पति-पत्नी के बीच प्रेम का निर्मल भाव नहीं के समान है।

3.6.3.2. विवाहेतर संबंध

वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष संबंध इतना बिगड़ गया है कि विवाहेतर संबंध एक आम बात हो गयी है। भूमंडलीकृत समाज ने व्यक्तियों को अधिक धन मोही बना दिया है। अपनी केरियर की

---

[1] मंजुल भगत - बावन पत्ते और एक जोकर -(सं.पुष्पपाल सिंह) - महिला कहानीकार प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ.155

ऊँचाई एवं इससे मिलने वाली धन का मोही होकर पुरुष ही नहीं नारी भी विवाहेतर संबंधों को आज ज़रूरी मानने लगे है।

नासिरा शर्मा की 'आबे-तौबा' नामक कहानी की ससुन - एक पत्नी, माँ और टीचर भी है। अनेक श्रेष्ठ व्यक्तित्वों के धनी होते हुए ससुन पराये मर्द शमशाद के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है। पहले तो उसे पश्चात्ताप खेर जाती है लेकिन अंत में वह सोचती है "आखिर वह इस बात को इतना तुल क्यों दे रही है? क्या हुआ अगर उसने किसी के साथ तन का संबंध स्थापित कर लिया।"[1] आज लेखिकाएँ स्त्री के भौतिक सुख की आवश्यकता केलिए उठाए गए नारी के देह सुख के कदम को गौरवाजिब नहीं मानती।

स्पष्ट शब्दों में यह प्यार नहीं है यह पुरुष शरीर के प्रति स्त्री का अदम्य आकर्षण है। मृदुला गर्ग की 'कितनी कैदें' नामक कहानी की नायिका मीना ऐसे जीवन जीने में संतुष्ट महसूस करने वाली है। वह कहती है कि - "मन करने लगा, सब कपड़े उतार फेंकूँ, बांहें फैलाकर चांद तक उड़ जाऊँ।"[2] युवा पीढ़ि इस प्रकार आनंद का जीवन जीने केलिए ड्रग्ज़ का भी इस्तेमाल करते है। मृदुला गर्ग की एक और कहानी है 'अवकाश'। इसकी नायिका एक पत्नी और बच्चे की होती हुए भी समीर नामक युवक से प्यार करती है। वह अपने पति महेश

---

[1] नासिरा शर्मा - आबे - तौबा - शामी कागज़ - पृ.131

[2] मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - चर्चित कहानियाँ - पृ.24

से कहती है -"मेरे जीवन में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मैं जानती ही नहीं थी, प्यार किसे कहते हैं। ओह महेश, तुम नहीं समझ सकते।"[1] इस प्रकार आज की नारियाँ एक क्षण के सुख को महत्त्व देते हुए किसी की भी चिंता न करती हुई स्वच्छन्द व्यवहार पसन्द करती है।

3.6.3.3. तलाक

वर्तमान समाज में बढ़ती गयी इस विवाहेतर संबंधों ने तलाक की संख्या की भी वृद्धि की है। आज शादी और तलाक एक आम बात हो गयी है।

राजी सेठ की कहानी है 'अंधे मोट से आगे' कहानी के नायक सुरजीय स्वयं जानता है कि अपनी पत्नी और उसकी बॉस के बीच अनैतिक संबंध है। यह संबंध आगे बढ़ते-बढ़ते पत्नी केलिए भी सुरजीत ज़रूरी से कम ज़रूरी होते होते गैर ज़रूरी हो जाती है। इसलिए पत्नी सुरजीत से तलाक की बात करती है तो वे कहते है -"न रहना हो न रहो तुम्हारे बिना मर नहीं जाऊँगा।"[2] संबंधों में आया बदलाव पति-पत्नी के संबंधों को गैर ज़रूरी तक पहूँचा दिया है। इस प्रकार पति-पत्नी होकर भी अतृप्त कामवासना केलिए भटकते व्यक्तियों की वास्तविक हालत क्या से क्या हो जाएगा इसका भी तीव्र चित्रण कहानी में प्रस्तुत है। मृदुला गर्ग की कहानी 'आकाश' में

---

[1] मृदुला गर्ग - अवकाश - चर्चित कहानियाँ - पृ.13

[2] राजी सेठ - अँधे मोट से आगे - सदियों से कथा संचयन - पृ.21

एक स्त्री जो दो बच्चों की माँ भी है वह किसी के भी चिंता न करते हुए अपने पति से कहते है - "महेश मैं समीर से प्यार करती हूँ। मुझे तलाक चाहिए।"[1] आज की नारी विवाह, प्रेम, दाम्पत्य, परिवार आदि के प्रति अपनी दृष्टिकोण को एक नए नज़रिए से पारिभाषिक करती है।

चित्रामुद्गल की 'बावजूद इसके' नामक कहानी की नायिका प्रीति अपनी दाम्पत्य जीवन की असफलता को केरियर केलिए इस्तेमाल करती हुई दिखाई गयी है वह अपने पति से तलाक लेती हुई कुवारी होने का एक लिखित प्रमाण प्रस्तुत करती हुई एक होटल में रिशेप्सनिस्ट की नौकरी में लग जाती है। लेकिन होटल में आने वाले गेस्ट की संतुष्टि केलिए वह उनके चाहत को भी सफल बनाती है। वर्तमान समाज में स्त्रियाँ सिर्फ अपनी करियर पर चिंतित है। उनके लिए तलाक एक गंभीर चिन्तन की वस्तु ही नहीं है।

3.6.3.4. स्त्री और सेक्स

सभी कालों में स्त्री किसी न किसी जंजीरों में बन्दी थी। लेकिन कुछ सालों पूर्व तक स्त्री इन जंजीरों से पूर्ण रूप से मुक्ति पायी है। यह उनकी व्यक्तित्व में हुई एक बड़ी उपलब्धि होने के साथ-साथ वह अधिक ढंग से अपने जीवन का उपभोग भी करने लगी है। विवाहित

---

[1] मृदुली गर्ग - आकाश - टुकड़ा टुकड़ा आदमी – पृ.65

हो या अविवाहिता सभी इनके अंग होती जा रही है। आज अधिकतर नारियाँ लीविंग टुगदर रिलेषन शिप को बढ़ोत्तरी देनेवाली हो गयी है।

जया जादवानी की 'रूपान्तरण' नामक कहानी स्त्री अपने जीवन की उपभोगी बनने का चित्रण ही प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका रामकली अपने जीवन का ही उपभोगी बनकर एक वेश्या बन जाती है। लेकिन वह अपने इस जीवन से बेहद खुश भी है। उनका एक ग्राहक था छेदीलाल उसके द्वारा लेखिका प्रस्तुत करती है कि - "उसके कहने पर वह पाँच ट्रकवालों को भी एक रात, एक साथ सहती है।"[1] आज की नारी पुरुष एवं पुरुष केन्द्रित समाज जो भी चाहे उसकी परवाह न करती हुई वह पूर्ण रूप से जीवन का आनंद लेने में आज हिचकते नहीं।

विवाहित नारियाँ भी इसमें कुछ नीचा नहीं है। मृदुला गर्ग की 'रुकावट' नामक कहानी की नायिका 'रीता' अपने पति होते हुए भी अपने प्रेमी मदन के साथ लैंगिक संबंध जोड़ते है। यहाँ रति यह भी जानती है कि मदन एक भ्रमरवृत्ति वाला युवक है। उनके पूँछने पर वह उनकी तीन प्रेमिकाओं का नाम भी बताती है। यह सब कुछ जानती हुई रीता उनसे संबंध जोड़ती है तो स्वयं उसे वह वेश्या लगने लगती है।

---

[1] जया जादवानी - रूपांतरण - अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता है - पृ.84

कुसुम अंसल की 'समुद्र की एक लहर' नामक कहानी की नायिका मंदिरा अधेड़ पांचु अंकल से लैंगिक संबंध जोडती है।

नासिरा शर्मा की कहानी 'दूसरा ताजमहल' की नयना पढ़ी लिखी आर्किटेक्चर है। उच्च स्थान की अधिकारी होने के कारण उसे अनेक स्थानों जाना भी होता है। वह दिल्ली से मुंबई काम के नाम से जाती है लेकिन उनका एक मात्र लक्ष्य अपने प्रेमी रति से मुलाकात करना मात्र है।

इस प्रकार की एक ओर कहानी है क्षमा शर्मा की 'नेम प्लेट' । कहानी में निशा मि. राहुल वर्मा से कहती है कि "यहाँ बैठकर तुम मेरे साथ क्या कर लोगे। ज़्यादा - से - ज़्यादा मेरा हाथ पकड़ लोगे। मेरे कन्धे पर अपना हाथ रख लोगे। या बहुत हुआ तो मुझे किस कर लोगे। इससे ज़्यादा क्या ! और तुम क्या कर लोगे, कहो तो मैं तुम्हें सबके सामने किस करके दिखाऊँ।"[1] कहानी के द्वारा लेखिका पूछती है कि इस दुनिया में प्रेम कहाँ है।

3.6.3.5. नारी देह –मीडिया और विज्ञान

भूमंडलीकृत साईबर विश्व ने स्त्री शोषण के विभिन्न तरीकों की निर्मिती की है। इस समकालीन माहौल में तो स्त्री स्वतंत्रता की

---

[1] क्षमा शर्मा - नेम प्लेट - पृ.90.

आवाज़ भी इतनी तेज़ हो गयी है कि वे यथेष्ट अपने जीवन का निर्णय लेती है।

सरिता शर्मा की 'वैक्यूम' नामक कहानी नवउपनिवेशिक समाज में उभरी नारी शोषण के नए तरीकों को ही प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका एक सरकारी कर्मचारी एवं तलाक शुदा औरत है फिर भी नौकरी होने की वजह से अपनी ज़िन्दगी के प्रति वह कम परेशान है। वह स्त्रियों से अधिक पुरुष को मित्र बनाने की तत्पर है। एक दिन उनके सहयात्री जो कम्प्यूटर सेल में मैनेजर है उनसे वे परिचित होती है। यह परिचय डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू से शुरू होकर चैट और ऑनलाईन रोमांस केलिए भी वह उसे प्रेरित करते हुए कहते है - "यह एन्ज्वायमेन्ट केलिए है, एक तरह का स्ट्रेसबस्टर। ऑनलाईन रोमांस में कोई खतरा नहीं है।"[1] आरंभ में तो नायिका इसे सरल रूप में मानती है तो वह फिर बताते है - "अनेक ग्रूप चैट रूम्स हैं जिनमें कैमरे पर सब कुछ दिखाया जाता है। अनेक लड़के और लड़कियाँ दूर बैठे ही सेक्स का पूरा आनन्द ले सकते हैं.... तुम भी किसी दिन थोड़ा बोल्ड बनो न।"[2] यहाँ बाज़ारवादी संस्कृति का प्रज्ज्वल एवं प्रचण्ड रूप दर्शित होते है।

---

[1] सरिता शर्मा - वैक्यूम - हंस - जुलाई 2009 - पृ.19

[2] वही - पृ.20

यह पुरुष नायिका को ही नहीं अनेक स्त्रियों को विवस्त्र होने केलिए प्रेरित करने के साथ उनकी पत्नी के साथ हुए उनके संबंध को भी डी.वी.डी से वे दूसरों को दिखाते है। अंत में कहानी की नायिका को भी लगता है कि “मैं ने भी तो उसके खेल में शामिल होकर स्वयम को वस्तु में बदल डाला।”[1] लेखिका कहानी में नायिका के द्वारा वर्तमान समाज की स्त्रियों की वस्तु या सिर्फ देह रूपी भोगासक्ति मात्र बनाने में तुले हुए शक्तियों का पर्दाफाश करना चाहा है। यह आज की अवस्था है।

लेकिन कुछ लड़कियाँ थे सब जानते हुए भी यही स्वतंत्रता मानकर अनेक यौन शोषण का शिकार बन रही है। इस प्रकार जया जादवानी की कहानी ‘बाज़ार’ स्त्री को केवल बाज़ार की वस्तु के रूप में इस्तेमाल करने वाले आज की समाज की अमानवीय रूप को दर्शाया है। कहानी में पात्रों के द्वारा लेखिका प्रस्तुत करती है - “उस बड़े से बाज़ार में बकरियों की तरह उन्हें भी नुमाईश केलिए रखा गया था। ग्राहक आते और हमारे लेबल को देखकर हमें पसंद करके ले जाते.... सोचती हूँ, देह सिर्फ जानवरों की बिनती है और स्त्री की। खाने के अन्दाज़ अलग है।”[2] नारी की असफलताओं का आज का

---

[1] सरिता शर्मा - वैक्यूम - हंस - जुलाई 2009 - पृ.21

[2] जया जादवानी -बाज़ार - पृ.8

बाज़ार पूरा फायदा उड़ाता है नतीजे के रूप में स्त्री आज स्वयं एक 'बाज़ार' बन गयी है।

भूमंडलीकरण के प्रभाव ने समाज को दो हिस्सों में भरपूर रूप में बाँट दिया है वह है अमीर और गरीब। सबसे ज़्यादा गरीबी लोग बसने वाले हमारे देश के लोग बाज़ारवाद की चकाचौंध में पड़कर सब की खरीदारी करने केलिए करोड़पति बनने का सपने देख रही है। यह हमारे निम्नवर्ग के लोगों को खासकर स्त्रियों को किस दिशा में पहूँचाते है, इसका वर्णन नीरजा माधव की कहानी 'मिथक वध" में खूब मिलता है।

महानगरीय बाज़ारवाद ने एक ऐसा षड्यंत्र क्लब के नाम से खोला गया जिसमें स्त्री का कोई मूल्य ही नहीं। जिसके पास पैसे है वह उस स्त्री को एक रात केलिए खरीद सकते है। कहानी में बंबई की झुग्गी - झोंपड़ियों में जीवन बितानेवाले अधिकतर लोग गाँव की ओर रवाना होना नहीं चाहते है। इसका एकमात्र कारण ऐयाशियों से युक्त जीवन को प्राप्त करना ही है।

इस झुग्गियों के ठीक पीछे एक गटर है उसमें सदा बदबू भरे पानी और मच्छर सदा भरे हुए है। इन लोगों को यहाँ से हटाने केलिए सदा शोरशराबा भी होता है फिर भी यह लोग यहाँ से जाना ही नहीं चाहते। कहानी में रीता नामक एक लड़की का चित्रण है। जो अपने

पिता द्वारा ही बेच दी जाती है। जब वह लौट आती है तो उनके द्वारा कही हुई कहानी में स्त्रियों की अंग-भंग कराकर धंधे में उतारने का किस्सा भी शामिल है। इस प्रकार खरीदने वाले मनोरंजन के वास्ते उनकी जान तक ले लेते है। उपभोगी समाज में अत्यधिक पैसा कमाने की इच्छा से आजकल व्यक्तियाँ इसे गंभीर व्यवसाय के रूप में अपनाते है।

निम्न वर्ग की नारियाँ बाज़ारवाद की रौनक में पड़कर अत्यधिक धन कमाने की इच्छा से आज ज़्यादात्तर वेश्यावृत्ति को अपनाती है। इसके लिए स्वयं उनके पति भी उसे प्रेरित करते हैं। वर्तमान समाज में वेश्यावृत्ति एक आम बात हो गयी है। इससे लौटकर चलना चाहा तो भी वह लौट नहीं सकती यही है बाज़ारवाद की शक्ति। इसकी एक झलक कहानी में है - “क्लबों में दूसरी औरतों की कमर में हाथ डाले ये रईस लोग क्या भजन गाते है ? तो फिर सारी हथा क्या यू.पी, बिहार के भइया लोग के नाम लिख दी गयी है ? यह शिवपतिया है कि समझती नहीं? बेचन बारबार ग्राहक फँसाकर लाता है और यह दुलती झाड़ देती है। पीटने पर भी वहीं ज़िद। गाँव पहूँचा दो। एक दिन चरनी रोड मिरियम लारू ले जाकर दिखा भी लाया। अमीर, गरीब सभी तरह के जोडे। बिना किसी बन्धन के समुद्र के किनारे लहरों के उठने-गिरने का आनन्द लेते। अब कितना खोलकर समझाता जाए कि यहाँ किराये पर मिलता है.. इससे अच्छी तो वह कोने वाली मेहगू बो

है। ढल गयी है। मजे से कमा खा रही है। कभी-कभी गाँव जाती है तो वहाँ भी उसकी कैसे चौधरानी की है तरह आव भगत होती है।"[1] यह भारतीय समाज की वर्तमान अवस्था है। इस गंभीर अवस्था की ज़्यादात्तर शिकार स्त्रियाँ ही होती है।

वर्तमान समाज के प्रति लेखिका की आशंकाएँ दुरपदिया नामक स्त्री के द्‌वारा ही कहानी में प्रस्तुत है। दुरपदिया सुल्तानपुर की रहनावेली है वहाँ उनकी कुछ ज़मीन भी है। उनके पति की अधिक धन पाने की कोशिश में लड़ कर वे भी यहाँ आ जाती है। पति की लाख फर्माईश के बावजूद भी वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए वे तैयार नहीं होती तो उनके पति उसके बेटे को उनसे छीन कर विदेशियों को निर्यात कर दिये जाते है।

अंत में दुरपदिया अपनी बेटी सीता की इस माहौल से बचाना चाहती है। शहर के इस रंगीलेपन से वह सीता के व्यक्तित्व को छकनाचूर करना नहीं चाहती इसलिए वह वापस गाँव चलना चाहती है। कहानी में झुग्गी झोंपड़ियों के पास एक कवि सम्मेलन होते है इसमें 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' यह कविता सुनाते हुए कवि कहते है कि भारत एक ऐसा देश है जहाँ द्रौपदी के चीर हरण से महाभारत युद्‌ध हुआ सीता के हरण पर राम रावण युद्‌ध भी हुआ था। यह सुनकर दुरपदिया के द्‌वारा लेखिका कहानी में कहती है कि आज अपने घर

---

[1] नीरजा माधव - मिथक वध - पथ-दंश - पृ.27

के ही भीतर रावण बैठा है सीता को हम कैसे बचाये। कहानी के अंत में दुरपदिया रोकर कवि कमलजीत से कहती है - "कह दो... भइया ये मेरी बच्ची सीता हैं... बस इस सीता को बचा लो भैया। दुरपदिया की जो गति हुई वो तो हुई। इसके बाप को आप ही समझा दो भइया जैसे यहाँ अपने सबको समझाया। कह दो उससे गाँव लौट चलें। आपकी बात वह ज़रूर मान जाएगा। कह दो भइया, बहुत देर नहीं हुई है। लौट चले...।"[1] दुरपदिया की विलाप तीसरी दुनिया की स्त्री की विलाप है। कहानी के द्वारा लेखिका भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद के परिणामस्वरूप हमारे समाज में पनपी महानगरीय माहौल ने हमारे देश की रौनक बनी स्त्रियों को केवल वस्तु में तब्दील करने की गंभीर समस्या को हमारे सामने लाते हुए संपूर्ण समाज को इससे सजग बनाने का प्रयत्न किया है।

3.6.4. समकालीन कहानी में चित्रित स्त्री के विद्रोही स्वर

समकालीन समाज में स्त्री अपने घर और बाहर में भी शोषण का शिकार होते है। हर दिन अखबारों में पिता द्वारा बेटी के बलात्कार की खबरें एवं बंबई में एक लड़की पर बेस में हुई घटना इसका उत्तम साक्ष्य है। वर्तमान समाज में भी अनेक अंधविश्वासों से एवं संस्कृतिक रूढ़ियों से स्त्री बाँधे हुए हैं। वर्तमान स्त्री अपने ऊपर हो रहे इन सभी अमानवीयता का खुला विद्रोह प्रस्तुत करती है।

---

[1] नीरजा माधव - मिथक वध - पथ-दंश - पृ.32

महिला लेखिकाओं की अनेक रचनाएँ इस विद्रोही स्वरों से भरपूर भी है।

आशा पांडेय की 'सुरक्षा' नामक कहानी अपनी सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं उडानेवाली एक स्त्री को चित्रित करती है। कहानी के प्रमुख पात्र पच्चीस से अट्ठाइस के आसपास की उम्रवाली एक स्त्री है वह प्लेटफार्म नं. एक पर यात्रियों केलिए बनी बेंच पर बैठी है। कहानी के आरंभ में उसके रूप का वर्णन है - "आँखें बड़ी और भाव-प्रवण, नाक लम्बी, होंठ पतले, रंग मटमैला.... बाल कंधों पर बिखरे है.... दोनों हाथ की कलाइयाँ काँच की चूड़ियों से भरी है।.... उसने अपने दोनों पैर ऊपर उठा लिए और बेंच पर ही पालथी मारकर बैठ गई, उसके पास एक थैला है।"[1] लेकिन गौर से देखें तो अत्यन्त रूपवती वह दिखती है। वह महिला को देखकर पता चलता था कि उसे कहीं नहीं जाना, यही प्लेटफार्म ही उसका निवास स्थान है। वह बैठे हुए बेंच में काफी जगह खाली था कुछ देर बाद एक युवक वहाँ आकर बैठता है। इसे भी किसी ट्रेन का इन्तज़ार नहीं था। पुरुष ने अपनी थैले से कुछ उडाकर उसे देने के बहाने उसके नज़जीक आने का परिश्रम करते है। पुरुष ने उस महिला की नीचे लथड़ रही साड़ी को उठाकर बड़ी आत्मीयता से उसकी शरीर पर डाल देते है। फिर पुरुष उसके हाथ को पकड़ कर उसकी चूड़ियों की प्रशंसा करते है। पुरुष के इन सारी कुकृत्यों को देखकर पास बैठे सभी मर्द उसकी प्रशंसा करते है। फिर

[1] आशा पांडेय - सुरक्षा - कथादेश - अप्रैल 2012 - पृ.86

पुरुष उसके अत्यधिक करीब आने लगे। पुरुष ने दो कप चाय मँगवा दी। उसमें से एक कप उस स्त्री के हाथों में पकड़वा दी। लेकिन कुछ देर बाद महिला होठों पर लाती चाय को झटसे पुरुष के मुँह पर उछाल देते है। साथ में एक करार थप्पड़ भी देते है। गरम चाय से पुरुष की आँखें जल जाते है और उसके मित्रमंडली भी स्तब्ध हो जाती है। महिला के क्रोध भयंकर रूप लेते हुए उस पुरुष को अत्यन्त भय होने पर वहाँ खड़े हुए लोग महिलाओं को पागल और आतंकवादी भी कहते है। और अंत में "शाम होने वाली है, अपनी सुरक्षा केलिए परेशान पुरुष मंडली को देखकर महिला थोड़ा मुस्कुराती है,फिर उठकर आवेशहीन आंतरिक संतुष्टि तथा दृढटता के साथ आगे बढ़ जाती है, जैसे प्लेटफार्म पर बड़ी देर से रुकी कोई ट्रेन चल पड़ी हो।"[1] कहानी में आशा पांडेय जी ने हज़ारों सालों में बंद रहने वाले एक ट्रेन की चलन से, पिता की पुत्र की पति की सुरक्षा से मुक्त होकर अपनी ज़िन्दगी की मालिक स्वयं बनी स्त्री को प्रस्तुत किया है।

रमणिका गुप्ता की कहानी है 'औरत की नाक'। कहानी की नायिका प्यारी एक आदिवासी होकर भी अपनी मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़ती हुई नज़र आते है। प्यारी कोयलरी में काम करती है उसके पति सारा समय दारू के नशे में रहते है। अब तो कोयलरी में यूनियन आ गयी है। प्यारी उसके मेम्बर है। हर मीटिंग में जाते हुए वह अपनी

---

[1] आशा पांडेय - सुरक्षा - कथादेश - अप्रैल 2012 - पृ.88

घर लौटती है तो बेटे को गोदी में लेती नारे लगाकर ही सुलाती है। वह बेटे से थपथपाते हुए कहती है - "मेरा नाम क्या है लिखकर दो। मेरी पहचान क्या है लिखकर दो। मेरा वेतन क्या है लिखकर दो। मैं कौन हूँ लिखकर दो।"[1] वर्तमान नारी अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से सचेत है। प्यारी मैनेजर से कहती है "पाँच सौ फिट से ज़्यादा दुलाई नहीं करेंगे, ज़्यादा कहोगे तो जहाँ पाँच सौ फिट खत्म होगा नहीं कोयला या माटी-पाथर बीग देंगे। तुम खड़ा रहेगा तहाँ मैनेजर साहब, तो तुमरे सिर पर बीग देंगे।"[2] वेतन वेज-बोर्ड से मिलता था पर लीड-लिफ्ट केलिए यूनियन लड़ रही है लड़ने में सबसे प्रथम प्यारी है।

कहानी की नायिका प्यारी अशिक्षित होती हुई भी नारी के अधिकारों से पूर्ण रूप से सचेत है। "अब वह पहले की तरह सारी कमाई मर्द को लाकर नहीं देती। वह अपने पास रखती है सब पैसा। मर्द को जेब-खर्च देती है। खटने में दोनों माहिर है। जानती है कि ज़िन्दगी में खटना है, कोयला बोझना है, पर अपने हक की रक्षा खुद करती है। उसके लिए खुद लड़ना है।"[3] आज की नारी अपने ऊपर हो रहे सभी कुकृत्यों के प्रति हर तरह से अवगत है। इसलिए वह अपनी अवकाश की लड़ाई पूरी प्रकट भावना के साथ आज वह स्वयं लड़ रही

---

[1] रमणिका गुप्ता - औरत की नाक -(सं.सुधा अरोड़ा) - औरत की कहानी - पृ.183

[2] वही - पृ.184

[3] वही - पृ.187

है। आज अपने ऊपर हो रही सभी परंपरागत कुरुतियों एवं अपमान के प्रति वह खुल कर विद्रोह भी करती है।

ममता कालिया की कहानी है 'बोलने वाली औरत'। कहानी की नायिका दीपशिखा है उसके पति है कपिल। कॉलेज में पढ़ते वक्त सभी से अलग दीपशिखा की प्रज्ज्वल वक्तव्यों से प्रभावित कपिल उससे शादी करती है। कॉलेज में उसे सभी अग्निशिखा ही मानते थे। लेकिन शादी के बाद परंपरागतरूप से बना दिए गए पत्नी की जंजीरों में वह फँस जाती है। उसे लगता है कि - "घर में जैसे टॉयलेट होता है ऐसे एक टॉयलेट भी होना चाहिए जहाँ खड़े होकर वह अपना गुबार निकाल ले, जंजीर खींचकर बातें बहा दे और एक सभ्य शान्त मुद्रा से बहार आ जाये.....। घर को सुचारू रूप से चलाने के लिए सिर्फ दो शब्दों की दरकरार थी - जी और हाँ जी।"[1] पढ़ी लिखी दीपशिखा के मन के भावों को समझते हुए भी कपिल न समझ होकर चुप थे। क्योंकि उनकी भी यही मानना था कि यह सब पत्नी होने के नियम है।

घर में कोई भी बात हो जाए उनके मत कहे या न कहे उसका कोई मूल्य नहीं होता दीपशिखा बोलती है- "काश गोदरेज कम्पनी का कोई ताला होता मुँह पर लगानेवाला, तो ये लोग उसे मेरे मुँह पर

[1] ममता कालिया - बोलने वाली औरत - (सं.सुधा अरोड़ा) - औरत की कहानी - पृ.53

जड़कर चाभी सेफ में डाल देते।"[1] अपनी स्थिति के प्रति अवगत दीपशिखा समाज को बदलने की कोशिश में सदा लगी रहती है। अपने पुत्र से थप्पड़ पड़ती हुई दीपशिखा उसे बातों से बदलने में सफल नहीं होती तो वह चुप रहती है। लेकिन लेखिका कहती है कि "फिलहाल उसका मुँह सूजा हुआ है, परमुँह बन्द रखना चुप रहने की शर्त नहीं है। ये शब्द उसकी लड़ाई लड़ते रहेंगे।"[2] इस प्रकार की अनेक कहानियों के द्वारा समकालीन महिला लेखिकाएँ स्त्रियों की गंभीर विद्रोही शक्ति का प्रदर्शन कराती है।

डॉ.नीहारिका की कहानी है 'उम्मीद की लौ'। इस कहानी की प्रमुख पात्र राधा सुबह से रात तक अपनी सास ससुर की और पति की सेवा में लगे रहते है। इस प्रकार अदम्य परिश्रम के बाद भी उसे केवल मार ही मिलती है। समाज में इस तरह के शोषण के शिकार होने वाली औरतों को एक उम्मीद देते हुए कहानी के अंत में एक बुढ़िया का प्रवेश होती है। अपने को दूसरों के सामने एक श्रेष्ठ पति प्रतिष्ठित करने केलिए मनमोहन सपरिवार सोमनाथ घूमने आते है। वे बिना टिकट के उसके अन्दर घुसते है तो वहाँ निखरानी केलिए खड़ी बुढ़िया उससे टिकट लेने केलिए कहती है। एक वृद्धा होते हुए भी वह एक औरत होने के कारण मनमोहन उसे बहुत गालियाँ भी कहते है।

---

[1] ममता कालिया - बोलने वाली औरत - (सं.सुधा अरोड़ा) - औरत की कहानी - पृ.55

[2] वही - पृ.57

प्रश्न गंभीर होने पर भी अपने पति की रक्षा केलिए बोलने वाली राधा से वह कहती है कि - "हाँ रे बच्ची ! हमेशा हम औरतों का ही पैर फिसल जाता है और हम खुद को ही घाव लगा लेते है, तन पर भी मन पर भी, मन ही क्यों आत्मा पर भी, लेकिन तुम बिलकुल न घबड़ा रे बचिया.... ऊपर वाला सब देखता है, ऐसे ही मेरी मरद भी रोज़ धमाधम पीटता था... फिर एक रोज़ खूब दारू पीकर घर लौटा, खूब धुना हमको, लेकिन फिर जो सोया तो सोता ही रह गया, हमेस्सा केलिए और आज देख उसी की नौकरी पारकर ठाट कर रही हूँ तू भी उम्मीद की लौ बार के रखना, एक दिन तेरा भी आएगा जबई ससुरा तेरा मरद लमलेट हो जाएगा और तू राजरानी बनेगी।"[1] यह कहती हुई बुढ़िया मनमोहन को देखती हुई थूँक देते है। कहानी में लेखिका बुढ़िया के द्वारा सदियों से पति नामक पुरुष की क्रूरता का शिकार होने वाली नारियों की करुण कथा हमारे सामने प्रस्तुत करती है तो इसके प्रति एक हिंसात्मक प्रतिशोध उद्भूत होना भी सहज बात है।

समकालीन नारीवादी लेखिकाएँ अपने ऊपर हो रहे सभी अमानवीयता का खुलकर विद्रोह करने के साथ संपूर्ण समाज के सभी प्रश्नों को अपने से जोड़ते हुए स्वयं अपने को ही नहीं समाज को भी श्रेष्ठ बनाने की कोशिश आज ज़ोरों पर है। इस परिश्रम का उत्कृष्ट परिणाम है - पारिस्थितिक स्त्रीवाद।

---

[1] डॉ.नीहारिका - उम्मीद की लौ - कथादेश - अप्रैल 2012 - पृ.63

3.6.5. इको- फेमिनिज़्म (पारिस्थितिक स्त्रीवाद)

प्रकृति से निर्भर होकर ही मनुष्य अपना जीवन जी सकता है। लेकिन औद्योगिक तंत्रों ने लूटकर समृद्धि हासिल करने की बात को बढ़ावा दिया तो आज का मनुष्य अपने ही पर्यावरण की क्षति के कारण के रूप में आज विराजित हुई। 1963 में रेचल करसन के 'साईलेंट स्प्रिंग' नामक रचना ने पाश्चात्य देशों में पर्यावरण से संबंधित अनेक चिंताओं की शुरूआत की। 1978 में 'विल्यिम रुकर्ट' ने 'इको क्रिटिसिज़्म' शब्द का प्रथम प्रयोग किया। इसके बाद 1990 में अमेरिका में भी इससे संबंधित अनेक वाद-विवाद शुरू हुआ। तत्पश्चात् इके-क्रिटिसिज़्म की कई शाखाएँ उभर कर आए (1) गहन पारिस्थितिवाद (2) सामाजिक पारिस्थितिवाद (3) पारिस्थितिक मार्क्सवाद (4) पारिस्थितिक स्त्रीवाद।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद में स्त्री और पारिस्थिति को एक साथ देखने की कोशिश है। वास्तव में इस सोच की शुरूआत 1982 में प्रयावरणवादी एलन स्वार्ले नामक स्त्री से ही हुआ था। लेकिन स्पष्ट शब्दों में इस दर्शन की बढ़ोत्तरी फ्रेंच फेमिनिस्ट फ्रान्स्वा द यूतोण से ही हुआ है। उसने व्यक्त किया कि भूमि हमारी माता है। इस माता की विभिन्न स्वरूप है हर घरों में बसने वाली स्त्री। हर व्यक्ति को बचपन से ही चन्द्रमा, जानवरों, पेड़ों की कथाओं से, इनके महत्व को समझाकर इसे पूजने की प्रथा से स्त्री ही इसे अवगत कराती है। अत: प्रकृति को मनुष्य से जोड़ने का काम स्त्री ही करती है। वर्तमान

समाज में स्त्री अनेक शोषण का शिकार है यानी आज मनुष्य को प्रकृति से मिलाने का सोपान शिथिल है। फ्रान्स्वा के अनुसार इन दोनों का शोषण ज़्यादात्तर रूप में पुरुष के द्वारा ही होता है। पुरुष के आक्रमण से भूमि को बचाने में सिर्फ स्त्री ही सफल हो सकती है। उनके अनुसार इस लक्ष्य की पूर्णता के लिए पहले स्त्री को शोषण मुक्त करना होगा। इस प्रकार इको-फेमिनिज़्म मानव की परिष्कार ही कराता है।

समकालीन हिन्दी कहानी की अनेक रचनाएँ पारिस्थितिक स्त्रीवाद पर आधारित है। इसमें प्रमुख है नमिता सिंह की 'जंगल गाथा'। जंगल गाथा कहानी जंगल से गिरे हुए एक गाँव की कहानी है। गाँववालों का मानना है कि यह जंगल उनका है। लेकिन "बस्ती से आगे लगभग पाँच मील तक फैला यह जंगल इंगलिसिया कोठी पर जाकर खत्म हो जाता है। सच कहा जाय तो यह जंगल कोठी का ही एक हिस्सा है"[1] इसका मालिक है वीरभद्र बहादुर साहब। वे जंगल के राजा के समान है। बिना देखने पर भी गाँव के लोग इनसे डरते हैं। परमू के द्वारा ही वीरभद्र और जंगल के लोगों के बीच वार्तालाप होता था।

कहानी की मुख्य पात्र है सरसत्ती। सरसत्ती अत्यन्त सुन्दर जवान लड़की उनके जन्म के बारे में कहा जाए तो "दाई और दादा

---

[1] नमिता सिंह - जंगल गाथा - पृ.10-11

सुरसत्ती को माई की कृपा कहते हैं। खैर माई गाँव की देवी है - रक्षा करती है गाँव की। जब उसका जन्म हुआ था तभी उसके सिर पर सींग देखकर गुनिया ने कह दिया था कि ये साच्छात देवी है। रच्छा करेगी गाँव की.....”[1] इस प्रकार देवी का प्रसाद बनी मुकादम की बेटी सरसत्ती न जंगल से डरती है न जंगल के बाघ से।

एक बार शहर गए उनके मंकेत्तर चैतु के बारे में वह ठेकेदार से जानना चाही तो जड़ से ठेकेदार उसका हाथ पकड़ते है। लेकिन सुरसती “ज़ोर से झटक कर उसका हाथ अलग कर दिया..... और सरस्वती ने दो कदम आगे बढ़कर ठेकेदार को धक्का देकर एक तरफ कर दिया और उसके सामने तनकर खड़ी हो गयी...ठेकेदार के मुँह से चीख निकलते-निकलते रह गई। हैरान! ..... यह सामने खड़ी औरत है या जंगली जानवर। गैंडे के सींग जैसा ही है इस औरत के कपाल के ऊपर, ठीक बीचों बीच उगा हुआ यह सींग। क्या अजूबा है?”[2] वह यह दृश्य देखकर भाग जाता है। कहानी में सरसत्ती प्रकृति एवं संस्कृति के ऊपर हो रहे भोगासक्ति का प्रतिरोध है।

कहानी में सरसत्ती के इस प्रचण्ड रूप के देखने वाले ठेकेदार उसके बारे में वीरभद्र बहादुर से कहते है। वह भी उसको अपमानित करने की कोशिश करते है। लेकिन वह उनके अंत का ही कारण बनते

---

[1] वही - पृ.18

[2] नमिता सिंह - जंगल गाथा - पृ.23-24

है। कहानी के द्वारा लेखिका साबित करती है कि सरसत्ती रूपी हमारी सृष्टि उसके ऊपर जो भी आक्रमण हो जाए कुछ तो सहते है लेकिन अंत में वह अपनी प्रज्ज्वल रूप के साथ उसका प्रतिरोध करती है। उस प्रतिरोध से न पुरुष बच सकता है न पृथ्वी का कोई भी आदमी।

मृदुला गर्ग की 'तीन किलो की छोरी' नामक कहानी भी पारिस्थितिक स्त्रीवाद की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। कहानी के प्रमुख पात्र शारदाबेन एक ग्राम सेविका है। वह गुजरात के किसी ग्राम में फौंडेशन जद्धाघर में ग्राम सेविका होने के कारण नवजात बच्चे की तौल तराजू पर करती है। उसके लिए उसे महीने में सौ रुपया मिलती है। उनके लिए तो लड़का लड़की में कोई फर्क नहीं है। हर बार तौलने पर ढाई किलो से ऊपर कोई बच्चा आती ही नहीं थी लेकिन आज लल्लीबेन की नवजात बच्ची तीन किलो की निकली। इससे लल्लीबेन और उनके घरवाले खुश नहीं है क्योंकि यह उनकी तीसरी लड़की है। इस पर उनके पति बोलते है - "चुप चुड़ैल, छोड़ नौटंकी, उठ और काम पर लग, दूध पहूँचाने कौन जाएगा तेरा बाप ?"[1] गाँव में एक कार्पोरेट डेअरी है इसके संबंध में शारदाबेन का कहना है "भैंस इतनी आ गयी गाँव में ...फिर भी दुःखी परिवार दुःखी के और सुखी परिवार वही दो-चार। इससे तो पहले अच्छे थे।"[2] कहानी में गाँव के बदलाव

---

[1] मृदुला गर्ग - तीन किलोकी छोरी - संगति-विसंगति- पृ.482

[2] वही - पृ.482

एवं नवजात बच्चियों पर की जाने वाले अत्याचार को भी रेखांकित किया है।

गाँव के लोग अपनी गरीबी से निकलने केलिए अधिक भैंसों को खरद कर उसका दूध कार्पोरेट डेअरी में पहूँचाते है। लल्लीबेन के पति भी इस काम करने से अर्थिक रूप से संपन्न है। लेकिन तीसरी बार भी लड़की होने से कहानी में व्यक्त रूप में बताते है - "छोरा होता तो सारा का सारा दूध डीपो बिकने ना भेजती। कुछ ज़रूर बचा कर रख लेती, घी बनाने को। छोरे की मां को और कुछ नहीं, तो तनिक-मनिक घी तो देना ही हुआ खाने में। कुछ छाछ शारदाबेन के हिस्से भी आ जाता। अब क्या बनायेगी खाक ! छोरी को मां का दूध मिल गया तो बहुत समझो।"[1] यह गुजरात जैसे देशों में भी आज भी हो रही घटना है। बच्ची जन्म लेने से उसी क्षण उसे मार दिया जाता है या उसे सभी पोषण युक्त खानों से अलग रखा जाता है।

कहानी के अंत में आर्थिक रूप से संपन्न एवं निडर शारदाबेन उस बच्ची को लेते हुए हमें दिखाया है। कहानी में व्यवसायीकरण से त्रस्त जानवरों की स्थिति के साथ अतुल्य शक्ति में संपन्न स्त्री समाज की संघर्षों को चित्रित किया है। शारदाबेन के वक्तव्यों एवं

[1] मृदुला गर्ग - तीन किलोकी छोरी - संगति-विसंगति - पृ.483

कर्मों से लेखिका ने स्पष्ट किया है कि स्त्री के द्वारा ही समाज में बदलाव होगा।

सुधा अरोड़ा की कहानी हे 'अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी'। इस कहानी की नायिका अन्नपूर्णा मंडल बचपन में बरसात आने पर आनेवाले केंचुए को मारते थे। वह उस दृश्य को याद करके चिट्ठी में लिखती है कि "माँ तुम्हें याद है, तुम कितना चिल्लाती थी बाबला पर...इतना नमक डालने की क्या ज़रूरत है रे खोका। पर फिर हर बार जीतता भी तो बाबला ही था.... उसके मारे हुए केंचुओं की संख्या ज़्यादा होती थी। बाबा, तुम डारघर से लौटते तो पूछते.... तुम दोनों हत्यारों ने आज कितनों की हत्या की ? फिर मुझे अपने पास बिठाकर प्यार से समझाते......बाबला की नकल क्यों करती है रे ! तू तो माँ अन्नपूर्णा है, देवीस्वरूपा, तुझे क्या जीव-जंतुओं की हत्या करना शोभा देता है ? भगवान पाप देगा रे।"[1] कहानी में बाबा के द्वारा लेखिका पथभ्रष्ट हुए नारियों को अपनी महत्त्व के ऊपर सचेत करने की कोशिश की है। कहानी में भी उसके बाद अन्नपूर्णा मंडल केंचुए की हत्या नहीं करती थी।

बाद में उसकी शादी बंबई में हो जाती है। शहर के माहौल को देखकर चकित उसकी नज़र में केंचुए पड़ते है तो उसे अपनापन का

---

[1] सुधा अरोड़ा - अन्नपूर्ण मंडल की आखिरी चिट्ठी- (सं.सुधा अरोड़ा) औरत की कहानी - पृ.200

एहसास ही होती थी। लेकिन फ्लैट की चार दीवारों में बंद अन्नपूर्णा मंडल जीवन की सच्चाई से अवगत हो जाती है "एक दिन एक केंचुआ मेरी निगाह बचाकर रसोई से बाहर चला गया और सास ने उसे देख लिया। उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गयीं। उन्होंने चाय के खौलते हुए पानी की केतली उठायी और रसोई में बिलबिलाते सब केंचुओं पर गालियाँ बरसाते हुए उबलता पानी डाल दिया। सच मानो बाबा, मेरे पूरे शरीर पर जैसे फफोले पड़ गये थे, जैसे खौलता हुआ पानी उन पर नहीं, मुझ पर डाला गया हो।"[1] अन्नपूर्णा मंडल की वक्तव्यों के द्वारा लेखिका सिद्ध करती है कि स्त्री ही पृथ्वी है। बाद में अन्नपूर्णा मंडल दो बच्चियों को भी जन्म देती है। लेकिन वह इससे पूरी तरह अवगत हो जाती है कि पृथ्वी का नाश स्वयं स्त्री का नाश है। इसलिए उनका भविष्य भी केंचुए के समान ही है। अत: वह अपने बच्चो के जन्म नहीं देना चाहती थी।

कहानी के अंत में अन्नपूर्णा मंडल आत्महत्या करती हुई लेखिका ने दिखाई है। असल में यह आत्महत्या अपने ऊपर हो रहे अमानवीयता का तीक्ष्ण विद्रोह है। वह अपनी ज़िन्दगी को इस शोषण से न बचा पायी इसलिए अंतिम समय वह अपनी माँ-बाप को चिट्ठी लिखकर अपनी बच्चियों को उनके हाथ में सौंप देती है। क्येंकि वे ही उसे इस सच्चाई से अवगत करा जा सकते है कि वे अन्नपूर्णा है।

---

[1] सुधा अरोड़ा - अन्नपूर्ण मंडल की आखिरी चिट्ठी- (सं.सुधा अरोड़ा) औरत की कहानी - पृ.201

लेखिका कहानी के द्‌वारा उद्‌घोषित करती है कि वर्तमान समाज में स्त्री अनेक प्रकार की क्रूरताओं का शिकार हो रही है। उपभोगी मनुष्य स्त्री का प्रतिरूप बने पर्यावरण को भी नहीं छोड़ते। नतीजा है सर्वनाश। भविष्य में होने वाली इसी नाश से मानव को बचाने की एक कोशिश है यह कहानी।

निष्कर्ष

पश्चिमी नारीवाद की प्रेरणा से जन्म हुआ स्त्री विमर्श स्त्री के अधिकारों के प्रति समाज से संघर्ष करने वाला एक चिंतन है। यह आन्दोलन प्रगतिवादी चिंतनों को अपने साथ जोड़ते हुए स्त्री को समानता, आत्मनिर्भरता, स्वतंत्रता, अस्मिता, वर्चस्व और बंधनों से मुक्ति का प्रयास करते हैं। वर्तमान अनेक नारीवादी लेखिकाएँ जैसे राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, सूर्यबाला, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी आदि अनेकों ने स्त्री विमर्श के इन आधार स्तंभों को अपनी लेखनी का माध्यम बनाते हुए स्त्री को भोग्या के बदले एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में दर्जा देने की कोशिश आज सर्वत्र दृष्टव्य है। इस लक्ष्य की सफलता केलिए प्रचण्ड विद्रोही स्वर को समकालीन नारीवादी लेखिकाएँ अपनी पहचान के रूप में आज अपनाती है।

अध्याय चार

समकालीन कहानी में दलित विमर्श

अध्याय - 4

समकालीन हिन्दी कहानियों में दलित विमर्श

जब से मनुष्य है तब से भाषा है

जब से भाषा है तब से साहित्य भी है।

आदिम मनुष्य की गाथा सामूहिक थी पर अन्न की खोज में निकला वह पत्थर-युग से लौह- युग पार करता हुआ सभ्यता के युग में पहूँचा तो अनेक इतिहास - मिथकों, स्मृतियों, विचारों, धारणाओं, आस्थाओं - विश्वासों एवं शक्ति केन्द्रों का निर्माण किया। जिन पर शायद वह आस्था भी रखने लगा था। कालान्तर में सभ्यता की यात्रा में मनुष्य खेमों में बँटने लगा। फिर खेमों में होड़ लगी, युद्ध हुआ, विजेता खेमा खुद को दूसरे से श्रेष्ठ समझने लगा और वह श्रेणियों में बँट गया। समानता एवं सामूहिकता खत्म होने लगी। तत्स्वरूप गुलामी एवं दोसता की शुरूआत हुई - उसी दिन स्वामी का भी जन्म हुआ होगा। यह दासता उसकी पराजय के कारण हो या उसके रंग के कारण अथवा जन्म, जाति या कबीलों के स्तर की भिन्नता के कारण इसका सतत विकास होता चला गया। समय बीतने के साथ पीड़ित यह समाज के भीतर का जमा हुआ लावा ऐसा फूटा कि साहित्य का आकाश रंग गया। समकालीन साहित्य में 'दलित साहित्य' नाम से यह ज्वलन्द मुद्दा विराजित है। इस साहित्य के विविध रंगों को

जानने से पूर्व 'दलित' शब्द के अर्थ को पहचानना एवं साहित्य में इस शब्द की व्याख्याओं को जानना भी ज़रूरी है।

4.1. दलित शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

दलित शब्द संस्कृत के दल् और क् त् प्रत्यय लगाने से बनता है। दल का अर्थ टुकड़ों में विभाजित करना है। अतः दलित शब्द का अर्थ टूटा हिआ है। दलित शब्द से उन लोगों का बोध होता है जो टूटे हुए है, छोटे-छोटे टुकड़ों में घटाये गये हैं और जो कुचले हुए है।

बृहत् हिन्दी-कोश के अनुसार दलित शब्द का अर्थ हे - "रौंदा, कुचला, दबाया हुआ, पदाक्रांत वर्ग-हिन्दुओं में वे शूद्र जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है।"[1]

ऑकेसफोर्ड़ हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्द कोश के अनुसार दलित का अर्थ है - "Broken or torn to pieces, crushed, ground, trumpled, oppressed."[2]

महेन्द्र चतुर्वेदी एवं डॉ.भोलानाथ तिवारी द्वारा संपादित संक्षिप्त हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश में दलित शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है - "Downtrodden, Depressed."[3]

---

[1] सं.कातिका प्रसाद - बृहत हिन्दी कोश – पृ.510

[2] Editor R.S.Megregor - The oxford Hindi-English Dictionary-– P.483

[3] Editors Mahendra Chaturvedi, Dr.Bhola Nath Tiwari- A shorter Hindi-English Dictionary– P.130

दलित शब्द समाजव्यापी होने से साहित्य कोशों में भी इसे परिभाषित किया। धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार - "यह समाज का निम्नतम रूप है, जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवसायों के अनुरूप ही प्राप्त होती है।"[1] अर्थात् इसका आधार प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था है।

4.2. दलित शब्द साहित्यकारों एवं विद्वानों की दृष्टि में

प्राचीनकाल में दलितों केलिए शूद्र, अतिशूद्र, चाण्डाल, अछूत, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। बाद में लगभग आठ दशकों से दलित शब्द का प्रयोग भारतीय सामाजिक सन्दर्भों में किया जाने लगा। सन् 1919 में सरकार के द्वारा इस शब्द को मान्यता प्राप्त होने से इसका प्रचार बढ़ गया।

दलित शब्द का प्रारंभिक प्रयोग करने वाले महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द, महात्मा फुले एवं रानाडे का नाम लिया जा सकता है।

श्रीमती एनी बेसेण्ट ने इस वर्ग केलिए 'डिप्रेस्ड कास्ट' शब्द का प्रयोग किया। डॉ.अम्बेडकर ने भी निम्नश्रेणी के लोगों केलिए दलित शब्द को अधिक उपयुक्त माना है क्योंकि दलित एक सटीक शब्द है।

दलित चिन्तक माता प्रसाद ने दलित शब्द की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है - "सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक और

---

[1] सं. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 -पृ.284

धार्मिक दृष्टि से जो जातियाँ पिछड़ गयी हैं या जिन्हें पिछड़े रहने को विवश कर दिया गया है वे ही दलित है।"[1] उनके अनुसार दलित शब्द नया है फिर भी दलितपन प्राचीन है।

दलित शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ.सोहनलाल सुमनाक्षर अपने लेख 'हिन्दी में दलित साहित्य' में कहा गया है - "मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है, जिसे निजी स्वार्थों केलिए मानव निर्मित झूठी बर्बर मान्यताओं को मनुस्मृति और धर्म के नाम पर स्वीकारने केलिए बाध्य किया गया हो, वह दलित वर्ग है। उपेक्षित अपमानित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी 'दलित' की श्रेणी में आते हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित - निराश्रित भी दलित ही है।"[2] अर्थात् उनके मतानुसार दलित शब्द के अंतर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था से अभिशप्त , शोषित, उत्पीड़ित व्यक्ति आते हैं वहीं सदियों से उत्पीड़ित अपमानित सामाजिक बन्धनों से बंधित नारी और बच्चे भी इसी श्रेणी में आते है।

हिन्दी दलित साहित्य के अतुल्य हस्ताक्षर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सरल रूप से दलित शब्द को परिभाषा में बाँधने का प्रयास किया है वे कहते है - "दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन किया

---

[1] माता प्रसाद - उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज़ - पृ.21

[2] सं.डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर - दलित साहित्य - पृ.1

गया है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"[1] अपने वक्तव्यों के मुताबिक वे स्पष्ट करते है कि दलित वह है जो वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा हो।

प्रसिद्ध साहित्यकार शरणकुमार निंबाले ने दलित शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है - "दलित केवल - हरिजन और नव बौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मज़दूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावार जातियाँ सभी की सभी दलित शब्द की परिभाषा में आती है।"[2] उनके चिन्तन के मुताबिक दलित शब्द केवल अछूत जाति केलिए मात्र प्रयुक्त नहीं है। बल्कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोग भी इसमें शामिल है।

दलित शब्द की पहचान कराती हुई श्रेष्ठ लोखिका रजत रानी मीनू् का मत है - "संकुचित अर्थः चतुर्थ वर्ण (शूद्र) में आनेवाली जातियाँ, उपजातियाँ जैसे भंगी, चमार, मांग, महार, डोम, अन्त्यज, चाण्डाल आदि बहिष्कृत अछूत जातियाँ संकुचित अर्थ में आती हैं। इन जातियों को तथाकथित उच्च जातियाँ नीचा मानती हैं तथा ये दलित

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - पृ.13-14

[2] शरणकुमार लिंबाले - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - पृ.42

जातियाँ स्वयं भी दूसरे से अपने आप को नीच एवं कम दर्जे का ही समझती हैं।

व्यापक अर्थ में दलित शब्द एक वर्गीय शब्द है जो न केवल अछूतों को ही अपने भीतर लेता है, बल्कि अभावग्रस्त ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि सभी वर्गों एवं जातियों को जिनकी आर्थिक दशा खराब हो और जो विभिन्न प्रकार के अभावों में जीवन जीते हैं। जैसे खेत-मज़दूर, बंधुआ मज़दूर, भूमिहीन, गरीब, बेरोज़गार, महिलाएँ और अनाथ बच्चे, ये सब चाहे किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्ध हों वर्गीय दृष्टि से दलित ही होते हैं।"[1] मीनू जी की इन दो तरह की व्याख्याओं के द्वारा वह बताना चाहती है कि जातियाँ टूटने से ही वर्ग का उदय होता है। वैसे - वैसे दलित शब्द व्यापक होता जाता है। फिर भी वह कहती है कि भारतीय समाज का यथार्थ स्पष्ट रूप में संकुचित अर्थ ही सही है जबकि व्यापक अर्थ में काल्पनिक आदर्श अधिक है।

इन परिभाषाओं से कहा जा सकता है कि सैद्धांतिक रूप से यह शब्द समस्त अस्पृश्य जातियों, आदिवासियों, भूमिहीन खेत मज़दूरों, मज़दूर वर्ग तथा पिछड़ी जातियों केलिए प्रयुक्त होता है। परन्तु व्यावहारिक रूप में दलित शब्द सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक शोषण

---

[1] रजत रानी मीनू - नवें दशक की हिन्दी दलित कविता - पृ.1-2

के शिकार अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग केलिए प्रयुक्त होता है। इस वर्ग को जानने केलिए इनकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि परखना आवश्यक है।

4.3. दलित समाज : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

असमानता हर वक्त हर देश में पायी जाती है। लेकिन इस असमानता के जड़ की खोज करेंगे तो पायेंगे कि इसका उद्भव चातुर्वर्ण्य समाज से ही हुआ है। चातुर्वर्ण्य समाज और जाति व्यवस्था का उद्भव आर्यों के आगमन के साथ जुड़ा हुआ है। जब भारत पर आर्यों का आक्रमण हुआ तब समाज में तीन ही वर्ग थे जो व्यवसायपरक थे - पुरोहित, योद्धा और कारीगर। बैदिक काल की यह जातिव्यवस्था परिवर्तनशील थी और इनमें जातिभेद भी नहीं थी। इन लोगों में अन्तर्वर्गीय विवाह भी होता था। लेकिन समय के अनुसार यह वर्ग व्यवस्था वर्णव्यवस्था में तब्दील हो गये। समाज के वर्णव्यवस्था रूपी परिवर्तन के संबंध में राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक जगजीवन राम की मानना है - "जन आक्रमणकारी आर्यों और भारत के मूल निवासियों के बीच टकराव हुआ तो उसके परिणामस्वरूप संस्कृतिपरक भेदभाव तो अधिक उत्कृष्ट हुए ही, व्यवसायपरक भेदभाव भी अधिक बढ़ गये। उसी समय चौथी जाति- शूद्र का प्रादुर्भाव हुआ और हमारा समाज चतुर्वर्ण समाज बन गया। ऋषि मुनियों ने वर्ण-व्यवस्था को सनातन तथा शाश्वत की संज्ञा दी

और धीरे-धीरे लोगों में यह विश्वास फैल गया कि जाति प्रथा ईश्वर प्रदत्त व्यवस्था है।"[1] धार्मिक दृष्टि से इसे तर्क संगत सिद्‌ध करने केलिए जो भी नियम बनाये गये वे सब शूद्र जाति को शोषित करने केलिए रचा कुटिल तंत्र ही था।

संस्कृत भाषा में प्राप्त प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद में शूद्र की उत्पत्ति के संबंध में बताये हुए प्रजापति ने मानव समाज रूपी जिस पुरुष का विधान किया है वह कुछ इस प्रकार है - इस पुरुष का मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, जांघें वैश्य है और पैर शूद्र है। आगे इस वर्ग के जीवन भी कुछ ऐसे ही थे। इतनी बड़ी जनसंख्या को दास बनाये रखने केलिए चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अंतिम वर्ग शूद्र में भी कई वर्ग बनाये गये जिससे यह कभी संगठित होकर वर्ण-व्यवस्था के विरुद्‌ध विद्रोह न कर सकें। इस प्रकार चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ने इस वर्ग को मानवोचित जीवन जीने के सभी अधिकारों से वंचित रखा गया। फलस्वरूप उच्चवर्ग ने अपने लिए एक अलग सत्ता का निर्माण किया।

शूद्र कहने वाले वर्ग घोर परिश्रमी होते हुए भी समाज इसे अछूत, अस्पृश्य, नीच, चण्डाल आदि माना गया। इनका प्रमुख धर्म उच्चवर्ग की सेवा मात्र रूप में नियमित भी किया गया।

---

[1] जगजीवन राम - भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या - पृ.10

वेद-पुराण, उपनिषद, इतिहास आदि को सुनने या पढ़ने का अधिकार केवल सवर्ण जाति को ही था। निम्न जाति को अक्षर ज्ञान से दूर ही रखा गया। दलित शिक्षा प्राप्त करने के प्रयत्न करें तो उसे घोर दंड देता था इसप्रकार ये वर्ग अपने लिए शिक्षा की प्राप्ति को गंभीर पाप समझा गया। इन्हें सवर्णों के मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। इनके बदले में दलितों ने अपने लिए एक अलग वर्ग के ईश्वर एवं दंड नीति का निर्माण किया फिर भी शिक्षा के अभाव से इनमें कई अमानवीय वृत्तियाँ भी शामिल थी। दलितों की इस दमन भरी जीवन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए रमणिका गुप्ता जी का कहना है - "एक समूह को अमीर, अभिजन, सवर्ण भी उच्च और श्रेष्ठ घोषित किया और दूसरे विशाल समूह को गरीब, नीच, हेय, घृणित, अस्पृश्य एवं निकृष्ट बनाया। एक बड़ी जमात को भौतिक सुख से वंचित रखने में संतुष्ट रहना और बिना फल के कर्म करना सिखाया और दूसरी जमात के श्रम से विमुख रखना भी श्रम से घृणा करना। इसलिए एक और मापक भी गढ़ दिया कि जो श्रम करे वह छोटी जाति का, श्रम न करके श्रम करनेवालों की कमाई खाये वह बड़ी जाति का। ब्राह्मण पढ़ेगा, पढ़ाएगा पर शारीरिक श्रम नहीं करेगा। यानी उत्पादन नहीं करेगा। हल छुयेगा तो जाति से बाहर जाएगा। वैश्य व्यापार करेगा, लड़ने वालों, पढ़ानेवालों को आर्थिक सहायता देगा, उत्पादन करनेवालों से माल खरीदेगा, खेद पढ़ेगा भी लेकिन

दैहिक श्रम नहीं करेगा।"[1] अज्ञानता के कारण दूसरे द्वारा अपने समाज पर हो रहे अत्याचार एवं अन्यायों से वह पूरी तरह अनभिज्ञ थे।

भारतीय समाज के नींव बनी हिन्दुधर्म ने वर्ण व्यवस्था को दलित समाज के शोषण के उपादान के रूप में सदा उपयोग किया। वर्णाश्रम व्यवस्था में शूद्र का दर्शन, शूद्र से स्पर्श, शूद्र का भोजन आदि सब मानवीय समाज के विनाश का कारण बयाया गया। इसके बदले ब्राह्मण के मुँह से जो भी निकले वह देवतुल्य, क्षत्रिय से जो भी हुए वह श्रेष्ठ, वैश्य से जो भी बने वह अमृत माना गया। पराशर स्मृति में शूद्र के दर्शन मात्र से ब्राह्मण के अपवित्र होने और सूर्य दर्शन से शुद्धि प्राप्त करने की बात कही गयी है। इस प्रकार सारे धार्मिक नियम सवर्णों के कुटिल तंत्र से दलितों के खिलाफ ही थे।

समाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक दृष्टियों से शोषित होने से दलित आर्थिक दृष्टि से भी विपन्न ही थे। सही अर्थों में परिश्रम वर्ग होते हुए भी उसे अपने प्रयत्न के बदले निन्दा ही प्राप्त हुए थे इसलिए वह सदा गरीब ही थे। पूरी तरह अन्धेरे में पड़ा यह वर्ग राजनीति क्षेत्र से बिलकुल अनभिज्ञ थे। इस सामाजिक अन्याय से उसे मुक्त करने और अपनी वर्तमान स्थिति से उसे अवगत कराने में आगे बहुत सारे प्रयत्न हुए।

---

[1] रमणिका गुप्ता - दलित चेतना, साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार - पृ.120-121

4.4. दलित आन्दोलन

भारत के शोषित वर्ग को अपने अधिकारों के ऊपर सहज बनाने में दलित आन्दोलनों की भूमिका अत्यन्त सराहनीय है। जाति प्रथा के विरुद्ध एक सामाजिक क्रांति का प्रथम स्थान गौतम बुद्ध द्वारा संचालित बौद्ध धर्म को ही प्राप्त है। बौद्ध दर्शन ने हिन्दु धर्म में व्याप्त सभी अत्याचारों, अनाचारों एवं धार्मिक पाखण्डों का खुलकर विरोध किया। हिन्दु धर्म का शुद्धीकरण बौद्ध धर्म का लक्ष्य था। बौद्ध धर्म दलितों का आश्रय स्थान एवं साधारण जनता का धर्म माना गया। इसी समय वैक्टेरियन ग्रीक, शक, पार्थियन और कुषाणों जैसी विदेशी जातियों की चढ़ाई के आग में घी का कार्य किया और वर्ण व्यवस्था की नींव हिलाने लगी तो मनु ने ब्राह्मण धर्म का पालन करते हुए मनु-स्मृति की रचना की। मनुस्मृति में शूद्रों के विरुद्ध कठोर दण्ड का विधान है।

बाद में 712 ई. में मुस्लीम राजाओं का उदय भारत में हुआ। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से मुक्त होने केलिए कई लोगों ने इस्लाम धर्म को अपनाया। सैद्धांतिक रूप से इस्लाम भाई चारा एवं समानता का समर्थक था परन्तु वर्ण-व्यवस्था की समर्थक जातियों द्वारा इस्लाम स्वीकार करने एवं उनके दबाव में ऊँच-नीच की भावन भारतीय मुस्लिम समाज में भी प्रवेश कर गयी। इस प्रकार मुस्लीम समाज के द्वारा वर्ण-व्यवस्था को समाप्त नहीं कर सकी।

मुस्लीम राजाओं के शासन का लाभ उठाते हुए निम्न जातियों ने स्वयं अपनी मुक्ति का बीड़ा उठाया और भक्ति आन्दोलन को स्थापित किया। अब रामानन्द का सरल मंत्र उनका नारा बन गया -

जात-पाँत पूछै नहिं कोई.

हरि को भजै सो हरि का होई।

तमाम लोग इस आन्दोलन के भाग बने जिनमें कबीर, तुलसी, दादू दयाल, रैदास, नामदेव आदि प्रमुख थे। इस भक्ति आन्दोलन का एक विशेष योगदान यह था कि वर्ण-व्यवस्था के विरोध का बीजारोपण साहित्य के माध्यम से कर दिया था।

इसके बाद आए ईसाई धर्मावलम्बियों ने एक साम्राज्यवादी एवं आधुनिक समाज को जन्म दिया। एक प्रकार से इनके द्वारा सभी जाति एवं वर्गों केलिए शिक्षा के द्वार खोल दिये जाने से भारत के नवयुवकों के मन में भारतीय समाज के पिछड़ेपन के कारणों के दर्शन हुए। इस नवजागरण आन्दोलन का सूत्रपात बंगाल में सन् 1828 में राजा राम मोहन राय द्वारा .'ब्रह्म समाज' की स्थापना से हुआ।

इस नवजागरण काल में शूद्रों में नयी चेतना का उन्मेष हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा जोतिबा फुले, महादेव गोविन्द रानाडे, डॉ.एनी बेसेण्ट, बाल गंगाधर तिलक, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि समाज सुधारकों ने आर्य समाज,

तियोसेफिकल सोसाईटी, हरिजन आन्दोलन आदि अनेक सुधारवादी आन्दोलनों के द्वारा समाज में व्याप्त छुआछूत, सतिप्रथा, जाति-व्यवस्था के खिलाफ समाज को सचेत बनाने की कोशिश की। स्वामी दयानन्द ने 'अछूतोद्धार आन्दोलन' भी चलाया।

उत्तर भारत में स्वामी अछूतानन्द ने दलित उद्धार को आगे बढ़ाते हुए 'आदि हिन्दु आन्दोलन' केलिए दलितों को प्रेरित किया और 'आदि हिन्दु' प्रेस की स्थापना भी की थी। बंगाल में चाद गुरू ने 'चंडाल' शब्द के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। वे खुद उस जाति के होने से कई प्रकार के शोषण के शिकार थे। छत्तीसगढ़ में गुरु घासीदास द्वारा 'सतनामी संप्रदाय' की स्थापना से दलित आन्दोलन को ज़ारी रखा। कोंकण के रावढ़ले के निवासी गोपाल बुवा बलंगकर ने 1888 में 'विटाल विध्वंसन' को प्रकाशित करके यह बताया कि अस्पृश्य मानने वाले लोग पहले क्षत्रिय थे। उन्होंने अछूतों को मानवीय अधिकार दिलाने की कोशिश की। दक्षिण भारत में तमिलनाडु के पेरियार समस्वामी नायकर, केरल में श्री नारायण गुरु, श्री अय्यन काळी, के. अय्यप्पन आदि के नाम दलित उद्धारकों में सबसे श्रेष्ठ है। श्री नारायण गुरु ने 'एक जाति एक धर्म एक ईश्वर की घोषणा' करते हुए जाति की कठोरता को तोड़ने की कोशिश की। दलितों को आत्मसम्मान प्राप्त कराने में श्री अय्यन काळी ने भी सवर्णों के खिलाफ अछूतों को संगठित करके आन्दोलन चलाया।

नवजागरण काल के समाज साधारक सती प्रथा, विधवा विवाह, पशुबलि, बाल विवाह, छुआछूत आदि समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किये हुए थे। इसमें सन्देह नहीं कि इन आन्दोलनों ने एक समय तक सुधार का वातावरण बनाए रखा, परन्तु अन्त में ये सभी आन्दोलन असफल हो गये थे। इसका प्रमाण है कि समाज में ये बुराइयाँ आज भी मौजूद हैं, जिनको दूर करने केलिए ये आन्दोलन अस्तित्व में आये थे। सामाजिक सुधारकों को असफल कर राजनीतिक आन्दोलन की प्रतिष्ठा पर बाबा साहब भीम राव अम्बेड़कर ने कहा है - "सामाजिक सुधार का असफल होना स्वाभाविक था। सामाजिक सुधार के प्रति अत्त भयंकर घृणा थी। राजनीतिक सत्ता का आन्दोलन अत्यन्त मोहक था। परिणाम यह हुआ कि सामाजिक सुधार के अनुगामी थोड़े - थोड़े करके कम होते गए। कुछ समय बाद सामाजिक सुधार का मंच ही समाप्त हो गया और उस पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अधिकार कर लिया राजनीतिज्ञों को समाज सुधारकों पर विजय हुई।"[1] बाद में दलित समाज में समाज सुधारकों से भी अधिक विजय प्राप्त करनेवाले राजनीतिज्ञों एवं एक ज्वलंत चेतना का रूपायन करने में सफल हुए कुछ महान व्यकियाँ हैं - महात्मा ज्योतिबा फुले, श्री मोहन दास करमचंद गाँधी, भीमाराव अम्बेडकर आदि।

[1] डॉ.भीमाराव अम्बेडकर - रानाडे, गाँधी और जिन्ना - पृ.42

4.4.1. महात्मा ज्योतिबा फुले और दलित आन्दोलन

महाराष्ट्र के एक माली परिवार में जन्म लेने वाले फुले जी ने अपने समाज पर व्याप्त समस्याओं पर खूब विचार किया। वर्णाश्रम व्यवस्था से समाज के दलित वर्ग को मुक्त करने केलिए एवं शिक्षा का अधिकार या धर्मग्रन्थ पढ़ने का अवसर उन्हें भी प्राप्त करने केलिए उन्होंने जगह-जगह पाठशालाएं खोल कर दलितों की शिक्षा केलिए सुविधाएँ बना दी। उन्होंने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। फुले ने 1873 में 'गुलामगीरी' नामक ग्रन्थ लिखकर यह साबित किया कि गुलामी सबसे बड़ी असामाजिक वृत्ति है। उन्होंने उसी वर्ष में सत्यशोधक समाज की स्थापना करके दलितों के अधिकारों केलिए उन्हें संघर्ष करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। इस प्रकार महात्मा फुले के चिंतन दलित आन्दोलन के उद्धान के कारण बने। इसलिए कहा जा सकता है कि भारत में दलित आन्दोलन की शुरूआत महाराष्ट्र में ही हुआ है।

4.4.2. महात्मा गाँधी और दलित आन्दोलन

महात्मा गाँधी ने भी अनेक समाज सुधारक आन्दोलनों का प्रारंभ किया है। गाँधीजी वर्णव्यवस्था को बनाये रखते हुए सामाजिक समानता स्थापित करने के पक्ष में थे। पूना पैक्ट के बाद 30 सितम्बर 1932 को गाँधीजी द्वारा 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना हुई। गाँधीजी ने निम्न जाति के लोगों को 'हरिजन' पुकारा। इस शब्द

के महत्त्व के बारे में वे बताते है - "केवल एक दिन पहले एक मित्र ने सुझाव दिया कि हरिजन शब्द अन्त्यज जो अस्पृश्यों के लिए प्रयुक्त होता है की जगह हरिजन शब्द प्रतिस्थापित की जाय। यह शब्द महा सन्त नरसी मेहता द्वारा प्रयुक्त हुआ था, मैं इस शब्द को जो इतने बड़े सन्त द्वारा प्रयुक्त है स्वीकार करने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ, परन्तु मेरे लिए इसका ज़्यादा गंभीर अर्थ है जितना तुम समझ सकते हो। अस्पृश्य मेरे लिए, हम लोगों की तुलना में वस्तुतः हरिजन - ईश्वर के व्यक्ति और हम लोग दुर्जन Man of Evil है।"[1] उनके हरिजन आन्दोलन में अछूतों केलिए पाठशालाएँ खोलने तथा मन्दिर प्रवेश के कार्यक्रम थे। अस्पृश्यता को पाप बताते हुए हिन्दु समाज को एकत्रित करने की कोशिश करने वाले उनकी हर प्रवृत्तियों से समाज को जागरित करने का श्रेय यंग इण्डिया, हिन्दी नवजीवन, हरिजन, हरिजन सेवक आदि समाचार पत्रों को भी देना चाहिए।

4.4.3. डॉ. बी आर अम्बेडकर और दलित आन्दोलन

वकील, लेखक, राजनीतिज्ञ, संविधानविद् आदि विभिन्न रूपों में ख्याति प्राप्त भारतीय इतिहास के एक कालातीत व्यक्ति है डॉ.बी. आर अम्बेड़कर। उन्हें नवजागरण के युगपुरुष के रूप में भी माना

---

[1] The Collectived works of Mahatma Gandhi – Vol. 1 XLVII – P.248
Only the other day a Friend suggested to me that the word 'HariJana' (Man of God) be substituted for the word 'Anlyaja' (the last born) that is being used for 'untouchables'. It was a word used by the great saint Narasinha Mehta, who defied the whole community by claiming the 'untouchables as his own. I am delighted to adopt that word which is is sanctified by having been used by such a great saint, but it has for me meaning than you may imagine. The 'untouchable, to me, is compared to us, really a 'Harijana' – a man of God and me are 'Durjana' (man of evil).

जाता है क्योंकि दलितों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक उन्नति केलिए उन्होंने अपने जीवन को ही समर्पित कर दिया था।

आज़ादी की लड़ाई के नायक महात्मा गाँधी और दलितों के नायक अम्बेड़कर आदि दो महापुरुषों ने अपने व्यक्त चिन्ताओं एवं प्रवृत्तियों से समझाया कि आज़ादी केलिए संघर्ष बाह्य उपनिवेश के खिलाफ हो रही लड़ाई है। जातीय भेदभाव के खिलाफ या आंतरिक उपनिवेश के विरुद्ध एक ओर लड़ाई की ज़रूरत है। इसलिए उन्होंने पहले शिक्षित होने की अनिवार्यता पर बल दिया। उनका नारा था - 'शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो।'

डॉ.भीमराव अम्बेड़कर ने भारत में व्याप्त जाति-व्यवस्था पर विचार करते हुए कहा है -"हिन्दु सोसाइटी उस बहुमंजिली मीनार की तरह है जिसमें प्रवेश करने केलिए न कोई सीढ़ी है न दरवाज़ा। जो जिस मंजिल में पैदा हो जाता है उसे उसी मंजिल में मरना होता है।"[1] भारतीय समाज की इस वास्तविक स्थिति को पहचाने वाले अंबेड़कर इसके एक निष्कर्ष के रूप में बताते है -

"किसी भी दिशा में मुड़ जाएं जाति का दैत्य आपके रास्ते में खड़ा मिलेगा। इस दैत्य को बिना मारे न तो कोई राजनीतिक सुधार

[1] बाबा साहेब - डॉ.अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय - पृ.288

संभव है और न ही आर्थिक सुधार।"[1] इस प्रकार अपने मंतव्यों से उन्होंने लोगों को समझाया कि हिन्दुओं की मानसिकता में परिवर्तन लाना ही होगा नहीं तो दलित समाज की स्वीकृति असंभव है।

उन्होंने सन् 1920 में 'मूकनायक' नामक समाचार पत्र की शुरूआत की। इसका मुख्य लक्ष्य समाज में जागृति लाना ही था। इस पत्र के द्वारा वह अपनी चिन्ताओं को दलितों तक पहूँचाते थे। लेकिन अम्बेड़कर के विलायत जाने पर यह बन्द हो गया। बाद में वापस आकर इन्होंने ही सन् 1927 में वही पत्र को 'बहिष्कृत भारत' नाम से निकाला। सन् 1924 में अम्बेड़कर ने दलितों की शैक्षिक सांस्कृतिक संस्था बहिष्कृत हितकारिणी सभा की शुरूआत की। सन् 1927 में पहाड़ के तालाब से पानी का अधिकार प्राप्त करने हेतु किये गये सत्याग्रह को नेतृत्व दिया। यह उनके द्वारा किये गये पहला आन्दोलन था। 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष दलितों केलिए मंत्री परिषदों तथा विधान सभाओं में आरक्षण की माँग की।

डॉ.अम्बेड़कर का दूसरा बड़ा आन्दोलन 1930 में नासिक के कालाराम मन्दिर प्रवेश को लेकर किए गए सत्याग्रह था। उनके अनुसार सामाजिक परिवर्तन केलिए दलित आन्दोलन को राजनीतिक

---

[1] Dr.B.R.Ambedkar – Annipilations of caste – P.47
Turn in any direction you like, caste is the Monster that crosses your path. You cannot have political reform, you cannot have economic reforms unless you kill this Monster.

आयाम मिलना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए उन्होंने 1930 में गोलमेज़ सम्मेलन में दलितों केलिए पृथक निर्वाचन की माँग की, अंग्रेज़ी सरकार इससे सहमत थे फिर भी इसे साम्प्रदायिक निर्णय मानते हुए गाँधीजी ने इसके विरुद्ध आमरण अनशन आरंभ किया। अंत में 1932 में पूना में गाँधी और अम्बेड़कर के बीच समझौता हुआ जिसे पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। इस घटना से अम्बेड़कर एक ऐतिहासिक नायक बने।

दलितों के सामाजिक अधिकार दिलवाने केलिए उन्होंने स्वयं बौद्ध धर्म को स्वीकार करके धर्मान्तरण एक उपाय बताया और बाद में 1956 रिप्पब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना करके दलितों के राजनीतिक अधिकारों केलिए संघर्ष किया। इसप्रकार निश्चिन्त रूप से कह सकते है कि दलितों में डॉ.बी आर अम्बेड़कर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका ही निभाया है। डॉ.अम्बेड़कर द्वारा दलितोद्धार केलिए जो भी कर्म किए वह कुछ हद तक सफल हुआ और आज भी दलित समाज अपने मसीहा के रूप में डॉ.अम्बेड़कर को मानते है। उनकी चेतना भरी वाणियों का परिणाम है आज का दलित साहित्य।

4.5. दलित साहित्य का उद्भव

दलित साहित्य समकालीन साहित्यिक धारा की एक प्रज्ज्वल शाखा है। इस प्रकार के दलित साहित्य की वृद्धि के कारणों के रूप

में पाश्चात्य दलित चिन्तन यानी ब्लैक लिटरेचर तथा ब्लैक पैंथर के प्रभावों को हम नकार नहीं सकते। इन दोनों साहित्य की सामाजिक परिस्थिति अलग थी - हिन्दी के दलित साहित्य के मूल में धर्माश्रित वर्णव्यवस्था थी तो अमेरिकी साहित्य में वहीँ की वर्णव्यवस्था थी। नहाँ नीग्रो को जानवरों के समान बाज़ारों में बिक्री किया जाता था। उन्हें समाज में कोई अधिकार नहीं था। नीग्रो साहित्य सच में नीग्रो वर्ग ने अपनी नेग्रिट्यूड केलिए किये गये गहन संघर्ष से उद्भूत है। वे अपने जीवनानुभवों को ब्लूज, बैलेड, कथा, उपन्यास, नृत्य और संगीत के द्वारा से व्यक्त करने लगे।

पाश्चात्य आन्दोलन के मार्ग अलग होते हुए भी भारतीय दलित समाज इससे प्रेरित थे। इनके कारणों को व्यक्त करते हुए मराठी दलित साहित्यकार शरणकुमार लिंबाले का कहना है - "दोनों की वेदना विश्व स्तर की है। श्वेत और सवर्ण समाज की स्वामित्व की, अधिकार की और वर्ण श्रेष्ठता की भावना तथा नीग्रो और दलितों की गुलामगिरी के विरुद्ध विद्रोह की भावना समान है। इस साम्य के कारण ही नीग्रो की वेदना दलितों की वेदना लगती है।"[1] आगे चलकर सन् 1852 में स्टोव नामक लेखिका के 'अंकल टॉम्स केबिन', सन् 1901 में बुकर की वाशिंगटन के 'आपफ्रेम स्लेवरी', डब्ल्यू.ई.बी

[1] शरणकुमार निंबाले - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.90

ड्यूबाईस की ‘दसोल ऑफ ब्लैक फोक’ आदि पुस्तक ब्लैक लिटरेचर की ख्याती विश्वस्तर पर बढ़ा दी।

इसके फलस्वरूप सन् 1966 में ब्लैंक पैंथर की गठन हुई। इससे प्रेरणा पाकर दलित पैंथर की भी स्थापना हुई। इसके सदस्य मराठी साहित्यकार थे। समाज में समानता, स्वातंत्रता और बन्धुता की स्थापना ही इस अम्बेड़करवादी मिलिटेंट युवा संगठन का लक्ष्य था।

भारतीय साहित्य में दलित साहित्य की शुरूआत महाराष्ट्र में ही हुआ था। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब अम्बेड़कर के विचारों एवं वाणियों से प्रेरित होकर ही भारतीय दलित साहित्य की अवधारणा हुई थी। इस प्रकार महाराष्ट्र में उद्भूत दलित साहित्य में स्वतंत्रता से पूर्व ही ‘गुलामगिरी’ नामक पुस्तक का सृजन महात्मा ज्योतिबा फुले के द्वारा हुआ था। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में जातीय व्यवस्था में भरे अन्धविश्वासों के खिलाफ आवाज़ उड़ाते हुए स्त्री शिक्षा पर महत्व दिया।

मराठी में दलित साहित्यकारों की वृद्धि का एक कारण उस समय उदित पत्र पत्रिकाएँ ही है। रसराज, अस्मिता, अभिव्यक्ति अनुभूति, अस्मितादर्श आदि पत्रिकाएँ दलित साहित्य को उभरने में काफी सहायक बने। सन् 1953 में सुखाराम हिवराले की नेतृत्व में बंबई में ‘दलित साहित्य परिषद’ के नाम पर दलित साहित्यकारों का

पहला अधिवेशन हुआ। 1961 में आरंभ हुई अस्मितादर्श नामक पत्रिका ने भी अपने लेखकों की एक बैठक बुलाई। इस प्रकार हर जगह में दलित साहित्य के प्रति बैठक, संगोष्ठियाँ आदि का आरंभ होने लगा। इस प्रकार मराठी साहित्य में दलित साहित्य की शाखा का विकास हुआ।

आगे चलकर सामाजिक क्रांति के समय में इन पत्रिकाओं और अम्बेड़कर के समाजशास्त्रीय विचारों से प्रेरित दलित अपने अधिकारों की प्राप्ति केलिए पहले शिक्षित होने लगे बाद में खुले संघर्ष केलिए भी तैयार हुए।

सने 1975 में कमलेश्वर द्वारा 'सारिका' मासिक पत्रिका के दलित साहित्य विशेषांक का प्रकाशन हुआ। इसमें सवर्ण साहित्यकारों के प्रति कई प्रश्न उठाए हुए थे। इसके संबंध में शरणकुमार निंबाले का मानना है - "आधुनिक मराठी साहित्य में दलितों का चित्रण मध्यवर्गीय प्रवृत्ति से हुआ है। इस साहित्य में - 'भोला सुधारवाद' और दलितों के संबंध में 'सहानुभूति' व्यक्त हुई है। मध्यवर्गीय लेखकों का अनुभव-संसार सीमित होने के कारण उनके लेखन में दलितों का वास्तविक चित्रण नहीं मिलता। जिन मराठी लेखकों ने दलितों का चित्रण किया है, उसमें अनुकंपा व्यक्त हुई है। इसमें स्वाभिमानी

दलितों का चित्रण दिखाई नहीं देता।"[1] बाद में हुए द्‌वितीय महायुद्‌ध में हुई भयंकर मनुष्य हानि, यंत्रयुग में जंतुवत मनुष्य, गिरे हुए मूल्य, सार्त्र, कामू, किर्केगार्ड और फ्रायड के विचारों का प्रभाव और स्वातंत्र्योत्तर काल में हुए जन आन्दोलन के कारण जिन दरवाज़े दलित साहित्यकार केलिए बंद थे वह सब खुल गए और दलित साहित्य केलिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हुई।

वर्तमान समय में प्रसिद्‌ध हुए मराठी दलित साहित्यकार हैं - शरणकुमार लिंबाले, दया पवार, लक्ष्मण गायकवाड, लक्ष्मण माने आदि।

प्रसिद्‌ध साहित्यकार माताप्रसाद का कहना है - "महाराष्ट्र में दलित साहित्य पहले आया, बाद में हिन्दी में भी इसने ज़ोर पकड़ा।"[2] आज यह हिन्दी में ही नहीं गुजरात, पंजाब, केरल, तमिलनाडु आदि देशों में भी एक बहुचर्चित साहित्यिक शाखा के रूप में विराजित है।

राजु सोल्लंगी, प्रवीण गढ़वी, जयन्द परमार, मंगल रात्तोड, किसान सोस आदि पंजाबी दलित लेखकों में प्रमुख है। हरीश मंगलम्, दलपत चौहान, धरमा भाई श्रीमाली, बी.केशव शिवम्, जोसफ मेकवान आदि गुजराती लेखकों में प्रमुख है। पं. के.पी.करुप्पन, सहोदरन अय्यप्पन, टी.के.सी वटुतला, नारायन, कवियूर मुरली, राघवन अत्तोली

---

[1] शरणकुमार निंबाले - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.40

[2] माता प्रसाद - दलित साहित्य की प्रमुख विधाएँ (भूमिका) - पृ.6

आदि केरल के प्रमुख दलित साहित्यकार हैं। बामा तमिलनाडु के प्रसिद्ध दलित साहित्यकार हैं। इन सभी लेखकों ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में दलित साहित्य को अत्यन्त समृद्ध बनाया है। आगे चलकर हिन्दी दलित साहित्य के विस्तृत रूप को पहचानने से पूर्व दलित साहित्य के विस्तृत स्वरूप एवं लक्ष्यों पर विचार करना ज़रूरी है।

4.6. दलित साहित्य : स्वरूप एवं लक्ष्य

जब अभिजन और दलित के जीने का ढंग, सोचने की प्रक्रिया, बोलने की शैली, यहाँ तक कि दोनों की संस्कृति अलग-अलग हैं और उनके रिश्ते की भी पूर्व परिभाषा बदल गई है और वह अब शोषक और शोषित के रिश्ते में बदल गई है, जिसमें एक को अधिकार सम्पन्न का दर्जा प्राप्त है, दूसरे को अधिकार विहीन का तो दोनों का साहित्य एक कैसे हो सकता है? इस प्रकार दलित साहित्य का स्वरूप विश्व के अन्य सभी साहित्यिक धाराओं से अलग है।

सैकड़ों वर्षों से पीड़ित जनता की वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है। दलित साहित्य की विषय अन्यों की तरह कल्पना भरित नहीं है बल्कि यथार्थ मानव जीवन है। दलित साहित्य, दलितोत्थान का साहित्य है। वह साहित्य दलितों, पीड़ितों, शोषितों और असहाय वर्ग के उत्थान और नव विकास की प्रेरणा देता है। ऐसे व्यक्तियों के

गौरवमय इतिहास से परिचित कराता है। जो मानवीयता की पहचान कराते है। यह वह साहित्य है जो धरती से जुड़े लोगों की समस्या और दुर्दशा से अवगत कराते हुए उनके निराकरण और समाधान का उपाय बताता है। दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो सभी तरह की वर्ण-व्यवस्था, जात-पांत, ऊँच-नीच के भेदभाव के दायरे से ऊपर और जिसे धर्म, भाषा और प्रदेश की सीमा में बाधा नहीं जा सकता। यह साहित्य सर्वहारा वर्ग की तरह सरल भी है। इसके लिए छन्द और अलंकार की अपेक्षा नहीं, यह दलन की वेदना, शोषण की कुढ़न और अन्याय के उत्पीड़न, अत्याचार का रुदन, अपमान की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। दलित साहित्य व्यक्ति को भीरू, अकर्मण्य और धर्मान्ध के स्थान पर जुझारू, संघर्षशील, आत्मगौरव जगाकर आडम्बरों को दूर भगाता है। इस प्रकार की अनेक विशेषताओं से भरे दलित साहित्य के स्वरूप को कई विद्वानों ने पारिभाषित करने की कोशिश भी की है जैसे -

मराठी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक एवं समीक्षक शरणकुमार लिंबाले का कहना है - "दलितों का दुख, परेशानी, गुलामी, अध:पतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। 'आह का उदात्त स्वरूप अर्थात् दलित साहित्य।"[1] अर्थात् जिस मनुष्य को स्वतंत्रता, सामाजिक

[1] शरणकुमार लिंबाले - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.42

प्रतिष्ठा, भयमुक्त सुरक्षा नहीं मिलता उनकी निर्मिती पर एक प्रवृत्ति साहित्य में अभिव्यक्त हुई तो उनका नाम है दलित साहित्य।

दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है - "दलित साहित्य भाषावाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद को नकारने की कोशिश करता है और पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।"[1] उनके अनुसार दलित साहित्य 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:' के लोकहित सर्वोदय की कामना करने वाला साहित्य है। दलित साहित्य के इस लक्ष्यपूर्ती केलिए साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से सवर्ण समाज को अपने किए हुए कर्मों पर एक बार पुन: संशोधित करने केलिए बाध्य बनाकर एक नए समाज की सृष्टि की कामना करता है।

इस प्रकार की अनेक परिभाषाओं से ही व्यक्त है कि दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र दूसरी साहित्य विधाओं से बिलकुल अलग है। दलित साहित्य में व्याप्त नकार एवं विद्रोह भावना से जन्म क्रांतिकारी मानसिकता को ही दलित साहित्यकारों ने सौंदर्यशास्त्र के रूप में चुना है। परंपरागत साहित्यिक नियमों एवं सामाजिक रूढ़ियों के बदलाव की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए शरणकुमार लिंबाले का मानना है - "काल्पनिक सत्य, काल्पनिक शिव, काल्पनिक सोंदर्य ये सब मूर्खता

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.15

की बातें हैं। विश्व में मनुष्य जैसी 'सत्य और सुन्दर' दूसरी कोई चीज़ नहीं है। इसलिए तो मनुष्य में समता, स्वतन्त्रता, न्याय और बन्धुत्व की चर्चा होनी आवश्यक है। मेरे विचार में यही चर्चा दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की चर्चा होगी।"[1] यह एक गंभीर सच है कि समय के बदलाव के साथ सभी परंपरागत अवधारणाओं में बदलाव आना चाहिए।

यह बदलाव काल के अनुसार स्वयं दलित साहित्य में भी हुई है। समकालीन दलित साहित्य परिवर्तन, प्रगति को पार करते हुए घोर प्रतिरोध के दर्शन का साहित्य बन गए है। वर्तमान नीतियाँ जैसे उदारीकरण, भूमंडलीकरण एवं निजीकरण आदि ने समकालीन दलित समाज की अर्थव्यवस्था को बिगाडते रहे है। आज कल खुद राजनीतिज्ञ भी दलितों के अधिकारों के घातक बन गए है। दलित राजनीति की समस्याओं को विश्लेषित करते हुए राजकिशोर का मानना है - "मेरे विचार से देश के दो दुश्मनों से कामगारों को निपटना होगा। ये दो दुश्मन है, ब्रह्मणवाद और पूँजीवाद। आज तो इसके रूप में कुछ बदलाव आया है फिर भी समस्या वही है। इन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संघर्षों से निपटने केलिए दलित आजकल घोर विद्रोह के रास्तों को ही अपनाते है। इसलिए समकालीन दलित साहित्य संघर्षमयी साहित्य है।"[2]

---

[1] शरणकुमार निंबाले - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.31-32

[2] राजकिशोर - दलित राजनीति की समस्याएँ - पृ.39

समकालीन दलित साहित्य में आजकल दो धाराएँ आगे बढ़ रही है। एक है दलित साहित्य दूसरा है गैर दलित साहित्य। मूल रूप में दलितों द्वारा दलितों पर दलितों केलिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। महात्मा फुले ने स्पष्ट किया कि गुलामी की यातना जो सहता है, वही जानता है। राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नहीं। उसी तरह सहानुभूति प्रदर्शन दलित साहित्य का लक्ष्य नहीं बल्कि दलित समाज के उत्पीड़न भरी गाथा के प्रस्तीकरण से दलितों को अपनी अस्मिता एवं अधिकारों केलिए परिवर्तन एवं घोर विद्रोह की राह दिखाना और सवर्ण समाज को सामाजिक वृद्धि केलिए दलित समाज की उन्नति की आवश्यकता को ठीक ढंग से समझाना साथ-ही -साथ समाज के द्वारा निम्नवर्गों पर किए जा रहे कुकर्मों पर पुनः उन्हें सोचने केलिए बाध्य बनाना आदि समकालीन दलित साहित्य का लक्ष्य है। यह लक्ष्य की सही प्राप्ति सहानुभूति से संभव नहीं इसलिए दलित साहित्य स्वानुभूति की उपज होना ही ठीक है।

<u>4.7. हिन्दी दलित साहित्य</u>

हिन्दी में दलित साहित्य की प्रस्तुति सिद्धनाथों के समय से ही रहा है। उस समय के साहित्य में 'भेदभाव का निवारण' पर ज़ोर देता था तो संतों की वाणियों में 'जाति-पाँति के प्रति निन्द' भी दर्शित है। लेकिन दलित साहित्य की चर्चा आज जिस अर्थ में किया जा रहा है उसका आरंभ हिन्दी दलित साहित्य में अंबेडकरीय मराठी दलित

साहित्य की देन से ही हुआ है। सन् 1914 में सरस्वती पत्रिका में हीरा डोम द्वारा 'अछूत की शिकायत' नामक कविता का प्रकाशन हुआ। इन्हें ही हिन्दी के प्रथम दलित कवि के रूप में माना जाता है। क्योंकि इसमें दलितों की शिकायत का साथ-साथ शोषण की व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी प्रकट किया गया है।

हिन्दी में दलित साहित्य के लेखनी के प्रारंभ की व्याख्या करते हुए श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है - "सातवें दशक में शिक्षित होकर कार्यक्षेत्र में उतरे दलित लेखकों की जद्दोजहद और संघर्ष ने हिन्दी दलित साहित्य की भूमिका तैयार की थी।"[1] यह हिन्दी में दलित साहित्य नामक एक नए विमर्शीय साहित्य के पनपने का अनुकूल वातावरण साबित हुआ। इस प्रकार विकसित हुई यह विमर्शीय साहित्य आज कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि सभी धाराओं में अपनी स्वानुभूति का दर्शन कराकर समाज के प्रति तीव्र विद्रोह प्रदर्शित कर रहे है।

4.8. दलित कहानी

कविता से आरंभित हुई हिन्दी दलित की साहित्यिक धारा कहानी की ओर उन्मुख होने में भी अधिक देर नहीं लगी थी। प्रारंभ

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.20

में इन दलित कहानियों के प्रकाशन में बाधा उत्पन्न हुई क्योंकि किसी भी सवर्ण मानसिकता के संपादक की पत्रिका में इसको स्थान मिलना तो असंभव था। हिन्दी दलित कहानी का समकालीन क्षेत्र तो आठवें दशक में प्रज्ज्वल बने थे। इस समय में दलित कहानी, कहानी आन्दोलनों से अलग होकर अपने लिए एक विशिष्ट भूमि के निर्माण पर थे। इसके फलस्वरूप नवें दशक में दलित कहानी का विशिष्ट रूप सामने आने लगे थे। दलित रचनाकारों को सर्वप्रथम हिन्दी में 'हंस' जो राजेन्द्र यादव के संपादकत्व में चल रहा था उसी ने एक अवसर दिया था। इसके बाद लोकमत, समाचार, युद्धरत आम आदमी, संचेतना, वसुधा, पश्यन्ती, कथानक, इण्डिया टुडे, कल केलिए, दस्तक, उत्तर प्रदेश, प्रज्ञा साहित्य आदि ने दलित कहानियाँ प्रकाशित की। नवें दशक के प्रमुख रचनाकार हैं ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, रयौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, डॉ.सुशीला टाकभौरे । इनकी रचनाएँ पहले हंस में ही प्रकाशित हुए थे। समकालीन समय में भी समाज की व्यथा कथा को जनता के सामने तक पहूँचा कर उनके मन में सामाजिक क्रांति की आग जलाने में इन साहित्यकारों का श्रम प्रज्ज्वल है।

<u>4.9. समकालीन दलित समाज की चुनौतियाँ</u>

आधुनिक शिक्षा एवं क्रांतिकारी चेतना से युक्त अम्बेडकरीय सोच ने भारत की वर्णव्यवस्था को ज़रूर हिला दिया था। लेकिन

भारतीय संविधान के लागू होने के इतने दशकों बाद अभी भी दलित समाज अनेक चुनौतियों के खेरे में बाँधे है। वैज्ञानिक प्रगति एवं दूसरे ग्रहों में भी अपनी अधिकार को स्थापित किए समकालीन मनुष्य आज भी अनुसूचित जाति के वृद्धि के खिलाफ है।

आज भी 165 करोड आनेवाली दलितों के रोज़गार के प्राथमिक क्षेत्र कृषि है। इनमें अधिकांश दलित भूमिहीन कृषि मज़दूर के रूप में अपना जीवन-यापन कर रहे हैं। इसलिए इनमें 37 प्रतिशत लोग आज भी गरीबी के घेरे में है। अनेक प्रावधानों के ठीक तरह लागू न होने के कारण इसमें 45 प्रतिशत लोग आज भी निरक्षर है। गंभीर गरीबी के कारण 83 प्रतिशत लोगों से जन्म लेने वाले 1000 बच्चे अपने पहले जन्मदिवस तक नहीं मनाया जाता। इस प्रकार इन लोगों के प्रति समाज की जो रवैया है अनेक प्रमाणों के द्वारा यह भी साबित होता है कि इनमें भी खास बदलाव नहीं आया है। ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता से संबंधित 2001-2002 में हुए एक सर्वेक्षण के दौरान 11 राज्यों के 565 जिलों से प्राप्त जानकारी बहुत ही चिंताजनक है। इसमें 19 प्रतिशत गाँव में दलितों को नए कपड़े पहनने की अनुमति नहीं है। 10 से 17 प्रतिशत गाँव तो ऐसा है जहाँ वे चप्पल और चश्मा भी नहीं पहन सकते।

पुनर्वास के कार्यक्रमों में भी दलितों के साथ भेदभाव आज हो रहा है। 2004 ई.में आई सुनामी आपदा में तमिलनाडु के नागपट्टणम एवं अन्य जिलों के राहत शिविरों से दलितों को खदेडा गया था। सामाजिक घृणा का यह भयावह रूप जो प्राकृतिक आपदाओं के समय भी उन्हें पीछा नहीं छोड़ती है।

इन लोगों को आगे बढ़ाने केलिए संविधान ने जो आरक्षण की नीति अपनाई थी उन नियमों का आज जानबूझकर अवहेलना की जा रही है। जो भी इस आरक्षण के ज़रिए आगे आते हैं तो उसे अनेक प्रकार की यातनाओं का शिकार केवल अनुसूचित जाति के होने के कारण भुगतना पड़ता है।

आज के नवउपनिवेशवाद का दौर तो दलित गुलामी के एक नए अध्याय के रचयिता ही है। इस अवसर को लेकर कृष्णदत्त पालीवाल का मंतव्य है - "धर्म का स्थान साम्प्रदायिक ताकतों को मिल गया है और ईश्वर-उपासना-भक्ति पूजा का स्थान - फाइवस्टार कल्चर फार्महाउस के भीतर बाहर फैला उपभोक्तावादी माफिया तंत्र का मायावाद, हिंसा, अपहरण को दलित सन्दर्भों में जो बात और महत्त्वपूर्ण बात अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले, भगवान दास, दया पवार, प्रकाश लुइस,कांचा ऐलय्या, डी आर नागराज आदि ने कही थी उसका गला दबा दिया गया है। हमारे यहाँ धार्मिक आधार पर जो गोलबन्दी

राजनीति में चल रही है और उसमें जातिवाद का गरम मसाला ज़ोरों से डाला जा रहा है, वह दलितों केलिए हानिकार है।"[1] असल में वर्चस्ववादी सत्ता की संरचनाएँ जिस विकट-विकृत स्थिति को जन्म दे रही है उसका सबसे बड़ा नुकसान दलित समाज को है।

आज सब जगह मीडिया की बोल-बाला चल रहा है। लेकिन इस क्षेत्र में दलितों की भागीदारी काफी सीमित है और जो है भी वह निजी संबंधों का मोहताज होती है। इन परिस्थितियों में भारतीय मीडिया का चरित्र मनुवादी बना हुआ है।

इस प्रकार दलितों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक क्षेत्र की स्थिति कमज़ोर होने से दलितों के उत्पीड़न की परंपरा आज भी ज़ारी है। सक्रिय पत्रकार नीलम गुप्ता अपने लेख 'कानूनों और कार्यक्रमों के बावजूद' में दलित उत्पीड़न से संबंधित घटनाओं की कुछ आँकड़े प्रस्तुत करती है - "देश भर में 1955 में 180, 56 में 481, 57 में 492, 58 में 489, 68-69 में 1908, 69-7- में 2522, 1977 में 10859, 78 में 15041, 79 में 13832, 80 में 13727, 81 में 14151, 82 में 14996, 83 में 14818, 84 में 16573, 85 में 16011, 86 में 15416, 89 में 15799, 1990 में 17735, 91 में 18575, 92 में 18925 तथा 1993 के पहले दो महीनों में 1943

[1] कृष्णदत्त पालीवाल - दलित साहित्य बुनियादी सरोकार - पृ.92

वारदातें दलित शोषण की दर्ज की गयी थी।"[1] आज तो हर 18 मिनिट में दलितों पर कोई हिंसक कार्य होता है। हर हफ्ते में लगभग 6 दलित लापता होते है। हर हफ्ते में कम से कम 3 दलित स्त्रियों को बलात्कार का शिकार होना पड़ता है। हर हफ्ते में 13 दलित को विभिन्न कारणों से मार दिया जाता है। दलित स्थिति की इस प्रकार गिरावट का मुख्य कारण उनकी निम्न सामाजिक स्थिति, अशिक्षण आत्मनिर्भरता का अभाव है।

समकालीन दलित साहित्यकार समाज की इन चुनौतियों को समझकर उससे समाज को निपटाने केलिए लेखन द्वारा बहुत बढ़िया कर्म निभा रहा है। समकालीन समस्याओं के प्रति स्वयं दलित कहानीकार मुठभेड़ करके सर्जनात्मक, आक्रोशित स्वर को यथार्थ की भूमि पर खड़ा करके बदलाव के नये आयाम स्थापित किये है। समकालीन दलित कहानी की व्याख्या करते हुए प्रख्यात लेखिका रमणिका गुप्ता कहती है- "पर अब उसके तेवर बदल गये हैं, आज पीड़ा हैं तो गुस्सा भी है और परिवर्तन की ललक भी है और है बर्बरता के विरोध की चेतना, विवशता, अनन्त धैर्य, सहनशीलता और धैर्यपूर्वक पीड़ा सहने से आगे बढ़ गई दलित कहानी, इसलिए उसने विरोध की भाषा अपना ली और अपनी कलम खुद गढ़ने अपने कागज़ खुद तैयार करने का संकल्प ले लिया, ताकि अपना निर्णय खुद ले

[1] सं. राजकिशोर - हरिजन से दलित - पृ.50

सके - ‘अप्प दीपोभव बन सके - अपने दुःख को पहचान सके और उससे मुक्ति का रास्ता भी खु’द ही निकाले। उसे किसी ‘अवतार’ का इन्तज़ार नहीं है। अब ! बाबा साहब की बाईस प्रतिज्ञाएँ उसके भीतर अवतरित हो रही है।”[1] इसलिए कह सकते है कि समकालीन दलित कहानी समाज के विकृत, कुत्सित, घृणित अन्यायी रूप का नंगा तस्वीर है।

4.10. <u>समकालीन दलित कहानियों में चित्रित दलित जीवन</u>

समकालीन दलित कहानी दलित वर्ग का एक खुला दस्तावेज़ है। इसका मुख्य कारण दलित साहित्य के रचयिता के रूप में स्वयं दलित वर्ग का आगमन ही है। इसके फलस्वरूप दलित कहानियों में सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में सदियों से इस वर्ग को जिन-जिन क्रूरताओं का शिकार होना पड़ा है उसका एक उज्ज्वल चित्रण इन दलित कहानियों में हम देख सकते है। इस प्रकार अपने वर्ग के ऊपर हो रहे विभिन्न शोषणों का व्यक्त चित्रण करके अपने वर्ग के स्वत्वबोध को जगाना समकालीन दलित लेखन का लक्ष्य है।

4.10.1. सामाजित समस्याएँ

भारत की सामाजिक संरचना वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत आने के कारण प्राचीन काल से ही दलित समाज का सामाजिक जीवन

---

[1] सं.रमणिका गुप्ता - दलित कहानी संचयन - पृ.44-45

अत्यन्त दु:खमयी है। वर्ण और जाति के चक्रव्यूह में पड़कर आज भी दलित समाज शोषित होते है। मोहनदास नैमिशराय की 'दर्द' नामक कहानी इसका एक प्रमाण है। इस कहानी के प्रमुख पात्र हरभजन एक दलित परिवार का हिस्सा है। वह एक ऑफीस में अपनी बाबूजी की मृत्यु के उपरांत मिले उनका काम यानी चपरासी है। उसको वहाँ काम करते दस साल हो गए। इस वर्ष के बीच उनकी पदोन्नति तो होना था। लेकिन इस बार मुख्यालय से उनकी पदोन्नति के पत्र भेजने की खबर भी उन्हें मिला था। लेकिन ऑफीस में इसके बारे में वह पूँछा तो उसके बाबू ने उत्तर दिया कि - "उसने घृणा के स्वर में कहा था, हर भजन मेरे जीते जी तू इस ऑफिस में बाबू नहीं बन सकता। चपरासीगिरी कर और अपने बच्चों को पाल।"[1] इस उत्तर सुनकर वह घर आकर मौत का शिकार हो जाता है।

सूरजपाल चौहान की एक कहानी है 'बस्ती के लोग'। इस कहानी में भी प्रत्यक्ष रूप में समाज में मौज़ूद जातिवाद की रूढ़िग्रस्त व्यवस्था को ही कहानीकार ने दर्शाया है। इस कहानी के मुख्य पात्र नन्द के पिता सुमरू की मृत्यु के खबर सुनकर वह गाँव आते है तो पता चलता है कि उनके पिता की आत्मशान्ति के कर्म को निपटाने केलिए वहाँ के लोगों को उसी वक्त ही शराब और सुअर के पके माँस

---

[1] मोहनदास नैमिशराय - दर्द - पुन्नीसिंह, कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा (सं.) - भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य - पृ.214

लाकर देना पडेगा वह इनके नशे के साथ संगीत यानी फिल्मी गीतों के तर्ज पर माते की भेटें गाने में लगे रहेंगे। नन्दु इससे सहमत नहीं होते तो उनके भाई बिरज किशोर पढ़े लिखे होते हुए भी इस शोर शराबे केलिए रासी हो जाते है। अंत में बस्ती के लोग कहते है कि - “बेटा विरजू, तू ने मेरी आत्मा को शांति प्रदान की है, इस नन्दु ने तो बस्ती के भाईयों की बात न मानकर मुझे नरक में ढकेलने का पूरा प्रबन्ध कर लिया था, बेटा तू जीवन में खूब फलेगा और फूलेगा ..... मैं अब बहुत खुश हूँ।... भई, सिब्बू के सिर सुमरू आ लियौ।”[1] वे दोनों भाई जानते है कि यह सब ढकोसला और पाखण्ड है लेकिन पूरी समाज इसके खेरे में आज भी है। इस तरह की एक कहानी है ओमप्रकाश वाल्मीकि की ‘सलाम’। इस कहानी में भी परंपरा के रूप में समाज में चले आ रहे रीति रिवाज़ के पीछे के शोषण को ही व्यक्त करता है। कहानी के हरीश इस परंपरा को व्यर्थ बताया तो ससुर जुम्मन ने ज़ोर देकर कहा “दामाद हो या नई नवेली दुल्हन ‘सलाम’ केलिए घर-घर जाने की रिवाज़ है, तो हमने नहीं पुरखों ने ही बनाया था। जिसे इस तरह छोड़ देना ठीक नहीं है गाँव में रहना है। दस ज़रूरतें हैं।”[2] उत्तर देकर हरीश ने तीखे शब्दों में कहा “आप चाहे जो समझें.... मैं इस रिवाज़ को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता

---

[1] सूरजपाल चौहान - बस्ती के लोग (सं. पुन्नीसिंह, कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा) - भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य - पृ.242

[2] ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाह - पृ.17

हूँ। यह सलाम की रस्म बंद होनी चाहिए।"[1] इस प्रकार के अनेक सामाजिक साजिशों को व्यक्त करते हुए समकालीन दलित कहानीकार स्वयं अपने समाज से पूछते हैं कि स्वयं अपने समाज को इस प्रकार रूढ़ियुक्त बनाऐंगे तो हमारी वृद्धि कैसे होगा। आज भी यह साजिश असल में ज़ोरों पर है।

4.10.2. धार्मिक समस्याएँ

भारतीय समाज में धर्म का स्थान आज भी प्रज्ज्वल है। इसके जंजीरों से असल में कोई भी मुक्त नहीं है। समाज के निम्न श्रेणी के होने वाले यह दलित वर्ग सदियों से इस धार्मिक जाल में पड़कर उत्पीड़न का शिकार होते हैं।

सत्यप्रकाश की एक कहानी है 'इंकलाब ज़िन्दाबाद' इसमें अंग्रेज़ों की शासन समय और उसके खिलाफ भारतीय लड़ाई को ही दर्शाया है। इस लड़ाई में भाग ले रहे एक छोटे से पहाड़ी समूह को ही कहानी में प्रस्तुत की है। वे लोग एक योजना बनाते है कि कल हर सूरत में सरकारी स्कूल की इमारत पर तिरंगा फहरायेंगे। यह काम बथुआ नामक एक चमार के लड़के को सौंपा दिया जाता है। वह बहुत ही होशियार एवं वीर था फिर भी अपने ही गाँव के मुखिया सोचते है कि एक चमार इस में सफल हो जाएँगे तो हमें उसका गुलाम होना पडेगा

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाह - पृ.17

इसलिए अंग्रज़ों से मिलकर उसे मार दिया जाता है। भारत की धार्मिक कडुता का क्रूर चित्रण इस कहानी में है।

गाँव में बसने वाले निम्न धर्म के लोग असल में निरीह व्यक्ति है। वह झूठ बोलना पाप मानते है। वह वैज्ञानिक समाज के मन में बसे इस धार्मिक जंजीरों से पूरी तरह जानते नहीं। बी.एल नायर की 'चतुरी चमार की चाट' नामक कहानी में चतुरी सोचती है कि - "गाहक चौबे का ठोर हम - नए मनई का दिखी हैं। ता हमर बारे माँ ज़रूर पूछ-ताछ करिहैं। फिरि हम का कहिबे। अपन जाति कब लग छिपाए रहिबे। एक-न-एक दिन भंडाफोड़ ज़रूर हइबे। तब हम का करिब। हम-सा ई झूठा काम ना होई।"[1] इसलिए वह नाम बदलकर चतुरी चमार की चार लिखवाती है लेकिन बदले में उसे समाज से घोर अपमान सहना पड़ता है।

जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'हाऊसिंग सोसइटी' भी धर्म का एक गहरा एवं तीव्र रंग को दर्शाने वाला है। विजय महतो रेलवे मंत्रालय में डिप्ती सेक्रेटरी का काम संभालने वाला है फिर भी वह एक सोसाइटी के सदस्य बनने की कोशिश में सालों में लगे हुए है। एक बार तो वह इस प्रयत्न में सफल होने वाला था तब सदस्य ने महतो नाम सुनकर वह कहते है - "बात यह है महतो जी कि सोसाइटी के

---

[1] बी.एल.नायर - चतुर चमार की चाट -(सं. रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन - पृ.133

सभी सदस्य स्टेटस वाले लोग है।.... मेरा मतलब है कि सब सदस्य उच्च जातियों के है, जबकि आप ....।"[1] समकालीन समाज भी स्टाटस का निर्धारण धर्म के बलबूते पर करने वाले गंभीर समस्या को लेखक यहाँ प्रस्तुत किया है।

अपनी ही जाति के निम्न जाति के प्रति दलित की रवैये को दर्शाने वाली कहानी है कर्मशील भारती की 'और रास्ता खुल गया'। इसके नायक स्वयं दलित वर्ग के है वह अपनी घर की मरम्मत करके अपनी घर में साफ हवा आने केलिए गली की ओर अपनी रास्ता खोलने केलिए सोचते है तो अपने ही वर्ग के लोग उसे कई प्रकार की धमकियाँ देते है। तब कहानीकार स्वयं पात्र के द्‌वारा समाज से पूँछते है - "एक चिन्ता रही कि एक पिछड़ी जाति का आदमी जिसका हिन्दु समाज और धर्म में कोई विशिष्ट स्थान, सम्मान नहीं है, जो हिन्दु वर्ण व्यवस्था में स्वयं चौथे नम्बर पर आता है, गुलाम है। वह दलित के संघर्ष की सराहना तो करने से रहा, उल्टे दलित को इस सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक लड़ाई में कमज़ोर करने में अपनी शान समझता है, बल्कि एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। और खुद गुलाम बना रहता है।"[2] इस प्रकार के चिन्तन के द्‌वारा समाज को सही राह दिखाना कहानीकार का लक्ष्य है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - हाऊसिंग सोसाइटी -खरोंच - पृ.45

[2] कर्मशील भारती -और रास्ता खुल गया -(सं.मुद्राराक्षस)- नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ - पृ.124

‘सपना’ नामक कहानी भी धार्मिक समानता के सपने को पूरे बनाने की एक कोशिश है।

शैयाराज सिंह बेचैन की ‘रावण’ नामक कहानी जातीय भय से अपनी जन्म भूमि छोड़कर जाने वाले युवकों से अनेक प्रश्न उड़ाता है कहानीकार पात्र जीतराम के द्‌वारा समाज से पूछते है - “तो तुम बाप दादा को जनम भूमि छोड़ पाओगे। अरे जब देश गुलाम हो तब तुम्हारी जात के लोग लात-गारिया खाइ-खाइ के गाम में पडे रहे। उन्होंने कभी गाँव छोड़ने की कल्पना तक नहीं करी और तुम इतने निर्मोही बनि रए हो।”[1] कहानीकार श्रेष्ठ रावण की कृदार निभाए वाल्मीकि मूलसिंह को समाज द्‌वारा ठुकराया जाने पर अपनी गाँव छोड़ना चाहते है। लेखक मूलसिंह के साथ सारे दलित समाज को निर्भय बनाने की कर्म निभाया है।

4.10.3. आर्थिक समस्याएँ

सामाजिक एवं धार्मिक पिछड़ेपन ने दलितों को गरीबी के भयंकर जरीरों में सदियों से दबाकर रखा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की एक कहानी है ‘शवयात्रा’। यह कहानी एक इतिहास नहीं है बल्कि जीवन संघर्ष की एक कटु सच्चाई है। कहानी के पात्र सुरजा का बेटा कल्लन अपनी आर्थिक कठिनाईयों को निपटाने केलिए शहर में काम

---

[1] श्यैराज सिंह बेचैन - रावण -भरोसे की बहन - पृ.64

करता है। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होने से वह गाँव आकर अपने घर को नया खडे करने के बारे में सोचकर उस केलिए सामान भी शहर से आते हैं लेकिन वहाँ के ज़्यादातर मकान के मालिक सूरत राम ठेकेदार का है उसका कहना है कि वह ज़मीन भी उनका है। लेकिन उसके कहने को मानने केलिए वह तैयार नहीं होते। गाँव के प्रधान बलराम सिंह सुरजा के नयी मकान बनाने की योजना सुनकर चीखे हुए कहता है "अंटी में चार पैसा आ गए तो अपनी औकात भूल गया, बल्हारों को यहाँ इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे..... वह ज़मीन जिस पर तुम रहते हो, हमारे बाप दादों की है। जिस हाल में हो .... रहते रहो.... किसी को एतराज नहीं होगा। सिर उठा के खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गाँव से बाहर कर देंगे।"[1] उन लोगों की बातों से न डरने वाले कल्लू को जब अपनी बेटी को बुखार तीव्र होने लगी तो पूरा गाँव उसकी सहायता करने केलिए तैयार नहीं होते। अंत में वह अपनी बेटी की शव को लेकर ही आगे बढ़ते है।

शैयाराज सिंह बेचैन की एक कहानी है 'शीतल के सपने'। इसमें भी मुख्यपात्र शीतल अत्यधिक होशियार लड़की होते हुए भी जातीय एवं आर्थिक पिछडेपन के शिकार हो जाती है अंत में उसके आगे बढ़ने

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि - शवयात्रा - (सं.मुद्राराक्षस)- नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ - पृ.25

की सपना सपना ही रह जाती है। रजत रानी मीनू की एक कहानी है 'फरमान'। इस कहानी के पात्र कर्मवीर चौधरी रामौतार सिंह के यहाँ पशु चराने का काम करता है एक दिन उनके साथ से एक भैंस लापता हो गया। सब लोग कहने लगे कि उन्होंने ही अपनी आर्थिक कठिनाईयों को दूर करने केलिए चुराई है वह उत्तर देते है - "हम भूखे मर सकते हैं, पर चोरी करनो नाय सीखो है। चोरी ही करते होते तो कबहू के महल खड़े होते हमारे। हम काए चुरावेंगे काऊ की भैंसिया।"[1] फिर भी अंत में उसे मौत की सज़ा ही मिलती है। सदियों से अपने परिवार की गरीबी को मिटाने के प्रयत्न कर रहे दलित समाज समकालीन वैज्ञानिक संस्कृति के खातिर खेतीबारी से अत्यधिक रूप से मज़दूर तो बन गया ही है। फिर भी धार्मिक चक्रव्यूह से वह मुक्त नहीं हुए जयप्रकाश कर्दम की एक कहानी है 'मज़दूर खाता' । इसके पात्र रामलाल अपनी पूरी कमाई एक बैंक में जमा किया है। अपनी बेटी की बीमारी की बात सुन कर वह उसे निकालना चाहा तो मैनेजर का कहना है निम्न जाति को शनिवार ही इंजेक्शन नियत है। फैक्टरी मालिक के पूछने पर भी मैनेजर का कहना है "ये लोग गन्दे रहते है। इनके कपड़े मैले - कुचैले और तेल-चीकट में सने होते हैं। इनके बैंक में होने से बाकी कस्टमर, जो साफ-सुथरे कपड़े पहनकर आते हैं, असहज महसूस करते है। इससे बैंक के बिजनेस पर प्रभाव पड़ता है।"[2]

---

[1] रजत रानी मीनू - फरमान - हम कौन है? - पृ.25

[2] जयप्रकाश कर्दम - मज़दूर रवाता - खरोंच - पृ.54

देश की वृद्धि केलिए निम्न वर्ग की भी भागीदारी को मानने वाले समाज इनको मानने केलिए आज भी तैयार नहीं।

4.10.4. शैक्षिक समस्याएँ

अनुसूचित समाज आर्थिक रूप से मूल रूप में पिछड़े होने से इनका शिक्षा क्षेत्र भी कमज़ोर है इसलिए ये लोग सदियों से पूँजीवादी समाज के खेरे में है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' इसका एक उत्तम प्रमाण है। इस कहानी में सुदीप के द्वारा अनपढ़, अज्ञात, अछूत कहे जाने वाले लोगों से यह कहलाने की कोशिश की है कि पच्चीस चौका सौ हुए... डेढ़ सौ नहीं। इस कहानी के द्वारा जिन्होंने भी शोषित वर्गों को पच्चीस चौका डेढ़ सौ का पाठ पढाया है उस साजिश को समझाते हुए शिक्षा के महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक शैक्षिक समाज पूरी तरह पाश्चातीय प्रभावों से खेरे हुए है। इस औपनिवेशिक शक्तियों के प्रभाव में पडकर निम्न एवं मध्यवर्गी अनुसूचित समाज भी अपने बच्चे को मॉडन बनाने की होट में लगे हुए है। इसलिए वे लोग कुछ भी करके अपने बच्चों की भरती मिशनरी स्कूलों में करा देते है। रजत रानी मीनू की 'हम कौन है ?' नामक कहानी समाज की इस विकृत समस्या को ही दर्शाता है। इस कहानी के पात्र उमा की छोटी बच्ची अजातिका से पहले ही दिन

मैडम पूछती है कि वॉट इस योर सरनेय ? उमा सोचती है - “आखिर ऐसे प्रश्न उसके जहन में डाले किसने ? क्या यह अंग्रेज़ी स्कूलों की पश्चिमी संस्कृति है या मनु-स्मृति काल की वापसी ?”[1] समाज कितनी भी वृद्धि को प्राप्त कर ले फिर भी दलित समाज को हर क्षेत्र में अपनी जाति के कारण उसे पीछे की ओर दफनाया जाता है। शिक्षा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है, शैयाराज सिंह बेचैन की ‘नॉन रिफंडेबल’ कहानी भी इसी अवस्था को ही दर्शाता है। कहानी के पात्र चंदन अंग्रेज़ी नॉन रिफंडेबल शब्द के पीछे छुपे अंग्रेज़ी शोषित नीतियों से अनभिज्ञ होकर अपने बच्चे को इस मिशनरी स्कूल में अटमिशन तो दिलाते है लेकिन कुछ ही दिन में वहाँ के पी.टी.सर ने बच्चे सूरज को स्कूल की सीढ़ियों से धक्का दिया। अगले दिन में निकले पत्र में एक छोटी सी खबर छपते है ‘बेटे के इलाज को पैसे जुटाने चला था, रास्ते में चल बसा।‘ अपनी और पूरे समाज की वृद्धि केलिए औपनिवेशिक गलत नीतियों का शिकार न होने की सलाह कहानीकार इसमें व्यक्त करते है।

शैक्षिक क्षेत्र में दलित समाज को जिन-जिन समस्याओं का शिकार होना पड रहा है उससे मुक्ति दिलाने केलिए सरकार ने आरक्षण की नीति तो लागू किया है फिर भी सवर्ण छात्र इस आरक्षण से जो भी पढने केलिए आते है उसे घुसपैठिये ही समझते हैं।

---

[1] रजत रानी मीनू - हम कौन है? - पृ.20

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिये' नामक कहानी इसका व्यक्त प्रमाण है। इस कहानी की शुरूआत भी मेडिकल कॉलेज में हुए दलित छात्रों की आत्महत्या से ही शुरू होते है। इस प्रकार की घटनाएँ निरंतर होते हुए भी समाज गूँगा है। क्योंकि इन लोगों का मानना है कि दलित वर्गों के पास प्रतिभा ही नहीं है। सवर्ण अध्यापक भी मानते है कि इन लोगों को अडमिशन देने से हमारी इन्स्टिट्यूशन की स्टेटस गिर जाएँगे। समाज की इस तरह की सोच से अपने को कमज़ोर मत समझने, साथ ही साथ आरक्षण की नीति को बचाये रखने केलिए कहानीकार सामाजिक कार्यकर्ता रमेश चौधरी के माध्यम से समाज से कहते है - "तुम लोगों को सिर्फ बड़े-बड़े प्रमोशन चाहिए, वे भी आरक्षण के भरोसे, बच्चों को स्कूल कॉलेज में एडमिशन भी कोटे से ही चाहिए। लेकिन इस कोटे को बचाए रखने केलिए जब कुछ करने की नौबत आती है तो समाज अपने असलियत को पहचानेंगे ऐसे डर में चुपचाप बैठते हैं।"[1] कहानीकार स्पष्ट शब्दों से व्यक्त करते है कि दलित समाज की वृद्धि केलिए आरक्षण की नीति अनिवार्य है। उसे हर कीमत पर बचाए रखना चाहिए। दयानन्द बटोही की 'सुरंग' कहानी भी इस शौक्षिक समस्या को ही चित्रित करता है। कहानी के प्रमुख पात्र को आरक्षण की सुविधा एवं ऊँचे अंग होते हुए भी उसे रिसर्च केलिए एडमिशन नहीं मिलता लेकिन वह सोचती है "मैं जानता हूँ, मुझे बराबर उलाहना-परतना लोग देते रहे है, गोया कि मैं आदमी न

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये - पृ.14

होकर अन्य जीव हूँ। फिर भी मैं हार नहीं माना हूँ, ना ही मान रहा हूँ, क्योंकि मुझे मालूम है कि मुझे अभी तनिक सा परिश्रम नहीं, बल्कि अभी भी तो ढेर सारे संघर्ष मुझे करने है।"[1] लेखक ने अपने इस वक्तव्यों की तहत पूरे दलित समाज को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाने की कोशिश की है।

4.10.5. राजनीतिक समस्याएँ

भारतीय संविधान ने दलित समाज को समृद्धि का एक राह दिखाते हुए ही आरक्षण की नीति अपनायी थी। लेकिन ऊँचे राजनीतिक क्षेत्र आज भी सवर्ण समाज के घेरे में है। इसलिए वे लोग झूठे एस.सी.एस.टी की जातीय कागज़ात बनाकर ऊँची नौकरियों पर अपनी पिछली पीढ़ियों की तरह कब्जा कायम रखते है। इस प्रकार के अनेक वर्णन समकालीन दलित कहानियों में भी देखने केलिए मिलते है। रजत रानी मीनू की 'गिरोह' नामक कहानी में राजबहादूर नामक पात्र कहते है "हम लोग एस.सी.एस.टी. या ओ.बी.सी के सर्टिफिकेट्स बनवा लेते है, फिर देखते है, हमें कैसे नौकरी नहीं मिलती ? कम परिश्रम, पूरी सुविधाएँ, ऊपर से रियायतों .... मेरे सगे चाचा लखीमपुर में सदर एस.डी.एम है। हमारा सीधा एस.डी.एम का प्रमाणपत्र होगा तब किसी को शक भी नहीं होगा कि ये फर्जी है और एक रहस्य मैं

---

[1] दयानन्द बटोही - सुरंग-(सं. रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन - पृ.151

आज तुम लोगों का हौसला बढ़ाने केलिए बता रहा हूँ। हमें डरने की कोई ज़रूरत नहीं हैं, उनको फर्जी सर्टिफिकेट की वजह से बहुत जल्दी नौकरी मिल गयी थी। असली एस.सी. के तो अफसर भी कम ही होते हैं, जो होते भी हैं, वह कानून को गुलाम भर होते है और दब्बू। हृदयहीन मशीन की तरह काम करते है। ये लोग अपने वर्ग का तो जायज काम भी नहीं कर पाते।”[1] कहानियों में चित्रित यह दशा आज भी समाज में मौजूद है। शौयाराज सिंह बेचैन की ‘होनहार बच्चे’ नामक कहानी में भी इसी राजनीतिक षढ्यंत्र को ही पेश किया है। इस कहानी के पात्र प्रोफेसर सदानन्द तिवारी अपने बेटे गोविन्द को दलित धीरू से अडोप्ट कराते उसे उसके बाप का दर्जा देकर अनुसूचित जाति के सेर्टिफिकेट बना दिया जाता है। जब उसकी शादी एक ब्राह्मणी से होती है तब भी प्रमाण पत्र के अनुसार दुल्हा दलित जाति के होने से दुल्हिन को भी इसी आरक्षण से ऊँची नौकरी प्राप्त होते है। यह समाज की सच्चाई है। पूँजीपतियों के हाथों में बंध आज की राजनीति क्षेत्र इस सच्चाई को जानते हुए भी इससे आँखें हटाते है। अपने अधिकारों को बनाए रखने केलिए दलित समाज को राजनीति एवं समाज के उन्नत क्षेत्रों में अपना कब्जा बनाना ही पडेगा। यही इस प्रश्न के हल है।

---

[1] रजत रानी मीनू - गिरोह - हम कौन है? - पृ.120

4.11. समकालीन दलित कहानी में अस्मिता बोध

पीढ़ि-दर-पीढ़ि दलित समाज अपने इस जातीय जंजीरों से छुटकारा पाकर सवर्ण समाज में अपने स्वत्व को बनाए रखने में संघर्षरत थे। लेकिन वह पूर्ण रूप से इसमें सफल न हो पाने के कारण इस औपनिवेशिक दौर में वह अपनी पहचान को छिपाकर अपने अस्तित्व को बरकरार रखने की कोशिश में है। सदा इस परिश्रम में लगे रहने वाले दलित अपने परिवार या समुदाय की वृद्धि में असल में बाधा ही बनते है, सूरज पाल चौहान की 'नया ब्राहमण' कहानी के मंगलू इसका एक जीवन्त प्रमाण है। सरकार द्वारा 'आरक्षण कोटा रोस्टर' भरने के अभियान में उसकी नौकरी लग जाने से बहुत ही जल्दी वह अनेक सुख सुविधा के हकदार हो जाते हैं। तब से वह एक ब्रहमण की होट में लगे रहते है वह उनके तौर तरीकों को अपनाकर अपना नाम भी मंगलू राम वाल्मीकि एस.एम.आर.बाली रखते है। वह पॉश कॉलोनी में एक मकान लेते है वह चाहते थे कि उससे मिलने केलिए गाँव से कोई भी ना आए। एक बार उसकी माँ आयी तो उससे कहते है कि - "अरी अम्मा, कैसी रखै तू भंगन - सी ठीक से रहा कर अफसर की माँ जैसी।"[1] वह अपनी पत्नी को भी झूठ बोलकर तलाक के कागज़ भी सैन करवा देते है। ऐसी ही एक कहानी है ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'दिनेशपाल जाटक उर्फ दिग्दर्शन'। कहानी के पात्र दिनेशपाल पत्रकार है वह योग्य होते हुए भी उसे ऊँचे पद इस क्षेत्र में

---

[1] सूरजपाल चौहान - नया ब्राहमण - पृ.63

नहीं हासिल होते। इस क्षेत्र में आरक्षण न होना भी इसका एक कारण है। अंत में वह अपना नाम बदलकर दिग्दर्शन रखकर एक ओर पत्र की संस्था में ऊँचे पद की नौकरी केलिए कोशिश करते है। वह अपनी कोशिश में सफल भी होते है अंत में समाज जिस खबर को चाहते है उसी के निर्माता भी वह हो जाते है। शैयाराज सिंह बेचैन की एक कहानी है 'ओल्डएज होम'। आज के समाज में सवर्ण मानसिकता की तहत अपने को भी स्टाटस युक्त मानने केलिए अपने माता-पिता को ओल्डएज होम में भेजना आज की एक फैशन हो गया है। लेकिन इस ओल्डएज होम में भी अपनी जातीयता के कारण अपने स्वत्वबोध को बनाए रखने में संघर्षरत मानव का चित्रण कहानीकार ने दर्शाया है। पिता अपनी डेयरी में लिखते हैं - "आज तो देश की आज़ादी का दिन है। आज आश्रम में झंडा फहराया गया। तय था कि जो सबसे सीनियर सिटीज़न होगा वही झंडा फहराएगा। सो वह तो मैं ही था। पर चूँकि जाति जाहिर हो चुकी थी। इसलिए झंडा फहराने की तो नौबत ही नहीं आयी। बल्कि आज मुझे प्रसाद भी दूर ही से पकड़ाया गया था। आज देश की आज़ादी मुझ अछूत की गुलामी सी क्यों महसूस हुई ? आज़ादी के मायने मेरे लिए केवल इतने हुए कि मुझे ऐसा आज़ाद किया कि बहिष्कृत कर दिया। कौन मानेगा कि इन बूढ़ों में जातिभेद सबसे ज़्यादा होता है। अब मैं आज़ाद हूँ। सम्मान से, सहयोग से, घर से, बच्चों से, बस में मेरी हाड माँस की मेरी एक देह बाकी है। उड़नातुर प्राण पखेरुओं से आज़ाद होने केलिए। दोनों

हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ। ईश्वर ऐसी आज़ादी कभी किसी को न दे। कल तो सफाई करनेवाली मेरी बेटी जैसी चंदा ने भी गोश्त लाने वाले सोनकर के कहने पर मेरे वर्तन साफ करने से इन्कार कर दिया था। अब यहाँ के लोगों का प्यार, बहिष्कार में बदल गया है। यह ओल्डएज होम कम कैदखाना ज़्यादा हो गया है ?"[1] समाज में अपने अस्तित्व को बनाने की होट में पुत्र तेजगुलाम अपनी माँ और पिता को भी हमेशा केलिए खो देते है। सत्यप्रकाश के 'दलित ब्राह्मण', सूरजपाल चौहान की 'बदबू', जयप्रकाश कर्दम की 'खरोंच' आदि अनेक कहानियाँ दलित वर्ग के अस्तित्व संघर्ष से भरा हुआ है।

<u>4.12. समकालीन दलित कहानी में विद्रोह के स्वर</u>

अपने वर्ग के ऊपर हो रहे विभिन्न अत्याचारों के प्रति आज दलित समाज खुले आम विद्रोह कर रहे है। साहित्य भी इस विद्रोही स्वर से अछूता नहीं है। सुशीला टाकभौरे की 'बदला' नामक कहानी में समाज के इस प्रकार के बदलाव को ही दर्शाया है। इस कहानी के प्रमुख पात्र कल्लु एक छोटा बच्चा है, वह हरिजन भी है। उसने एक दिन कुछ सवर्ण लड़कों को मारा। इसके बदले में वे लोग बदला लेने केलिए आए तो कल्लू के पूरा परिवार सवर्ण के धमकियों के उत्तर देने केलिए तैयार हुए। इस परिवार के सदस्य छौआ मां कहने लगी - "अब हम किसी से नहीं डरेंगे।... हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे।... वे

---
[1] श्यैराज सिंह बेचैन - ओल्डएज होम -भरोसे की बहन - पृ.30

शेर हैं तो हम सवाशेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसा आयेंगे कि लोग हमसे डरेंगे? मेरे कल्लू इसी गाँव में रहेगो, शेर बनकर।"[1] बदलने की भावना लेकर आत्मविश्वास से जीने के लिए संघर्ष की राह दिखाना कहानी का उद्‌देश्य है।

सूरजपाल चौहान की 'साजिश' नामक कहानी सभ्य समझने वाले समाज की दलितों के ऊपर किए जा रहे साजिशों का खुला तस्वीर है। कहानी के पात्र नत्थु अपनी वृद्‌धि केलिए एक लोन लेकर एक मेटाडोर खरीदना चाहता है। इसके लिए वह बैंक मैनेजर रामसहाय के पास आने पर वह इसके बदले पिगरी फार्म खोलने की सलाह देते है। उसके जाने के बाद रामसहाय हैडक्लर्क सतीश भारद्‌वार से कहते है "भविष्य में ध्यान रखना कि कोई भी अछूत वर्ग का युवा अपना धन्धा शुरू करने केलिए बैंक से कर्ज़ा हेतु प्रार्थना-पत्र भरकर देता है, तो उसे उसके पैतृक-धन्धे में ही लगने हेतु प्रेरित करना है। उसे ऐसा विश्वास दिलाओ कि यह अपना पैतृक धन्धा छोड़कर दूसरे धन्धों की कल्पना भी न करें।"[2] नत्थु इस साजिश से अज्ञ थे लेकिन उसके पत्नी शान्ता समझदार होने से वह इस साजिश को समझ गयी तो वे लोग खुले आम संघर्ष करके अपना हक उनसे खीझने में सफल भी होते है। रत्नकुमार सांभरिया के 'बकरी के दो बच्चे', जयप्रकाश कर्दम

---

[1] सुशाली टाकभौरे - बदला -संघर्ष - पृ.63

[2] सूरजपालचौहान- साजिश- (सं.रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन - पृ.68

की ‘सूरज’ नामक पात्र भी समाज के इस घोर जंजीरों के प्रति विद्रोह के रास्ता को अपनाने की सलाह ही देते है।

4.13. समकालीन दलित कहानी में नारी

समाज में आज भी दलित, दलित ही है। जबकि दलित नारी की हैसियत दलितों में भी नीच है। दलित स्त्री को समाज में आगे बढ़ने केलिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दलित स्त्री के जीवन में शिक्षित होने केलिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आनेवाली कठिनाइयों से जूझना, आर्थिक सफलता केलिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, दलित स्त्री होने से घर और बाहर होनेवाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तिहरी मार को झेलते हुए उसे आगे बढ़ने होते है। दलित महिला के शोषण और गैर-दलित महिला के शोषण में काफी अंतर है। दलित महिला का शोषण तिहरे रूप में हो रहा है; अस्पृश्यता की तपिश गरीबी और पितृसत्ता की मार को एकसाथ झेलती है जबकि गैर-दलित गरीब महिला आर्थिक और यौन शोषण को झेलती है। दलित स्त्रियों की इस दर्दभरी दास्तान को आज कल स्वयं दलित नारी ही वाणी दे रही है। समकालीन दलित स्त्री लेखन केवल व्यक्तिगत अनुभवों का ही बयान नहीं करती बल्कि वह उसके सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों को उजागर करके एक समतामूलक समाज के उद्भव की

कामना के साथ अपने ऊपर हो रहे तीव्र शोषण के प्रति खुला विद्रोह भी प्रकट करती है।

दलित स्त्रियों के पिछडेपन का एक प्रमुख कारण है आर्थिक स्तर की कमज़ोरी। उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त निचले होने के कारण उसे हर जगह में अधिक हीन कामों को निपटाने केलिए रखा जाता है। इसलिए समाज भी इसी सोच को मज़बूत दे रहा है कि इस तरह के गन्दे काम सिर्फ इन्हीं केलिए है। इस तरह के नीच विश्वासों से समाज के दलित स्त्री समुदाय को बचाने के उद्देश्य से ही समकालीन दलित लेखिका डॉ.सुशीला टारभौंरे ने अनेक कहानियों का सृजन किया है इसमें एक है 'छौआ माँ'। इस कहानी के प्रमुख पात्र छौआ माँ साठ उम्र की एक औरत है, पूरे गाँव की बहु बेटियों के 'दाईपने' का काम वही संभालती है। उसकी बेटी तुलसा के लाख मना करने के बाद भी उसका कहना है कि "अपने पुश्तों-पूर्वजों का गाँव है .... आप नहीं संभाले तो कौन संभाले..... पिछली कई पीढ़ियों से गाँव का काम छौआ माँ के घर में है।"[1] उनकी इस मासूमियत का फाइदा लोग अक्सर उडाते रहते थे। लेकिन वह कुछ दिन केलिए बहन के घर में चले तो गाँववाले अपने इस काम केलिए तुलसा को ज़बरदस्ती लेकर चला। इस घटना पर छौआ माँ अपनी नाराज़ी व्यक्त की तो लोगों के वक्तव्य सुनकर वह अवांक रह गए - "तो का हो गओ

[1] सुशीला टाकभौरे - छौआ माँ -संघर्ष - पृ.62

?...जयकी का काम बेटी से करा ही लिये तो का हो गओ ?....वा क्यों नहीं करेगी तेरो। काम ? जो तू करती आई है, वह तेरी मोड़ी करेगी। जो तुमरो कर्म है वही तुमरो धरम है। कैसे नहीं करेगी वा ये काम ? तेरी मोड़ी का बामन-बनिया की छोरी है ?... गन्दगी उठाने के काम तुमरी जात के लोग ही करे है।"[1] आज भी निम्न दलित समाज इस जातिवाद के खेरे में बाँन्दे हुए है। पढ़े लिखे होते हुए भी तुलसा को समाज इस काम केलिए ज़बरदस्ती ले जाते है और आगे भी छौआ माँ पटैल के हुकुम से उस काम करने केलिए मज़बूर हो जाते है समकालीन दलित लेखिका समाज को इस मज़बूरी से निकलवाने केलिए घोर संघर्ष की आवश्यकता के ऊपर विचार करने केलिए पाठकों को बाध्य बनाया है।

नीची जाति की इस आर्थिक कठिनाई ने भूख के झंझीरों में उसके पीढ़ी दर पीढ़ी को बाँटकर रखा गया है। इससे स्वतंत्र होने के चक्कर में वह स्वयं शारीरिक शोषण की भी शिकार होते है। दलित प्रख्यात लेखिता डॉ.सी.बी.भारती की एक कथा है 'भूख'। यह भूड़सरटोला में बसने वाले आदिवासियों की दर्दभरी जीवन का दस्तावेज़ है। इसके प्रमुख पात्र किशनी जो फिरतों की जवान बेटी है, अभी-अभी शादी के बाद अपनी ससुराल केलिए विदा हुई। अपनी ससुराल को किशनी ऐसी ज़िन्दगी नहीं चाहती थी, जहाँ पेट की भूख

---

[1] सुशीला टाकभौरे - छौआ माँ -संघर्ष - पृ.63

मिटाने केलिए हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद भी भरपेट रोटियाँ मयस्सर न हो सकें और उसे पेट की क्षुधा मिटाने केलिए किसी गैर मर्द या गैर आदिवासी की वासना का शिकार होना पडे। इसलिए हर लड़की की तरह वह भी वहाँ से जाना चाहती थी। यद्यपि दूसरों के बिस्तर की शोभी बनना वहाँ के माहौल में बहुत साधारण-सी बात होती थी और मान-सम्मान, स्वाभिमान की परख का अवसर ही नही होता था, पेट की भूख मिटाने के आगे। पहले ठेकेदार, नेता, हाकिम, गैर आदिवासी थे तो अब जंगल में आए नए विकास ने नवधनाढ्य, व्यवसायी और अफॉसर आदि को शोषण के अलंबरदार बना दिया है। कहानी के पात्र किशनी कुछ दिनों केलिए अपनी माँ-बाप से मिलने आते है तो स्वयं उसके ससुर ने उसे गैर आदिवासी के हाथ अपने पेट की भूख केलिए बेच देती है। बदले में उसे पाँच सौ रुपये मिला था। उसको ढूँढते उसके पति मल्हु शहर से आते हैं तो वह इस ठाकुर के जाल से अपने बच्चों को छुडाते है लेकिन बीवी जब तक तो अपने बाप फिरतो की भूख की आग में दफ्न हो गई थी। ऐसी ही एक कहानी है कावेरी जी की 'सुमंगली'। यह भी स्त्री शोषण की एक गाथा है। इस के पात्र सुगिया आठ साल में ही ठेकेदार का रखैल का दर्जा उसे मिला। चौदह वर्ष की उम्र में वह उसके एक बेटे को जन्म देती है तो फटाफट ठेकेदार उसकी शादी वहाँ काम करने वाले दुखना से करवा देती है लेकिन अचानक दुखना और उसके बेटे की मृत्यु हो जाने से वह फिर उस ठेकेदार के हवस का शिकार बनाती छोडती है। तो अंत

में उसे एक मंगली नामक कुत्ते का साथ मिलती है। वह कहती है - "मंगली तुझमें और मुझमें क्या फ़र्क है। तू भी जीवन से हारी, मैं भी हारी। जिएँगे साथ, मरेंगे साथ, तेरे और मेरे दिल को समझने की कोशिश किसने की ? किसी ने तो नहीं।"[1] लेखिका कहना चाहती है कि हार ही जीवन में जीत की ओर ले जाती है। इसलिए दलित स्त्री शिक्षित होकर अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सफल होना है।

दलित समाज में लड़कियों को स्वतंत्र रूप से कुछ करने की इज़ासत नहीं है। शिक्षित होकर अपने स्वत्वबोध से समाज में जीने केलिए आज भी दलित स्त्री वर्ग बहुत संघर्षरत है। स्त्री की इस स्थिति के विश्लेषण करनेवाली एक दलित लेखिका है 'रजत रानी मीनू'। उसकी एक कहानी है 'वे दिन'। इस कहानी के पात्र अंजू पढ़ने में होशियार था लेकिन जब से वे दसवीं कक्षा में आयी तो उसकी शादी करवा दी गयी। फिर भी वह हर संघर्ष को सहती हुई हाईस्कूल की परीक्षा तक पास की लेकिन वह उसे भी आगे नहीं बढ़ पाए। दलित स्त्री अपने घर में भी पीड़ित हो रही है इसका प्रमाण देते हुए अंजू कहती है - "मेहनत से एक-एक रुपया बचा कर मैं ने घर चलाया। मन की आकांक्षाओं को हमेशा दबाये रखा। कभी कोई ख्वाहिश नहीं की, क्योंकि हमारे सिर पर बैंक का कर्ज था। जब मकान बन कर तैयार हो गया, बच्चे बड़े हो गये तो मुझे घर से ऐसे

---

[1] कावेरी - सुमंगली - (सं. रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन - पृ.120

निकाल दिया जैसे गाय-भैंस जब बच्चा और दूध देना बंद कर देती है तो उसकी उपयोगिता जैसे ही समाप्त हुई। किसान उसे कसाई को बेच देता है या यूँ ही भूख प्यास से खपने केलिए खुली छोड़ देता है। जब तक काम की थी, खूब टहल की जाती। उसकी दृष्टि में भी अब ....।"[1] घर में दलित नारी को पति का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं भावात्मक शोषण का शिकार होना पड रहा है। सवर्ण ब्राह्मणी एवं शहरी तौर-तरीकों को अपना कर दलित पुरुष भी अपने संस्कार या आनेवाले अपनी पीढ़ि की चिन्ता किए बिना अपने ही वर्ग के शोषक बनते है। उन सब को होशियार बनाना लेखिका की मकसद है।

आज की नारी अपने ऊपर हो रहे कोई भी अन्याय को सहने केलिए तैयार नहीं है। वह हर तरह की जंजीरों से मुक्ति चाहती है। सुशीला टाकभौरे की एक और कहानी है 'दमदार'। इस कहानी के पात्र सुमन कंजन जाति की महिला है। इस जाति की महिलाएँ बहुत ही साहसी एवं ताकतवर है यानी जंगलों में भी भटककर शिकार करनेवाली है। वह अपने पति के रहते हुए उसके जेल जाने पर कई पुरुषों से संबंध रखती है। वह वहाँ की जग्गू नामक एक पहलवान के साथ भी अपना संबंध जोड़ती है एक बार उसने उसे बाज़ार में मारने की कोशिश की तो सुमन के मन में बहुत गुस्सा आया, वह बोलने लगी कि - "तू मुझे, भरे बाज़ार में, कमज़ोर औरत समझकर, बाल

---

[1] रजत रानी मीनू -वे दिन -हम कौन है? - पृ.44

पकड़कर मारेगा ?...जग्गू के आगे बढ़े हाथ को सुमन ने एक ही झटके में अपनी तरफ खींचकर उसे ज़मीन पर गिरा दिया.... उसने जग्गू की कमीज़, बनियान फाड डाली।"[1] वह बोली कि - "अभी तक आदमी ही सरे-आम औरतों को नंगा करके मारते आये है। क्या औरत आदमी को नंगा करके नहीं मार सकती ?"[2] एक तीखे संघर्ष की आँख को लेखिका ने समाज के ऊपर डाला है।

अपनी स्वत्वबोध को बनाए रखने की कोशिश दलित नारी केलिए अनेक संघर्ष को ही सामने लाते है। उन लोगों की इस कशिश को आगे बढ़ाने की ओर ज़ोर देते हुए 'कावेरी' ने अपनी कहानी 'नव प्रसूत' शुभा के माध्यम से एक मध्यवर्गी दलित नारी की संघर्ष मयी पारिवारिक जीवन को ही दर्शाया है। शुभा अपनी कमाई पर जीने वाली है साथ ही साथ वह घर का काम भी संभालती है। फिर भी उसके पति उसे छोडती है तो फिर से वह उस यातना के कुएँ में जा गिरने को उचित नहीं समझती है वह मन ही मन सोचती है - "नहीं, मुझे साहस और दृढ़ता से इस स्थिति का मुकाबला करना है, परालम्ब पराधीनता का दूसरा नाम है। मैं ने अपना उभरा पेट देखा। पैरों को दोखा बोझ ढोने में सक्षम है। बेटी को गले से लगाया और उसके सिर पर हाथ फिराते हुए मेरे मुंह से निकला - "तुझे भी मज़बूत बनना है,

---

[1] सुशीला टाकभौरे - दमदार- संघर्ष - पृ.135

2.वही - पृ.135

मेरी तरह।"[1] दलित स्त्री समाज को आगे बढ़ने की हौसला देने लेखिकाएँ अपना लक्ष्य समझती है।

दलित नारी राजनीतिक क्षेत्र को अपने से एक अलग हिस्सा ही मानते है। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ ही सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं के शिकार होने वाले को बचाया जाना, कानूनी प्रावधानों को जल्दी से लागू करना, स्त्री आरक्षण को पूरी तरह लागू करना इन सबकी सार्थकता केलिए राजनीतिक क्षेत्र में दलित महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है इस के महत्त्व के ऊपर उसे सचेत बनाने केलिए लेखिका रजत रानी मीनू ने 'सुनीता' नामक एक कहानी के माध्यम से एक कोशिश की है। सुनीता एक दलित युवती है उसको पढ़ाने का इरादा घरवालों में कभी न थी फिर भी वह हर तूफान का छेद करते हुए आगे बढ़ती गयी। वह हर वक्त अपनी माँ से कहती थी कि -"माँ, इन सबको बकने दो, इन ऊँच जातवालों का काम ही यह रहा है कि हमें और खास तौर पर शूद्रों की औरतों को पढ़ने व बढ़ने न दें, ताकि इनका जात - पांत छुआ-छूत का भेदभाव चलता रहे।"[2] अगर पढ़ेंगे तो ये बोलने लगेंगे, "ये अपने हक की बात करने लगेंगे और उन्हें पाने के लायक बन जाएँगे। तब वे कॉलेज जाएँगे अफसर बन जाएँगे...... आज़ादी मिलने के बाद आज तक एक फीसदी भी हमारे

---

[1] कावेरी - नवप्रसूत - (सं.जयप्रकाश कर्दम) - दलित साहित्य - 1999 - पृ.236

[2] रजत रानी मीनू - सुनीता - हम कौन है? - पृ.31

लोग इन पदों पर नहीं पहूँच पाये है। ना ही सरकार में हमारी कभी भागीदारी रही। और यह ऊँची जात वाले नहीं चाहते कि हम भी राज-पाट करे। हम तो केवल वोट देने वाले बनकर रह गये है। वह भी उनकी मर्ज़ी मुताबिक वोट देने वाले।"[1] इस कहानी में सुनीता राजनीति में उतरती दिखाया है। साथ ही दलित महिला लेखिका सुशीला टाकभौरे ने 'सिलिया' कहानी के माध्यम से दलित नारियों को राजनीति की एक ओर पाठ पढ़ाने की कोशिश भी की है जैसे इस कहानी का आरंभ 'नई दुनिया' में आई एक विज्ञापन से शुरू होती है - "शूद्र वर्ण की वधु चाहिए।"[2] मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के जाने माने युवा नेता रोठी जी अछूत कन्या के साथ विवाह करके समाज के सामने एक आदर्श रखना चाहते है। आजकल राजनीति जाति को मोहरा बना दिया जाता है। इसकी ओर संकेत देते हुए लेखिका ने समाज को सचेत कराया है। कहानी में सिलिया इस राजनीति षड्यंत्र का खिलौना बनना नहीं चाहती वह सोचती है - "हम क्या इतने भी लाचार है, आत्मसम्मान रहित है, हमारा अपना भी तो कुछ अहंभाव है। उन्हें हमारी ज़रूरत है, हमको उनकी ज़रूरत नहीं। हम उनके भरोसे से क्यों रहें। पढ़ाई करूँगी, पढ़ती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगी। उन सभी परंपराओं के कारणों का पता लगाऊँगी, जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। विद्या, बुद्धि और

---

[1] रजत रानी मीनू - सुनीता - हम कौन है? - पृ.31

[2] सुशीला टाकभौरे - सिलिया - संघर्ष - पृ. 44

विवेक से अपने आपको ऊँचा सिद्ध करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूँगी नहीं। न ही अपमान सहूँगी।"[1] जीवन के प्रति एक अतुल्य चाह पैदा करना लेखिका की मकसद है।

आज का दलित स्त्री समाज पूरी तरह सचेत हो रहे है। वह लोकतंत्र, शिक्षा, आरक्षण से रोज़गार, राजनीतिक रूप से दलितों का उभार, अम्बेडकारी चेतना और साथ में मार्क्सवादी ज्ञान से लैस दलित पहले की तरह वर्ण व्यवस्था के लौह पाश में कुचले - रौंदे जाने केलिए तैयार नहीं। वह अपने ऊपर आजकल हो रहे हर अत्याचार एवं उत्पीडन को खुले आम उत्तर देते है। कुसुम वियोगी की एक कहानी है 'अंतिम बयान'। इस कहानी की युवती एक ऐसी लड़की है जो गाँव के प्रधान के बेटे राजेन्द्र के कुलक्षणों पर वह चुप नहीं बैठती - "तभी अतरो नागिन-सी फुफकार कर बोली, भाभी ! अगर उसने मुझे कुछ कह दिया तो फिर देख दराँती से गन्ने-सा कतरकर रख दूँगी हरामखोर को। गाँववाले देखते रह जाएँगे।"[2] वह आगे कहती है - "क्या खाक ठीक कह रही है ? डरो मत ! मैं सब देख लूँगी। कोई चार-हाथ पैर नहीं है ठाकुरों के।"[3] अतरो की यह बातें सिर्फ बयानबाजी भर नहीं रहीं वह मौका पाते ही उसे अकेले ही उसकी जुर्म का सज़ा दे दिया। "पुलिस आया तो वह न डरे कागज़ के बंडल में से निकालकर राजेन्द्र

---

[1] सुशीला टाकभौरे - सिलिया - संघर्ष - पृ. 48

[2] कुसुम वियोगी - अंतिम बयान -(सं.रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन - पृ.136

[3] वही - पृ. 137

का कटा हुआ पुरुषत्व लहरा दिया।”[1] दलित कहानी आज कल महिलाओं के विभिन्न रूपों को दर्शाता है।

कुसुम मेघवाल की एक कहानी ‘अंगारा’ भी अपने बलात्कारी को नहीं छोड़ती है। प्रतिशोध की आग में जल रही जमना जुल्मी को ऐसी सज़ा देती है कि वह जीते जी मरे के समान रह जाता है - “जमना आँखें फाड़े अपनी इज्ज़त लूटनेवाले नर-पिशाच को देख रही थी। अब उसकी बारी थी। अंगारा बनी जमना दौड़ी-दौड़ी घर में गई और कोने में पड़ी दराती उठा लाई, सरकार और पुलिस जिसे सज़ा नहीं दे पाई, उसे जमना ने दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया। उसने सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर दिया। वह तड़प रहा था। अब उसका बचना संभव नहीं था। यदि बच भी जाता तो उसकी ज़िन्दगी मौत से भी बदतर होती। एक हिजड़े की ज़िन्दगी अब वह किसी अछूत गरीब लड़की की इज़्ज़त से नहीं खेल पाएगा। उसके किए की इतनी सजा काफी थी।”[2] शोषण को सहते-सहते आज दलित नारी अपना रौद्र रूप दिखाते नज़र आता है। वह नृशंस हिंसाओं को और न सहेंगी।

---

[1] कुसुम वियोगी - अंतिम बयान -(सं.रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन- पृ.141

[2] कुसुम मेघवाल - अंगारा - (सं.रमणिका गुप्ता) - दलित कहानी संचयन - पृ.145

निष्कर्ष

नवजागरण तथा चेतनात्मक आन्दोलनों के माध्यम से समग्र मानवाधिकार एवं सामाजिक- राजनीतिक अधिकारों से वंचित मानव सिन्धु के उत्थान केलिए जिन कुछ क्रांतिदूतों तथा मानवतावादियों ने अहर्निश संघर्ष किया है उसका परिणाम है आज का दलित साहित्य। इस साहित्यिक धारा ने पिछड़े, अति पिछड़े, वंचितों, उपेक्षितों, परिधि पर यातना भोगते विशाल जन समाज को अपने अधिकारों के प्रति सहज बताया। फलतः आज दलित समाज एवं साहित्य प्रज्वल विद्रोह के पक्ष में है।

अध्याय पाँच

समकालीन कहानी में लोक चेतना

<u>अध्याय - 5</u>

<u>समकालीन कहानी में लोक चेतना</u>

मानव स्मृतियों के साथ आगे बढ़ने वाली प्राणी है। अतीत की स्मृतियाँ उसे तेज़ बनाती है। नवोत्थान के बाद जो जागरण उद्भूत हुआ उससे हर जनता अपनी देशीयता एवं सांस्कृतिक धरातल के प्रति एक जाँझ की आवश्यकता उभर आई। हर जनता अपनी मूल्यवत्ता को ऊँचा दिखाने केलिए अपने समस्त भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की विभिन्नताओं पर गौरवपूर्ण अध्ययन शुरू हुआ। यह आज एक गंभीर धारा के रूप में साहित्य में विराजित है। वह है 'लोक साहित्य'।

<u>5.1.1. लोक शब्द की अवधारणा एवं परिभाषा</u>

भारत में अंग्रेज़ी शब्द 'फोक' के समानार्थी शब्द के रूप में उपयोग किया जानेवाला 'लोक' शब्द वास्तव में वेदकाल से ही प्रचलित है। वेदों तथा उपनिषदों में 'अशिक्षित जनता' के रूप में 'लोक' शब्द का उपयोग किया गया है। प्रख्यात कवि तुलसीदास ने लोक तथा वेद के मूल्यों को प्रेम का आधार मानते हुए कहा है -

"लोकहूँ बेद सुसाहिब रीति।
बिनय सुनत पहिचानत प्रीति।।"[1]

---

[1] तुलसीदास - रामचरितमानस (बालकाण्ड) - पृ.34

बाद में सन् 1846 में प्रख्यात अंग्रेज़ी पुरातत्ववेता विलियम जॉन थॉमस ने सर्वप्रथम इस शब्द को ‘फोकलोर’ नाम से प्रयोग किया। यह फोक (Folk) और ‘लोर’ (Lore) का सम्मिलित रूप है। ‘फोक’ शब्द की उत्पत्ति एँग्लो सेक्सन (Anglo Saxon) शब्द Volk से हुआ था, इसका अर्थ है अशिक्षित जनता एवं समाज। ‘लोर’ एँग्लो सेक्सन शब्द lar से बना था इसका अर्थ है - जो सीखा जाय अर्थात् ज्ञान। इस प्रकार ‘फोकलोर’ शब्द का अर्थ हुआ - अशिक्षित जनता एवं समाज का ज्ञान। आज तो ‘फोकलोर’ शब्द अंतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली के रूप में पूरे यूरोप में भी स्वीकृत किया गया है।

जनसामान्य रूपी फोक के एक परिष्कृत रूप सन् 1887 ई. में यूरोपीय विद्वान जॉन आब्रो से ही होता है। उन्होंने ‘फोक’ शब्द को सर्वसाधारण जनता के रीति-रिवाज़, रहन-सहन,अंधविश्वास आदि के अध्ययन को इनसे जोड़ दिया। इस प्रकार विकास प्राप्त की गयी इस धारा को अनेक विद्वानों ने अपने तरीके से परिभाषित भी की है। जैसे -

‘लोक’ को ‘फोक’ के पर्याय के रूप में मानते हुए डॉ.सत्येन्द्र का कहना है - “लोक मनुष्य समाज का एक वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य-चोतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।”[1]

[1] डॉ.सत्येन्द्र - लोक साहित्य विज्ञान - पृ.30

डॉ.सत्येन्द्र की यह व्याख्या 'लोक' शब्द के संपूर्ण अर्थों को व्यक्त करने योग्य है। उन्होंने लोक को परंपरा से जोड़ते हुए उसे अधिक मूल्यवान बना दिया है।

डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी 'लोक' शब्द की सुस्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत करते हुए उसे 'ग्राम' और 'जन' से भिन्न मानते हैं वे कहते हैं - "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत रुचि सम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने केलिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] अत: व्यक्त है कि एक राष्ट्र की उन्नति में 'लोक' का महत्त्व सर्वस्मरणीय है।

डॉ.श्याम परमार का मानना है - " 'लोक' साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित है। यह शब्द वर्ग -भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परंपराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का

---

[1] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - विचार और वितर्क - पृ.196

प्राय: उल्लेख दिया जाता है, किन्तु 'लोक दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है, वही समाज का गतिशील अंग है।"[1] लोक की सीमा अनिर्वचनीय मानने वाले श्याम परमार जी काल एवं मनुष्य के अंत को ही 'लोक' की अंतिम पड़ाव मानते हैं, अत: काल एक निरंतर सत्य है उसी प्रकार लोक भी अमर है। आगे 'लोक' साहित्य की कुछ नवीन प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए वे कहते है - "आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन समाज, जिसमें भाषा पूर्वसंचित परंपराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।"[2] इस तरह विकास प्राप्त इस विधा के मूल रहस्य का उद्घाटन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है - "मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है। लोक के भीतर ही कविता क्या, किसी भी कला का प्रयोजन और विकास होता है।"[3] शुक्लजी का मानना निसंदेह रूप से सत्य है कि संपूर्ण संस्कृति के संवाह 'लोक' साहित्य का उज्ज्वल विकास होना स्वाभाविक है।

विद्यानिवास मिश्र 'लोक' में मुख्य रूप से तीन विशेषताएँ होने का दावा करते हुए बताते हैं - "पहली विशेषता तो यह है कि लेक-

---

[1] डॉ.श्याम परमार - भारतीय लोक साहित्य - पृ.10

[2] वही - पृ.11

[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि- भाग-2 - पृ.122

परंपरा पूर्वविस्मृत, पुरानी, आदिम परंपरा नहीं है, यह परंपरा जीवंत है,अभी तक व्याप्त है ; व्यतीत नहीं हुई है, निरंतर चल रही है तथा जीवन का अंग है। जिसे 'फोक' कहते हैं, वह यह नहीं है। इसमें जीवन का अर्थ अंतर्निहित रहता है। दूसरी विशेषता यह है कि हमारी लोक-परंपरा मनुष्य एवं प्रकृति के बीच में, व्यक्त एवं अव्यक्त के बीच में संबंध स्थापित करती है। लोक का अर्थ होता है इंद्रियगोचर संसार, जो इन्द्रियों द्वारा अनुभूत होता हो, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता हो। इस लोक में केवल मनुष्य समाज ही नहीं रहता, प्रकृति भी आती है, व्यवहार भी आता है, भाषा भी आती है। लोक-परंपरा में सारी चीज़ें समाहित होती हैं। तीसरी बात यह है कि लोक-परंपरा भारतवर्ष में शास्त्र को समृद्ध करनेवाली परंपरा रही है।...... हमारे यहाँ भाद्रपद में करमा का उत्सव होता है। यह उत्सव गिरिजनों का उत्सव है, जिसे कुलीन ब्राह्मणों ने अपनाया है। इसका अर्थ यह है कि निरंतर अंत:प्रक्रिया होती रही है, शास्त्र और लोक के बीच में मेल-जोल रहा है। इस तरह हम कह सकते हैं कि शास्त्रीय परंपरा लोक से जुड़ी हुई है और शास्त्र ने लोक को समृद्ध किया है। हमारे यहाँ बहुत सारे राग हैं, जो लोकधुनों से बने है। काफी होली की धुन से निकला है। लोकधुनों एवं लोकगीतों से शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ है और इसी प्रकार शास्त्रीय संगीत के रागों से लोकगीतों की रचना हुई है। लोक-परंपरा समग्र दृष्टि लिये हुए रही है। हमारा लोक समस्त विश्व को एक परिवार के रूप में बाँधने की बात करता है। लोक-

परंपरा संबंधों के निर्वाह की परंपरा है। यह संबंधों की बहुविधता अनेक प्रकार के रिश्तों के सौंदर्य को समझने की परंपरा है। यही मुख्य विशेषता है।"[1] इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि 'लोक' शब्द एस सीमित अर्थवाला शब्द नहीं है।

डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसके लिए 'लोकवार्ता'[2] की संज्ञा दी तो डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी 'लोकयान'[3] शब्द प्रयुक्त करने के मत में हैं। डॉ.भोलानाथ तिवारी ने 'लोकयान' शब्द का प्रयोग किया तो डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोकसंस्कृति'[4] का प्रयोग अत्यन्त स्तरीय शब्द ठहरा दिया।

डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल एवं डॉ.सत्येन्द्र द्वारा प्रयुक्त लोकवार्ता शब्द स्पष्ट रूप में अंग्रेज़ी शब्द फोकलॉर के हिन्दी पर्याय है। डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार -"लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है - लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति - इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान

---

[1] विद्यानिवास मिश्र - लोक और लोक का स्वर - पृ.35-36

[2] डॉ.वासुदेव शरण अग्रवाल - पृथ्वी-पुत्र - पृ.85

[3] कन्हैयालाल सहल - राजस्थानी कहावतें - एक अध्ययन - पृ.85

[4] राहूल सांकृत्यायन - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ.12

का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का संबंध भी उन्हीं के साथ है।"[1] इस प्रकार लोक के समस्त अंग ही लोकवार्ता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि 'लोक' शब्द केवल शिक्षा से रहित समाज में ही सीमित नहीं है बल्कि आज अभिजात वर्ग में भी लोक की स्थिति पूर्ण रूप से मान्य है। संपूर्ण विश्व में लोक उसके सभी क्रियाकलापों, परंपराओं, रीति-रिवाज़ों, संस्कारों तथा विचारों के रूप में विद्‌यमान है। मानव संस्कृति का यह अंग काल सीमाओं से परे है। यह व्यक्ति केन्द्रित नहीं है बल्कि संपूर्ण जाति अर्थात् समष्टि चेतना का द्‌योतक है। अत: लोक शब्द आदिम और आधुनिक मानव को एक सूत्र में अनस्यूत करने के कारण कह सकते है कि लोक के धरातल पर सभी मानव एक है। लोक शब्द पर विचार करने के उपरांत लोक चेतना को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। चेतना का अर्थ है consciousness (कॉन्शसनेस) यानी मनुष्य के पास सोचने, समझने और चिंतन करने की शक्ति को ही हम इस शब्द से अभिहित करते है। आज हम ग्लोबल संस्कृति के स्नेही है। यह हमारी जड़ अर्थात् प्रकृति की ऊष्मलता के भी वद करते हुए आगे बढ़ रहे है। इसलिए वर्तमान लोक साहित्य हमें प्रकृतिगत, भाषागत और भावगत सतर्कता समाज में लाने केलिए प्रयत्नरत है। अत: वर्तमान लोक

[1] डॉ.वासुदेव अग्रवाल - पृथ्वी-पुत्र - पृ.85

साहित्य के महत्त्व पर विचार करने से पूर्ण 'लोक' शब्द की समृद्धि पर विस्तार रूप से विचार करना आवश्यक है।

<u>5.1.2. लोक संस्कृति</u>

जिन परम्पराओं और आस्थाओं में एक व्यक्ति का जन्म एवं बचपन बीतता है वह उसी परम्परा और उस खानदान के नवीन खून का अंश बन जाता है। इस प्रकार उस व्यक्ति अन्य संस्कृति से अलग बन जाता है। इसी प्रकार कहें तो किसी देश, समाज या समुदाय के जन जीवन में व्याप्त विशेषताओं के समग्र रूप से संस्कृति नाम से पुकारा जा सकता है। मनुष्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रहते हुए अपनी अलग भाषा, लिपि, धर्म और दर्शन बना कर एक नयी जीवन शैली का निर्माण करते है जो लोक संस्कृति के नाम से कहे जाते है। अतः स्पष्ट है कि हर जन जातियों की संस्कृति एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। इसलिए मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति भी विभिन्न ढंग से होती है। इस प्रकार भारतीय संस्कार की मूलधारा को परखने केलिए, लोकधर्म, लोकगीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक चित्र, लोक नृत्य, लोक नाट्य, लोक वाद्य, लोक सुभाषित, लोक विश्वास, लोक भाषा, लोक प्रकृति इन सभी का अध्ययन आवश्यक है। लोक संस्कृति कभी भी अभिजात्य समाज पर आश्रित नहीं है, इसके विपरीत लोक संस्कृति अभिजात्य समाज केलिए प्रेरणा की भूमिका का ही निर्माण करती है। लोक संस्कृति में लोक जीवन के हर अंग विद्यमान है।

5.1.2.1. लोक धर्म

लोक धर्म लोक जीवन का एक अंग है यानी यह लोक संस्कृति का एक अभिन्न तत्व है। लोक धर्म का स्वरूप मौखिक है। अर्थात् अतीन्द्रिय अदृश्य जगत की देवी आत्माओं के जो संकेत आदेश है यही लोक धर्म है। इसे सिखाये नहीं जाते यह दैनंदिन व्यवहार से मनुष्य सीख जाता है। लोक धर्म जीववाद को भी प्रश्रय देता है। इसी प्रकार सभी वस्तुओं में जीव की उपस्थिति का विश्वास मनुष्य को पेड़ पौधों, नदी पहाड़ों का पूजारी बना दिया है। लोक धर्म समष्टि चिन्तन पर टिका होता है। यह पाठपूजा, अनुष्ठान, व्रतउपवास, तीज-त्योहार, यज्ञ-याज्ञ, जादू- टोना, झाड़फूक, तंत्र मंत्र आदि से विकसित है। यह सब धर्म न होकर मानव की विश्वास है जो लोक के आचरण में निहित है।

5.1.2.2. लोक विश्वास

साधारण जनता का जीवन इन विश्वासों पर आधारित है। आदिम और असभ्य जातियों के बीच में ऐसे कई अंधविश्वास और मूढ़ा ग्रह आज भी बसे हैं जिसका इस वर्तमान समय में कोई मूल्य नहीं है। फिर भी यह हमारी परंपरा द्वारा पोषित होने के कारण इसको पूर्ण रूप से टुकरा नहीं सकते। तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका, दुआ-ताबीज, झाड़-फूँक, भूत-प्रेत आदि सभी अंधविश्वासों की परिधि में

आते है। ज्योतिष के अंग होने वाले शकुन-अपशकुन, दिशा-शूल, स्वप्न विचार, वस्तुओं के सुभ अशुभ लक्षण, प्राकृतिक उत्पात चिह्न यह सभी लोक विश्वास की आंतरिक वस्तुएँ हैं। पिछड़े हुए दलित आदिवासी भी इसी लोकविश्वास को जीवन का आधार मानकर जीवन यापन करने वाले है। शिक्षित जनता इसे आडंबर एवं अन्धविश्वास कहते है तो साधारण जनता इसे समर्थ जीवन की राह मानते है।

5.1.2.3. लोक रीति-रिवाज़

यह लोक संस्कृति का एक प्रमुख तत्त्व है। एक व्यक्ति प्रतिदिन क्षौरकर्म से लेकर स्नान, भोजन, व्रत, उपवास और शयन आदि अनेक रीतियों को अपनाते है यह लोक जीवन का एक अंग है। लेकिन इन रीतियों को अपनाने से कोई खास वृद्धि जीवन में नहीं होती फिर भी इसका पालन करते हुए मानव अपने आपको संतुष्ट पाते है। इन परंपरागत रीति रिवाज़ों का पालन करना मानव अपना कर्तव्य एवं कर्म मानते है। लोक में व्याप्त इन रीति-रिवाज़ों को सामाजिक और पारिवारिक करके दो भागों में बाँटे भी जा सकते है। सभी प्रकार के संस्कार, कर्मकाण्ड, अनुष्ठान, पर्व-व्रत-उत्सव, उद्योग-धन्धे , व्यवसाय, प्रथा एवं परंपराएँ और आचार विचार आदि सभी इन दोनों में अन्तर्निहित होते है।

5.1.2.4. लोकगीत

भावों की रागात्मक अभिव्यक्ति को गीत कहते है। इस प्रकार प्रत्येक जन-जीवन में व्याप्त भावों की रागात्मक अभिव्यक्ति को लोकगीत कहते है। यह आदिम मानव के उल्लास का नाम है। इसकी आत्मा लोकसंगीत में बसते है। लोकगीत संगीत और काव्य के मिले हुए रूप है। लोकगीत प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त गान और लोककण्ठ की मौखिक परंपरा की धरोहर होने के कारण सभी काव्य नियमों से मुक्त है। लोकगीतों में अधिक प्रसिद्ध है कहखा, दादरा तथा दीपचंदी धुने आदि। लोकगीतों में प्रचुर मात्र में मिलने वाले राग है - पीलू, तिलक, कामोद, काफ़ी खमाज, बलाबल आदि। इसे अधिक ढंग से रुचिकर बनाने केलिए बाँसुरी, शहनाई, शंख, ढोल, ढोलक, डमरू, तंबुरा, सारंगी, इकताश जैसे फूँक, खाल, तार वाद्यों का प्रयोग भी करते हैं। लोक-भजन में तो करताल का इस्तेमाल ही अधिक होते है। लोकगीत में वात्सल्य, करुण, श्रृंगार आदि रस अधिक मात्रा में मिलते है। इनमें क्लिष्ट अलंकारों के बजाय उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष जैसे सामान्य अलंकार ही पाए जाते है। “भारतीय समाज में व्याप्त लोकगीतों में प्रमुख हैं - पुत्र जन्म गीत, लोरी गीत, मुंडन के गीत, यज्ञोपवीत संबंधी गीत, विवाह गीत, विदाई गीत, मेंहदी गीत, उबटन (हल्दी) गीत, सेहरा गीत, बारात स्वागत गीत, गाली गीत, मृत्यु गीत, ऋतुमास गीत, चैत्र, सावन, वैशाख, कार्तिक मास संबंधी गीत, कृष्ण जन्माष्टमी संबंधी गीत, लोहड़ी गीत, शिवरात्री गीत, भक्ति गीत, देवी

गीत, मेले के गीत, व्रत संबंधी गीत, खेल गीत, नृत्य गीत, भांगडा गीत, राई गीत आदि।"[1] लोकगीतों की इन वर्गीकरणों में डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय के विभाजन को अधिक वैज्ञानिक माने जाते है जैसे (1) संस्कार के गीत (2) रसानुभूति के रूप में (3) ऋतुओं और व्रतों से संबंधित गीत (4) भिन्न जातियों के गीत (5) श्रमगीत। इन सब में सबसे अधिक मेल खाने वाली स्त्रियाँ ही होती है। इस प्रकार कह सकते है कि लोकगीत सामान्य जनता के जीवन का प्रतिबिम्ब है।

आदिवासी समाज में आज भी लोकगीत के प्राचिनतम रूप विद्‌यमान है। उनकी संस्कृति के एक अभिन्न पक्ष है लोकगीत। उनके जीवन से संबंधित सभी घटनाओं जैसे पर्व, त्योहार, विवाह सभी में लोकगीत का प्रमुख स्थान है। यह प्रकृति गान ही है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चलती रही यह धारा आज प्रत्येक जन जाति समूह की पहचान भी है। भिन्न भिन्न जन जाति भिन्न भिन्न प्रकार के गीतों के गायक है। इसका मुख्य संबंध मस्तिष्क से नहीं बल्कि हृदय से है।

पशु-पक्षी, वृक्ष-बेल, नदी-समुद्र , पर्वत, सूर्य-चन्द्र के पूजारी आदिवासी इव सभी की पूजा करते हुए अनेक

---

[1] भाषा - जुलाई-अगस्त - 2005 - पृ.13

लोकगीत भी गाते है। बदलती ऋतुएँ भी आदिवासी लोकगीत का विषय है।

आज की जनजातियों की संख्या में सबसे अधिक जनजाति संताल आदिवासी का है। वे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा झारखण्ड में रहते हुए दिखते है। संतालियों के लोकगीत उनके जीवन से जुड़े है। लोकगीतों के अनुसार संताली समाज का उद्भव हिहिडि में हुआ है। सन् १८८५ ई. से लेकर संताली लोकगीत का लिखित रूप बंगाल लिपि के माध्यम से प्रकाशित होने लगा। संताली लोकगीतों की प्रवृत्तियाँ भी विभिन्न है - भक्ति, नीति, रोमानी, कल्पना, प्रेम की पीड़ा, उल्लास, सहानुभूति, इतिहास आदि। संताली लोक सोहित्य के प्रमुख विशेषता यही है कि इसका प्रमुख पात्र व्यक्ति न होकर पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, देव-दानव आदि है।

संताली लोकगीत को कई आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है - जैसे राग, संस्कार, पर्व-त्योहार, विविध आदि। राग के अनुसार परंपरागत लोकगीत गए जाते है। संताल संस्कारों से जन्म संस्कार, विवाह संस्कार एवं मृत्यु संस्कार अत्यधिक प्रमुख है। जन्म संस्कार में छाटयार गीत तथा नामकरण गीत गाया जाता है तो विवाह संस्कार में टाकाचाल गीत, सिरीबारी गीत,

सिंदुरदान गीत, विदायगीत, वालाया गीत तथा दौड़ गीत गाया जाता है। मृत्यु संस्कार में तेलहान गीत, भाडात गीत, जापला गीत, पर्व त्योहार में डाहार, बाहा, करम, दांसाय, सोहराय, साकारात आदि गीत गाए जाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित गीत किसी पवित्र वृक्ष के सामने गाए जाते हैं।

अधिक से अधिक लोकगीत बनाने वाले एक ओर वर्ग है मुंडा मुंडा लोकगीतों में प्रेम गीत सर्व प्रमुख है। उनकी संस्कृति में विशेषकर प्रेम के क्षेत्र में सखुआ के फूल और पत्ते का अत्यधिक महत्व है। सखुआ का फूल से प्रेमी प्रेमिका के बीच संदेश भेजते है। जब प्रेमिका शाल के फूल और नए पत्ते प्रेमी को भिजवाएगी, तो यह प्रेमी के लिए अर्थ हुआ कि प्रेमिका ने उसे बुला लिया है। उसी प्रकार गोंड जनजाति भडोनी गीत एवं सजनी गीत दोनों विवाह के अवसर पर गाए जाते है। इसी प्रकार जनजातीय लोकगीतों की भावभूमि विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है।

5.1.2.5. लोकगाथा

लोकगाथाएँ सूक्ष्मतर सूक्ष्म शब्दों से युक्त प्रबंध गीत है। लेकिन आकृति महाकाव्य के समान है। गेय तत्वों से युक्त दीर्घ कथा इसकी विशेषता है। कथा की यह दीर्घता नायक जीवन के विस्तृत वर्णन में सहायक है। यह व्यक्तिगत भाव से लिखा हुआ नहीं है इसका प्रमाण है लोकगाथाओं में रचयिता की अज्ञात होना। इसलिए

प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार नयी पंक्ति को जोड़ा और तोड़ा भी जा सकता है। यह लोकगाथाएँ प्रत्येक प्रांतों की भाषा एवं संस्कृति का खुला चित्र ही है। संगीत एवं नृत्य के सहयोग से लिखा हुआ हर लोकगाथाओं में युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का पुट भी देखने केलिए मिलते है। यह अलंकारों से मुक्त रहते है। उपदेश इसमें नहीं के बराबर है। पशु-पक्षी भी इसमें पात्र बनकर कथा के अंग के रूप में प्रस्तुत होते है। इसमें एक गायक बाकि सब उसका श्रोता ही होता है। लोकगाथाएँ प्रमुख रूप में चार वर्ग के हैं -

(1)परंपरामुक्त (2) चारण (3) प्रकाशित (4) साहित्यिक[1]

परंपरामुक्त लोकगाथाएँ मूल रूप में मौखिक है। गेय गाथाएँ चारण गाथाएँ है। प्रकाशित लोकगाथाएँ मुद्रण प्रणाली के द्वारा प्रस्तुत होने वाले है। साहित्यिक लोकगाथाएँ कवियों द्वारा रचित होने वाला है। आल्हा, लोरकी, विजयमल की गाथा, ढोला, विहुला भर्तृहरि गाथा, गोपीचंद गाथा, कुंतर विजई आदि लोकगाथाओं के अन्तर्गत आनेवाली वीरगाथाएँ हैं। मृत्यु, जादू और अंधविश्वास आदि से संबंधित लोकगाथाएँ अलौकिक लोक गाथा के नाम से जाने जाते है। अंत के रूप में कह सकते है कि एक प्रांत की सामाजिक परंपराएँ, रीति रिवाज़, रूढ़ियाँ आदि का स्पष्ट चित्रण लोकगाथाओं में प्रस्तुत है।

---

[1] भाषा - जुलाई-अगस्त - 2005 - पृ.13

5.1.2.6. लोक कथाएँ

मौखिक या लिखित रूप से पीढ़ीतर पीढ़ी प्रचलित कथाएँ हैं लोक कथाएँ। स्पष्ट रूप में लेखन नहीं होने से पीढ़ियों के परिवर्तन के साथ इन कथाओं में भी काफी बदलाव आ सकते है। आज यह समस्त विश्व में प्रचलित है। लोक कथाओं का जन्म मानव के साथ ही हुआ हो सकता है और उसका विकास आज भी मानव से युक्त है। भारत लोककथाओं केलिए प्रसिद्ध है। रागात्मकता एवं श्रृंगार रस इसमें अक्सर पाए जाते हैं। लोकमंगल भावना इसकी विशेषता है। इसका अंत भी सुख से युक्त होता है। लोककथाएँ सदैव निराशा का तिरस्कार करते हुए हर प्रतिकूल परिस्थितियों का खुलकर संघर्ष करके अपने शत्रुओं से अमरत्व की प्राप्ति को ही दर्शाता है। अलौकिक कृत्यों के प्रति मानव की आकर्षक से देवी-देवताओं, परी-अप्सरा, भूत-प्रेत, पिशाच आदि की कथाओं को प्रमुख बनाया। इसके संबंध में डॉ.सत्या गुप्ता का कहना है - “लोक कथाओं में अलौकिक तत्त्वों का समावेश पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यह दिवंगत आत्माओं, देवताओं, विलक्षण पुरुषों या राजा-रानी और राजकुमारी से संबंधित होती हैं। इनमें असाधारण, असंभव घटनाओं का प्रदर्शन रहता है। राजा-रानी को किसी का शाप, शर्त या कोई कठिन काम कर दिखाने, उसमें देवी की सहायता से सफलता प्राप्त होने अथवा किसी साधु-सन्त, जादूगर या मानव की तरह सुनने-समझने और बोलचाल वाले किसी वृक्ष, पशु

अथवा पक्षी की सहायता मिलने से कार्य पूर्ति का वर्णन होता है।"[1] इस प्रकार बालकों से लेकर वृद्धों तक जिज्ञासा भाव को उत्पन्न कराने की सिद्धी लोक गाथाओं में होते हैं। काश्मीर की 'मुनि कन्या', छत्तीसगढ़ की 'बूढ़ा भूत और सात हण्डे', बुन्देलखण्ड की 'जलकन्या' आदि इस कोटि में आने वाले हैं। लोककथाओं को छह भागों में बाँटा भी जा सकता है। उपदेश लोक कथाएँ, प्रेम लोककथाएँ, व्रत त्योहार लोककथाएँ, मनोरंजन लोककथाएँ, सामाजिक लोककथाएँ, पौराणिक लोककथाएँ।[2] उपदेश लोककथाओं में पंचतंत्र, हितोपदेश आदि आते है। इन सब विभाजन के अतिरिक्त सामान्य कथाएँ, स्थानीय कथाएँ, जाति संबंधी कथाएँ, काल्पनिक कथाएँ भी लोक कथाओं की श्रेणी में ही आते है। सिंहासन बत्तीसी, पंच विंशतिका, जातक कथाएँ, जैनकथाएँ, गोपीचंद, भरथरी करवा चौथ, अनंत चतुर्दशी आदि भी लोककथाओं के नाम से प्रसिद्ध है।

5.1.2.7. लोकनाट्य

वर्तमान कालीन नाटक की जन्म भूमि है लोकनाट्य। इसकी विशेषता के बारे में श्याम परमार का वक्तव्य अधिक प्रसिद्ध है - "लोक नाट्यों की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोकजीवन से उसका अंग-अंगी का नाता है। बाह्याडम्बरों और

---

[1] डॉ.सत्या गुप्ता - खड़ीबोली का लोकसाहित्य - पृ.227

[2] भाषा - जुलाई-अगस्त - 2005 - पृ.14

नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतन्त्र विकास केवल लोकधर्मी नाट्य-शैली में ही संभव है।"[1] इससे स्पष्ट है कि इतिहास के साथ-साथ सामाजिक जीवन की हर समस्या भी इस नाटक के विषय होते थे। इसमें पद्य और गद्य दोनों रूपों को भी देख सकते है। स्त्रियों की भागीदारी इसमें नहीं है। स्त्रियों की वेषधारण से पुरुष ही उसके भागों को पूर्ण बनाते थे। रंगमंच लोकनाट्य में नहीं के बराबर थे। बीच बीच में नृत्य होने से वाद्यों का उपयोग भी इसमें होते थे। अभिनेताओं को प्रशिक्षण नहीं देते थे। अधिकतर अभिनय में प्रकाश योजना तेल की मशाल से ही होते थे। इसमें सदा लोक बोलियों का ही प्रयोग होता था। मंगल अवसरों पर ही इसका मंचन होता था। लोकनाट्यों में प्रमुख है - पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक लोकनाट्य। इसके बदले संगीत प्रधान नाट्य, हास्य प्रधान नाट्य, पशु-पक्षियों गुड़ियों तथा कठपुतलियों के नाट्य, नृत्य प्रधान नाट्य, नाट्यवार्ता प्रधान नाट्य आदि अनेक रूपों की चर्चा भी लोकनाट्य में सदा होते है। "बिहार तथा उड़ीसा का नाट्य रूप 'जात्रा', बंगाल का 'गंभीरा', गुजरात का 'भवाई', राजस्थान का 'ख्याल', महाराष्ट्र का 'तमाशा', तमिल नाडु का 'कामनकोट्टु', आंध्राप्रदेश का 'कोलुबोम्मलाट', कर्णाटक का 'यक्षगानु',

[1] श्याम परमार - लोकधर्मी नाट्य परंपरा - पृ.7

केरल का 'कूटियाट्टम' और पूरे उत्तर भारत में प्रचलित रामलीला रास तथा नौटंकी प्रसिद्ध लोक नाट्य है।"[1]

5.1.2.8. लोक सुभाषित

इसके अंतर्गत लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, मुहावरे ही आते है। यह आदि मानव के दैनिक जीवन के अंगी है।

5.1.2.8.1. लोकोक्तियाँ

लोकोक्ति लोक समाज में प्रचलित सरल उक्तियाँ है। इसमें गहरे ज्ञान तत्त्व का समावेश होता है। लोकोक्तियाँ अत्यन्त सरल रूप एवं भाषा में ही प्रस्तुत होते है। 'रांड सांड सीढ़ी सन्यासी। इनमें बचे सो सेवे कासी' ये काशी निवासियों से संबंधित एक लोकोक्ति है। इन में उस प्रदेश की शीतलता एवं पूरे परिवेश का ज्ञान मिलता है। इस प्रकार हर लोकोक्ति की अपनी खासियत होते है। इसलिए इसका वर्गीकरण एक सरल कार्य नहीं है। इस कठिन कार्य को आसान बनाया डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय ने उन्होंने लोकोक्तियों को पाँच विभागों में बाँट दिया -

(1) स्थान संबंधी

(2) जाति संबंधी

(3) प्रकृति तथा किसानी परिवेश संबंधी

(4) पशु-पक्षी संबंधी

---

[1] संग्रथन - जुलाई -2012 - पृ.50

(5) प्रकीर्ण आदि [1]

इनमें प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ प्रत्येक जन व्यवहार से संबंधित है। नीति संबंधित कहावतें इसमें प्रमुख हैं।

"सींग मुड़े, माथा उठा, मुँह का होवे गोल
रोम नरम, चंचल करन, तेज बैल अनमोल।।"[2]

5.1.2.8.2. मुहावरा

मुहावरा हर भाषा में प्रयुक्त की जाने वाले वाक्य का एक अंश है। यह वाक्य की लंबाई में अधिक सफल न होने पर भी अपनी प्रस्तुति में अत्यन्त प्रभावी एवं प्रेरणा दायी है। मुहावरा अभिधा को तिरस्कृत करते हुए लक्षणा और व्यंजना पर उपस्थित होते है। उदाहरण - 'ईद का चाँद' शब्द रूप में इसका अर्थ हुआ ईद पर दिखने वाला चाँद बल्कि एक उत्तम मुहावरे के रूप में इसका अर्थ 'बहुत कम दिखाई पड़ने वाला' हो जाता है। यह नियम सभी भाषाओं के मुहावरे केलिए लागू है।

5.1.2.8.3. पहेलियाँ

पहेलियाँ मानवीय ज्ञान को बढ़ाने वाला है। इसका जन्म समय लोक की उत्पत्ति का समय ही है। यह एक शाब्दिक चित्र के नाते एक वस्तु की ओर पहूँचने की कोशिश है। जैसे -

---

[1] डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका - पृ.180

[2] रामनरेश त्रिपाठी - ग्राम साहित्य (तीसरा भाग) - पृ.99

‘चार कबूतर चार रंग,

महल में जाके एक रंग’ - इसका उत्तर है ‘पान’ । प्रकृति, घरेलू वस्तुएँ, पशु-पक्षी, खान-पान आदि को विषय के रूप में अपनाने वाली पहेलियाँ मूल रूप में मनोरंजन की सामग्री है।

लोक सुभाषित स्पष्ट रूप में भाषा को अत्यधिक प्रज्ज्वल बनाने में सफल ही है।

5.1.2.9. लोक वाद्य

संगीत वाद्य के बिना पूर्ण नहीं होते। हर अंचल की भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार अपनी धुनें और वाद्य भी होते है। आदिवासियों का वाद्य आज भी आदिम पहचान रखने वाले है। लोक में आदिम वाद्य के रूप में शिव का डमरू या ढाँक को ही माना जाता है। कई रूपों के वाद्य लोक में प्रचलित है। बाँसुरी, अलगोजा, मोहरी शंख, मसक आदि फूँक से बजानेवाले है। ढोल, ढोलक, चंग, मृदंग, टिमकी, मांदक आदि चर्म के वाद्य है। एकतारा, शहतीर, बाना आदि इन लोगों के मौजूद तार वाद्य है। कम़ायचा, सारंगी, रूं रूं बाजा आदि उपर्युक्त कहे वाद्यों के मिश्रित लगाने पर ही बजाये जाते हैं। ढाँक, डमरू, ढफ, शंख, घड़ी-घटाल, नगाड़ा, शहनाई, धौंसा, सिगाडिया, मसक, इकतारा, थाली, लोटा, मिट्टी का मटका, लकड़ी, काँच के टुकडे आदि अनेक

वस्तुएँ लोकवाद्यों के रूप में जाने जाते है। इससे स्पष्ट है कि लोक वाद्य लोक संस्कृति की परिचायिका है।

5.1.2.10. लोकनृत्य

लोक समाज की भिन्नता के अनुरूप लोकनृत्य भी अनेक तरह के होते है। इन्हें प्रमुख रूप से दो तरीके से बाँटा जाये तो एक है - अपनी जाति में किया जाने वाले नृत्य रूप जैसे पंथी सतनामियों के मात्र नाच है। उसी प्रकार काठी भगतों के है, कानड़ा धाबियों के नाच है। दूसरा है अनेक जातियों के मिलने पर होने वाले नृत्य जैसे गणगौर, मटकी बधाई, डंडा नाच आदि। आदिम लोकनृत्यों में प्रस्तुत विभिन्न मुद्राएँ उस काल की संस्कृति के चिन्ह के नाम से अभिहित की जा सकती है। काल के अनुसार होने वाले परिवर्तन को देखकर कुछ लोग विभिन्न गुहा चित्रों में इसे अंकित करने का प्रयास किया है।

5.1.2.11. लोकचित्र

लोकचित्र आदिम मानव की संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसे दो प्रकार से बाँटा जा सकता है। एक है रंगों से जुड़े लोक चित्र। प्रारंभिक समय में लाल, पीला, नीला, हरा, काला, सफेद आदि रंगों का इस्तेमाल किया जाता था। इसे बनाने का आधार भित्ति ही होते है। दूसरा है मिट्टी, गोबर, कागज़ आदि से बनाने वाले चित्र का आधार

भूमि ही होते थे अतिरिक्त प्रकारों में कपड़ा पत्ता से बनाने वाला पट्ट चित्र, मधुबनी, पगल्या, कुलदेवी, साती और देह में बनाने वाले चित्र जैसे गोदना, मेंहदी, म्हावर आदि भी लोकचित्र के आदिम रूप ही है। आदिम लोकचित्रों में पशु-पक्षी, तोता, नाग, फुल, पत्ते, स्वस्तिक आदि रूप अक्सर मिलते थे। हर लोकचित्र में एक मिथ की प्रस्तुति दृष्टव्य है। मूल रूप में कोई धार्मिक, सामाजिक विषय इसके केन्द्र में होते है। संपूर्ण पृथ्वी की मांगलिकता की इच्छा हर लोकचित्र में मौजूद है।

5.1.2.12. लोक भाषा

लोक भाषा साधारण जन जीवन से जुड़ी जीवित भाषा है। सामान्य जन आदिम काल में अनेक ध्वनियों से अपना भाषा दूसरों से प्रकट करता था तो बाद में इन ध्वनियाँ विभिन्न शब्द एवं वाक्यों में परिवर्तित हो गए। हँसुली, तिलौड़ी, बाँचना, लाँक, गसा, गमक, टुक, चा, बोर, संस आदि ऐसे कुछ देशज शब्द है। आज की परिष्कृत समाज में लोक भाषा सावधान अपनी जगह कुछ परिनिष्ठित होकर कायम रखा है। उस समय का नाम भी लोकमानस द्वार निर्मित होते थे जैसे - फेरू, मैकू, नगई, गनेशी आदि। इस प्रकार कहे तो लोक भाषा में ग्रामीण अंचल की खुशबू सन्निवेश है।

5.1.3. लोक जीवन में प्रकृति

प्रारंभ में प्रकृति ही था उससे ही जीवन का आरंभ हुआ। जीवन के विकास प्राप्ति रूप है लोक। प्रकृति की सहायता से ही मानव जीवन सीखा था। विकसित मनुष्य हर पल प्रकृति की रहस्यात्मक गतिविधियों के प्रति जिज्ञासू था। उसमें अपनी काबू पाने की उनकी इच्छा से उन्होंने अनेक आविष्कारों का सृजन भी किया जैसे धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि। असल में इस प्रकार सोचने की शक्ति मानव को प्रकृति से ही मिली थी। प्रकृति ने मानव को बोलना सिखाया। आदिम मानव पक्षियों एवं पशुओं के ध्वनियों एवं संकेतों से बोलता था तो आगे बढ़कर मनुष्य इससे शब्दों की भी निर्मिति की। अभिव्यक्ति की इस राह ने अनेक प्रतीकों को जन्म दिया तो इससे बाद में मिथकों का भी आविर्भाव हुआ। संकेत, शब्द, प्रतीक, मिथक आदि से शब्द अत्यन्त सटीक बनने से मनुष्य मनुष्य को पहचानने लगे। इस प्रकार प्रकृति की सहायता से विकसित मनुष्य हज़ारों वर्षों के बाद कुटुम्ब, कबीला, गोत्र, परिवार, समाज, परंपराएँ, प्रथाएँ, रीति-रिवाज़, अनुष्ठान, संस्कार, संबंध, खोलकूद, गीत, नृत्य, कला, शिक्षा, विश्वास आदि सभी की निर्मिति से अपनी एक खास संस्कृति के निर्माता बने। इसलिए कह सकते है कि लोक के हर कण में प्रकृति है।

लोक संस्कृति के विस्तृत वर्णन से यह प्रकट होता है कि लोक प्रकृति ही लोक जीवन है। लोक जीवन से ही लोक संस्कृति का उद्भव

होता है। इन सभी का प्रत्यक्ष प्रमाण है लोक साहित्य। हमारे अस्तित्व के प्रतीक होने वाले लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति को उसी विशुद्धता में जोड़कर रखना हर व्यक्ति का दायित्व है।

5.1.4. लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य में पर्यावरण का महत्व

लोक संस्कृति ही लोक साहित्य है। लोक साहित्य को पारिभाषित करते हुए पं. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है - "साधारणतः मौखिक परम्परा से प्राप्त और दीर्घकाल तक स्मृति के बल पर चले आते हुए गीत और कथानक ही लोक साहित्य कहे जाते हैं..... ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीज़ें लोकचित्र से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती है।"[1] इसी प्रकार धीरेन्द्र वर्मा भी लोक साहित्य की मौखिक प्रस्तुति को ही प्रबलता देते हुए कहते है "लोक साहित्य वह मौखिक आभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी - साधना समाहित रहती है, जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित है।"[2] लोक साहित्य के संबंध में राहुल सांकृत्यायन का मानना है - "यह साहित्य पिंगलशास्त्र की दुरूहता,

---

[1] पं.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - विचारऔर वितर्क - पृ.205-206

[2] धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1) - पृ.753

अलंकारों के अतिशय भार, प्राविधिक क्लिष्टता और अन्य कृत्रिम विधि विधानों से प्राय: मुक्त रहने के कारण सहज संवेद्य तथा बोधगम्य है। लोकमानस से सतत जीवनी शक्ति प्राप्त करने के कारण इसमें रसमयता और हृदय-स्पर्शिता का अद्‌भुत सामंजस्य मिलता है। यह साहित्य उतना ही स्वाभाविक है जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छन्द है जितना आकाश में विचरण करने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र जितना गंगा की निर्मल धारा।"[1] राहुल सांकृत्यायन ने लोक साहित्य को पृथ्वी के नैसर्गिक साहित्य माना है। डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय लोक साहित्य एवं उसके महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते है - "लोक साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है, जिसमें जनता-जनार्दन पर अखिल और विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है।.... इसमें समाज का चित्रण किया गया है, वह स्वस्थ, सदाचारी तथा धर्मभीरू है, जिस नीति की प्रतिष्ठा की गयी है, वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मंगलमय मार्ग की प्रदर्शिका है, जिस धर्म का वर्णन किया गया है, वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का उपदेश देता है..... धर्म, समाज, नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा देता है।"[2] अत: कह सकते है कि ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख, नीति, ज्ञान, वैराग्य, लोकाचार, धार्मिक आदर्श, सामाजिक

---

[1] राहुल सांकृत्यायन - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग) - पृ.16

[2] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ.271

मान्यताएँ, लोकगीत, लोककथाओं, लोकोक्तियों, लोक गाथाओं, किंवदन्तियों, कला, कानून, विश्वास आदि सभी के मिले हुए रूप है लोक साहित्य यानी लोक प्रकृति ही लोक साहित्य है।

5.1.5. वर्तमान बदलते पर्यावरण

उपर्युक्त लोक एवं लोक संस्कृति के विस्तृत रेखांकन से यह साबित होता है कि मनुष्य ने जब से आँखें खोली है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती अपने पर्यावरण से ही की है। उस समय वनों एवं वनस्पतियों का बाहुल्य यहाँ रहता था लेकिन वर्तमान में यह स्थिति नहीं रही। भौतिक संस्कृति का सबसे बड़ा कहर अधिक रूप से पर्यावरण पर ही बरसा है।

आधुनिक आंकड़ों के आधार पर संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का 22.7 प्रतिशत ही वन क्षेत्र आज है। इनमें से शिलाखण्ड, हिमानियाँ, चट्टानें, रेत के टीले एवं मरुस्थली भाग, नदियाँ आदि की भेद की जाये तो केवल 10 प्रतिशत अच्छे वन ही आज है। जबकि 33 प्रतिशत वन होना अति आवश्यक है। इन सब के परिणाम के रूप में आज सूखा, बाढ़, भू-अवरदन, भू-स्खलन तथा पर्यावरण असन्तुलन की समस्यायें भी ज़ोरों पर है। पर्वतों तथा वनों बिगाड़कर सड़कें एवं रेल की पटरियों तथा उनमें रेंगते वाहनों द्वारा निरन्तर उगलती, विषैली कार्बन-डाईऑक्साइड गैस और सल्फर डाईऑक्साइड कार्बन मोनोऑक्साइड

आदि प्राकृतिक सौंदर्य को नष्ट करते है। बढ़ती गर्मी ने नदियों को सूखा एवं अनेक स्थानों को मरुस्थलें बना दिया है। इन सबके विरुद्ध अनेक आन्दोलन भी हुआ है जैसे चिपको आन्दोलन।

हमारे पर्यावरण में केवल पेड़ ही नहीं है जल, वायु, भूमि, जीव-जन्तुएँ सभी इसका भाग है। औद्योगीकरण की त्रासदी ने इन सबको आज प्रदूषित कर दिया है। इसका एक कारण महानगरों के बीच होने वाले विश्वयुद्ध है जैसे द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के पश्चात् अमेरिका एवं रूस ने बेतहाशा परमाणु विस्फोट किये जिससे पर्यावरण की तो धज्जियाँ ही उड़ा दी गयी। इसके उपरांत हिरोषिमा एवं नागसाकी में हुए आक्रमण का शिकार प्रकृति एवं मनुष्य दोनों आज भी सहता आ रहा है।

इसके साथ जीवनाशियों के इतिहासों में श्रेष्ठ था सन् 1939 में डॉ.पॉल मुलर के द्वारा निर्मित कीटनाशक औषधि डी.डी.टी। अब भारत में 116,281 टन जीवनाशियों का निर्माण हो रहा है। जिनमें 93,689 टन कीटनाशक 13084 टन कवकनाशी, 1394 टन मूषकनाशी, 5736 टन खरपवारनाशी एवं 2378 टन फ्यूमींगट्स है। इनका उपयोग अधिक रूप में भारत में 1420 लाख हेक्टेयर भूमि में भी किया जाता है। सन् 1962 के कुछ सालों बाद एक अमेरिकी लेखिका रश्वेल कार्सन ने बताया कि इसका छोटा सा कण भी जीवन केलिए भारी खतरा हो सकते है।

विद्‌वानों का कहना है कि वायुमण्डल की बाह्य परत - ओज़ोन रूपी सुरक्षा कवच औद्‌योगिक गैसों के प्रवाहन के कारण बिखर गये है इससे कैंसर रोग बढ़ सकते है भूज़ल भी विषैले हो जाएगा, और यह जीव-जन्तुओं केलिए भी घातक हो जाएँगे। इन सभी से आज ॠतुएँ भी बदले गए है। अम्लीय वर्षा एवं सुनामी का होना आनेवाले गंभीर प्रकंपन का आरंभित रूप ही है। बढ़ती गयी आबादी एवं कारखानों का उद्‌भव और शहरीकरण से उपजी प्लास्टिक संस्कृति ने हमारे पर्यावरण को पूरी तरह चकनाचूर कर दिया है।

वर्तमान दौर में हमारे प्रकृति को अन्य विकारों से स्पष्ट रूप में बचाए रखने केलिए मानव को सचेत बनाने का एकमात्र सामग्री साहित्य ही है। इसके संबंध में पं.हज़ारी प्रसाद द्‌विवेदी का मानना है - “जब-जब साहित्य के इतिहास में अवसाद या गतिरोध का युग आया है; तब-तब नये खेवे के साहित्यकारों ने उसमें खोये लोकवर्ता तत्व की पुन: प्राणप्रतिष्ठा करने के समर्थ प्रयोग किए हैं। आज के विश्व-साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि ऐसे प्रयोग पूर्व में चीनी, जापानी एवं भारतीय साहित्यों में तथा पश्चिम में रूसी अंग्रेज़ी आदि साहित्यों में अधिक संख्या में किए जा रहे है। ‘प्रकृति की ओर लौट चलो’ नामक आन्दोलन में फिर सहज लोक जीवन की ओर मुड़ने

का ही प्रयास है।"[1] इस प्रकार आज के साहित्यकारों का उत्तरदायित्व अधिक बड़ी ही है।

मनुष्य विश्व का अत्यधिक चिंतनशील प्राणी होने के साथ-साथ प्रकृति की अनूठी शान है। प्रकृति ने ही जीव-जन्तुओं, वनस्पति, नदी-पहाड़, वायु, जल आदि सब की निर्मिती की थी। इसलिए मनुष्य का कर्तव्य बनता है कि प्रकृति की उपभोग न करते हुए प्रकृति के विविध आयामी देन का विवेक सम्मत सन्तुलित उपयोग करें। समकालीन रचनाकार अपनी रचना के द्‌वारा प्रकृति के गंभीर बदलाव को प्रदर्शित कराते हुए मानव को अपनी पर्यावरण की दीर्घकालीन उपस्थिति केलिए उसे सचेत बनाने की कोशिश करते रहते है।

5.1.6. हिन्दी कहानी में पारिस्थितिकी और मानव

हिन्दी कहानी में आरंभ से ही परिस्थिति के विविध भावों का चित्रण देखने केलिए मिलता था। हिन्दी कहानी के श्रेष्ठ व्यक्तित्व प्रेमचन्द, अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि की अनेक रचनायें इसका उत्तम प्रमाण है। प्रेमचन्द के हर रचनाएँ गाँव की प्रकृति एवं वहाँ के शोषण भरी ज़िन्दगी का दस्तावेज़ है तो अज्ञेय की कहानियों में प्रकृति को मानव के प्रतिपक्ष के रूप में चित्रित किया है जैसे उनकी 'अमरवल्लरी' नामक कहानी में अमरवल्लरी और पीपल के वृक्ष के

---

[1] पं.हज़ारी प्रसाद द्‌विवेदी - विचारऔर वितर्क - पृ.203

प्रेम के द्वारा मानवीय मूल्यों की बात को पेश किया है। प्रकृति के नैसर्गिक प्रेम की स्थिरता एवं मानवीय प्रेम में बसे अस्थिर भावों को व्यक्त करते हुए वे कहानी में कहते है - “वे मानव है, हम वनस्पति, वे चलायमान है, हम स्थिर; पर साथ ही हम उनकी अपेक्षा बहुत दीर्घजीवी हैं, और हमारी संयम शक्ति भी उनसे बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी है। उनका प्रेम सफल होकर भी शीघ्र समाप्त हो जाता है, और हम में प्रेम की जलन ही कितने वर्षों तक कसकती रहती है।”[1] इस प्रकार लतिका नामक पात्र के द्वारा मानवीय जीवन की क्षणभंगुरता को दिखाने के साथ प्रकृति की अटूट प्रेम का पाठ अज्ञेय ने यहाँ पढ़ाया है।

उनकी ‘पगोड़ा वृक्ष’ नामक कहानी भी प्रकृति को एक माध्यम बनाते हुए मानवीय जीवन में होने वाले परिवर्तनों को ही चित्रित किया है। कहानी में एक विधवा का चित्रण है। वह अपने पति की यादों में खोकर पगोड़ा वृक्ष की छाया पर बैठी है। कहानी के अंत में एक क्रांतिकारी युवक के द्वारा उनके जीवन में होने वाले परिवर्तन को भी इस वृक्ष के माध्यम से ही कहानी में ज़िक्र हुआ है - “रात रात में पगोड़ा वृक्ष ने पुरानी केंचुल उतार फेंकी थी - या नये वस्त्र धारण कर लिए थे। आज उसकी कालिमा का चिन्ह भी कहीं नज़र नहीं आता था, वह फूलों से भरा हुआ, सौंदर्य से आवृत, सौरभ से झूम रहा था।”[2]

---

[1] अज्ञेय -अमरवल्लरी - अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ - पृ. 32

[2] अज्ञेय- पगोड़ा वृक्ष - अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ-पृ.320

कहानी में इसके अलावा पहाड़ों की जीवन रीति एवं वहाँ की स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का भी सशक्त वर्णन निहित है।

निर्मल वर्मा तो एक पहाड़ी प्रदेश में जन्म लेने से उनकी हर रचनाओं में प्रकृति से मनुष्य का अटूट संबंध स्पष्ट रूप में झलकता है। उनकी एक विशिष्ट कहानी है ‘जलती झाड़ी’। इस कहानी के पात्र एक विदेशी परिवेश में रहने वाले है। उसे देखकर लोग अक्सर उसे किसी दूसरे के अस्तित्व से पुकारते है। बार-बार वह इसी घटना के साक्षी होने से अंत में वह अपनी जन्म जात प्रकृति की ओर लौटते हुए कहानी में दिखाया है। जलती झाड़ी से कहानीकार साबित करते है कि मनुष्य जहाँ भी जाए एक दिन उसे शुरू किए जगह पर लौटना ही पड़ेगा।

निर्मल वर्मा की एक ओर कहानी है ‘परिंदे’। इसे ‘नयी कहानी’ की पहली रचना का नाम भी दर्ज है। कहानी का परिवेश एक हिल स्टेशन है इसकी प्रमुख पात्र लतिका अपनी असफल प्रेम को याद करके ज़िन्दगी बिताने वाली है। कहानी में डॉ.मुखर्जी जो वर्तमान में सशक्त रूप में जीनेवाले के रूप में निर्मल वर्मा जी ने ज़िक्र किया है। डॉ.मुखर्जी अक्सर कहते रहते है - “मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा ज़रूर जाऊँगा।... होम-सिकनेस ही एक ऐसी बीमारी है जिसका इलाज

किसी डॉक्टर के पास नहीं है।"[1] फिर लतिका पर आज सशक्त प्रेम करने वाले मि.ह्यूबर्ट से डॉ.मुखर्जी कहते है - "मैं कभी-कभी सोचता हूँ, इंसान किसलिए रहता है - क्या उसे कोई बेहतर काम करने को नहीं मिला। हज़ारों मील अपने मुल्क से दूर मैं यहाँ पड़ा हूँ यहाँ कौन मुझे जानता है.... यहीं शायद मर भी जाऊँगा। ह्यूबर्ट, क्या तुम ने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से पराई ज़मीन पर मर जाना काफी खौफनाक बात है .....।"[2] कहानी में हर वक्तव्यों के द्वारा अपनी प्रकृति की ओर वापसी के महत्व पर निर्मल वर्मा ने ज़िक्र किया है। इस प्रकार एक प्रतीकात्मक शीर्षक के द्वारा मानव एवं प्रकृति के सशक्त संबंधों का रेखांकन भी कहानी में देख सकते है।

आगे समकालीन रचनाकारों की रचनाओं में भी पेड़-पौधे, नदि-नाले, पहाड़, जानवर, वायू आदि के प्रदूषणों का ज़िक्र कराते हुए मानव को विषैले वातावरण से अपनी प्रकृति को बचाने केलिए उसे सचेत बनाने की उनकी कोशिश को और तेज़ करें।

5.1.7. समकालीन हिन्दी कहानी में पारिस्थितिक चेतना

पर्यावरण संपूर्ण जीवगत का नाम है। मानव भी इसमें एक अंग है। वर्तमान जीव जगत को ही देखकर हम स्पष्ट रूप में समझ सकते

[1] निर्मल वर्मा - परिन्दे - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ.10

[2] वही - पृ. 12

है कि कोई भी मानव अपने पर्यावरण से भिन्न जीवन यापन नहीं कर सकता।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्चतम शिखरों को प्राप्त करने वाले मानव केलिए कंप्यूटर का आविष्कार जीव जगत में स्पष्ट रूप में एक क्रांति ही मचाई थी। अंतरीक्ष और नक्षत्र गृहों में कब्जा करने से मनुष्य स्वयं को पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने वाले घोषित करने लगे। इससे समकालीन समाज भारतीय संस्कृति के मूलाधार बने सत्यं, शिवं, सुन्दरम को आज भूले हुए है। लोक संस्कृति के इतिहास को परखने से पता चलता है कि हम सदैव पर्यावरण के पूजारी थे। धरती और मानव का रिश्ता भी माँ और संतान के समान होने से ही बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध को सत्य की प्राप्ति प्राकृतिक रमणीयता से संपन्न वटवृक्ष के नीचे से ही प्राप्त हुआ था। नवउपनिवेशिक शिखरों में खड़े होने वाले आज का मानव इस प्राकृतिक सुखों को त्यागते हुए स्वयं इसके नाशक बने हुए है। साहित्य सदैव भविष्य के ऊपर चिन्तन करने वाले है। इसलिए भविष्य पर होने वाले पृथ्वी के प्रचण्ड नाशक रूप के ऊपर वह अत्यन्त ज्ञानी है। अतः समकालीन साहित्य अपनी परिस्थिति के ऊपर गंभीर रूप से चिंतित भी है। इस चिंतन के फल है - पारिस्थितिक वाद।

समकालीन हिन्दी साहित्य प्रकृति के इस नाशोन्मुख अवस्था के प्रति अत्यन्त विद्रोहित है। समकालीन हिन्दी कहानी में भी वन, नदि, पहाड़ों, आदि में समकालीन लोक समाज के द्वारा होनेवाले बिखराव को दिखाकर अपने पर्यावरण के ऊपर लोक संस्कृति को सचेत बनाने की कोशिश आज प्रबल है।

5.1.7.1. पेड़-पौधे

हमारा समाज तेज़ी से महानगर में तब्दील होता जा रहा है। परिणामस्वरूप हमारी हरियाली समाप्त होती जा रही है। इसके प्रति समाज को सचेत बनाने का प्रयत्न भी समकालीन रचनाकारों के माध्यम से हुआ है। कमल कपूर की 'नीम अब भी हरा है' नामक कहानी इसी उद्देश्य को सफल बनाने में पूर्ण है। कहानी के नायक देवधर अमेरिका में रहने वाले है। पाश्चात्य संस्कृति के डालर्स की चकाचौंध में आंकठ डूबी उनके परिवार से त्रस्त होकर चैन की तलाश में वह गंगातट पर बसी अपनी जन्मभूमि चंदनपुर की ओर लौट आता हैं। वह अपनी धरती पर पांव रखते ही वहाँ की बदली हुई भाषा एवं मोटर कारों की भीड़ से उभरी धूल से मलिन अपनी सड़कों को देखकर चौंक जाते है। लेकिन वह मन ही मन कहता है कि "बदलने दो, हमारे आंगन के नीम की छांव तो अब भी वैसी ही होगी, जिसे याद कर परदेस में भी उनके होंठ डॉ.राही की गजल गुनगुना उठते थे, आंगन

वाले नीम में जाकर अटका होगा चांद......"[1] इन यादों में अपने आंगन में कदम रखा देवधन ध्वस्त हो जाते है। उनके सघन नीम की जगह मात्र एक अधकटा तना खड़ा था, साथ ही जवाकुसुम, अमरूद भी गायब था और गुलाब, गेंदा, मोगरा, स्थलपद्म, तुलसी मैया का चौरा भी सूखा पड़ा था। इस दर्दभरी दृश्य को देखकर वह अपनी पुरानी आंगन की हरियालीपन को याद करते है "बाबा ने लगाया था यह नीम और अम्मा ने अपने चारों बच्चों की तरह ही पाला-पोसा था इसे। इसकी ताजी दातुनों से घर भर के सदस्यों के दांतों को मोतियों-सा चमकाया, अम्मा फिनायल की गोलियों की जगह इसके पत्तेदार टहनियाँ धरती थीं, गर्म कपड़ों के संदूकों में। खसरा या 'छोटी माता' के आगमन पर इसकी हरी-निरोगी टहनियों का झारा दिया जाता था गाँव भर के बच्चों को। बरसातों में नीम का काढ़ा बनाकर ज़बरन बच्चों को पिलाती थीं अम्मा ताकि फोड़े-फुँसी न निकलें... और सावन के आते ही हरी-पीली निंबोरियों का कालीन-सा बिछ जाता था आंगन में"[2] और अम्मा बिजली के बिल को कम करने केलिए भी इसकी छाव पर आकर बैठते थे। इन सारे दृश्यों से कहानीकार स्पष्ट करते है कि हमारी परिस्थिति हमारी शत्रु नहीं है इसकी वृद्धि से ही हमारी वृद्धि संभव है। शहरीकरण कोई बुराई नहीं है लेकिन देश की हरेपन का नाश करते हुए एक वृद्धि की फोरमुला को तेज़ रूप में अपनाना

---

[1] कमल कपूर - नीम अब भी हरा है- पृ.156

[2] कमल कपूर - नीम अब भी हरा है- पृ.156

वास्तव में हमारी समाज की बढ़ोत्तरी इसमें निहित नहीं है। प्रकृति की नैसर्गिक समृद्धि को बरकरार रखते हुए आगे बढ़ना ही पूर्ण रूप में समाज केलिए हित कर होगा क्योंकि मनुष्य और प्रकृति अलग-अलग बिन्दु नहीं है।

हमारी प्रकृति हमें इस औद्योगिक षड्यंत्र से बचाने की कोशिश हर समय करते हैं। प्रकृति की इस कोशिश को पूर्ण बनाने का प्रयत्न साहित्यकारों के माध्यम से भी सदा होता है। इस कहानी में भी एक दिन देवधर अपने आँगन आकर दुख से देखते है तो "नीम के कटे तने के शीर्ष पर कुछ नर्म-नर्म पतली-पतली टहनियाँ उग आई थीं, जिन पर ताजी नई हरी पत्तियाँ मुस्करा रही थी।"[1] एक माता अपराध बोध से भरे हुए पुत्र को एक बार बदलने का मौका तो ज़रूर देते हैं। पृथ्वीमाता भी यह मौका हर कटे तने के शीर्ष पर फिर से उडे ताजी नई हरी पत्तियों के द्वारा मानव को देते रहते है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार पाठकों के इस मौके को पूर्ण रूप से स्पष्ट करते हुए हरियाली के साथ मिलने वाले चैन भरे माहौल से समाज को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया पर ज़ोर देते हैं।

मृदुल गर्ग की 'करार' नामक कहानी अतुल्य गुणों से भरपूर हमारी प्रकृति की रक्षा करने केलिए यहाँ रुकने का निर्णय लेने वाले

---

[1] वही - पृ.160

एक विदेशी की कथा है। कहानी में दो आदमियों की यात्रा को ही प्रदर्शित किया है। उसमें एक है चैरी वह अमेरिका की रहने वाली है दूसरा हमारे ही देश के है। वे दोनों जोधपुर में थार रेगिस्तान के पर्यावरण और पानी की खेती पर एक सेमिनार केलिए आया था। बाद में दोनों में दोस्ती हुई तो सेमिनार के बाद जैसलमरे केलिए निकल पड़े। रास्ते में बस से निकल कर पैदल चलने लगे तो वे इस रेगिस्तान में खड़े पेड़ों को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। वहाँ कैस, झरबेरी, बबूल, रोहेड़ा, खेजड़ी भी था। खेजड़ी सचमुच रेगिस्तान की कल्पतरु के नाम से जाने जाते है। यह "पैदावार को नुकसान नहीं पहूँचाता बल्कि ज़मीन को और उपजाऊ बनाता है। बीज छींटते वक्त इसे काट-छांट कर जलावन केलिए लकड़ी इकट्ठी कर ली जाती है। जब तक फ़सल तैयार होती है, इसमें नयी शाखाओं का चौड़ा आच्छादन बन चुका होता है। चौड़ा घना नहीं। छितरा इतना कि सूरज की रोशनी में बाधक न बने। इसके तल में फसल और बढ़िया होती है। इसका हर हिस्सा काम आता है। पत्ते ढोर-डांगर खाते हैं तो फली इन्सान। लकड़ी जलावन बनती है और छाल दवा।"[1] इसे दैविक वृक्ष के रूप में माना जाता है। यह धर्म एक तरफ से इस पेड़ के संरक्षक है। कहानी के ज़रिए लेखिका बताती है - "सरकार जंगल के जंगल काटती जा रही है। देखा नहीं था, कायलाना झील के कैचमेंट एरिया में पत्थर की खुदाई हो रही थी। पक्के मकान समृद्धि के द्योतक है

---

[1] मृदुला गर्ग - करार - संगति-विसंगति - पृ.489

न।"[1] इसका नतीजा है सूखा और अकाल। आज सरकार संपन्नता की प्रतिनिधि है। हम खुद अपने उपनिवेश में भी है और विदेशी नवउपनिवेशिक षड्यंत्र के हिस्से भी है। आज अमेरिका जैसे देश अपना कचरा और जहर फेंकने केलिए गरीब देशों का इस्तेमाल करता है। लेखिका 'करार' नामक कहानी के द्वारा पाठकों को हमारी प्रकृति के प्रति सचेत रहने का पाठ पढ़ाने की कोशिश की है।

मृदुला गर्ग की एक और कहानी है 'इक्कीसवीं सदी का पेड़'। इस कहानी में इक्कीसवीं सदी में पहूँचते हुए पेड़ों की दर्दनाक कहानी को ही प्रस्तुत किया है। कहानी में पेड़ के कन्दे पर एक चीनी चिड़िया आकर बैठती है। वह कहती है कि फसल खाने से वहाँ के राजा ने हुकुम चलाई कि चिडिया को मार डालो। इस माहौल से अपने को बचाते ही वह यहाँ आए है। लेकिन फलस्वरूप वहाँ फसलों में कीड़े बढ़ गयी। लेकिन शासन के लोग अपना निर्णय वापस न ले सकी। यह घटना सुनकर पेड़ बहुत घबरा जाता है क्योंकि यहाँ की स्थिति भी कुछ कम परिवर्तित नहीं है। खुद पेड़ को ही लगता है कि इक्कीसवीं सदी में पहूँचकर लोगों की तरह वह भी अकेला है। "आजकल पेड़ों की हालत बीमार कैदियों जैसी हो गयी है। रोड़ी-पत्थर डालकर सड़कें बनीया जाती हैं तो किनारे खड़े पेड़ों के चारों तरफ माकूल कच्चा दायरा नहीं छोड़ा जाता। जड़ों से रोडी यूं साट-साट कर बिछायी जाती

[1] वही - पृ.493

है कि तन फैलाने की क्या कहें, सांस तक लेना दूभर हो जाता है। तपेदिक के मरीज़ की तरह पेड़ कमज़ोर पड़ते जाते है।"[1] आज लोगों में ऐसा बदलाव आया है कि वह पेड़ों को आवश्यक ही नहीं मानते। इसका नतीजा है "एक मंजिला कमान तोड़ कर ऊँचे-ऊँचे हवाई महल बनाये जा रहे हैं। तोड़ फोड़ का मलबा पेड़ों की जड़ों में फेंका जा रहा है। सड़कें चौड़ी की जा रही है, फ़लाईओवर बन रहे हैं। चौड़ी सड़कों पर स्कूटरों, गाड़ियों, ट्रकों की कतार पर कतार चली आ रही है।... कागज़ के पोस्टर और प्लास्टिक के थैले पेड़ों की जड़ों में डाल रहे है।"[2] लेखिका ने इस कहानी के द्‍वारा प्लास्टिक के अधिक प्रसार से त्रस्त प्रकृति एवं जानवरों का ज़िक्र करते हुए मानव को इसके खतरों से सचेत बनाने का कोशिश की है।

स्वयंप्रकाश की एक कहानी है 'कहाँ जाओगे बाबा'। इस कहानी में शहरीकरण के बढ़ते प्रभाव से उभरते प्रदूषित प्रकृति के प्रति साधारण जनता का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की हैं। हमारे समाज में एक विश्वास है कि घर में एक नीम का पेड़ ज़रूर होना चोहिए। तभी घर में ऐश्वर्य एवं समृद्‍धि होती है। इस ऐश्वर्य एवं आराम को अब तो नहीं है अवकाश प्राप्ति के बाद भी तो इसे हासिल करने के उद्‍देश्य से ही मास्टर रामरतन वर्मा अपने शहर से पन्द्रह किलोमीटर दूर हरियाली से भरे एक स्थान में अपने मकान की

---

[1] मृदुला गर्ग - इक्कीसवीं सदी का पेड़ -संगति-विसंगति - पृ.771

[2] वही - पृ.772

निर्मिती करते है। अपने मकान के प्रति उनके सपने कुछ इस प्रकार थे - "कि बड़ी सी स्टडी होगी लाइब्रेरी सहित, बीच में खूब हवादार हॉल होगा, घर के चारों तरफ फूलों की क्यारियाँ और सब्जियों की बाड़ियां होगी..... आगे पीछे नीम के झूमते हुए पेड़ होंगे और अहाते में ही महादेव जी का छोटा सा मंदिर होगा... सूर्योदय सूर्यास्त के रंगीन दृश्य, पंछियों की चहचहाहट, शुद्ध हवा और गहरी शांति। इसी की तो चाहत थी।"[1] इस शुद्ध हवा का भाग बनने केलिए राम रतन वर्मा जल्दी से अवकाश प्राप्ति के बाद वहाँ पहूँचता है तो उसे लगा किसी और के घर में वह आ गए है। उनके बेटे नवीन ऑफीस चलने के बाद वह मकान की चक्कर लगाते देखा कि - "नीम के पेड़ नहीं है ? नीम के पेड़ के बगैर कैसा मकान ? और मच्छर ? मच्छर क्यों? और कंस्ट्रक्शन का क्या मायने है?"[2] उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। अपना मकान अनेक कारखानों एवं चॉकलेट-कोल्डड्रिंक के विज्ञापनों में फँसा हुआ उसे नज़र आया। कहानी में स्वयं प्रकाश शहरीकरण के पीछे दौड़कर समृद्धि को प्राप्त करने की मनुष्य के चाह अंत में हमारी प्रकृति को किस मोड़ पर पहूँचा दिया है इसे भी व्यक्त करते हैं। अधिक पैसे की प्राप्ति के सपने ने ही हमारे समाज में अनेक कारखानों की निर्मिती की थी। बदले में हमें न समृद्धि मिली या आराम। मिला तो बस विषैले गैस। इससे मानव रोगी बने और

[1] स्वयं प्रकाश - कहाँ जाओगे बाबा - आधी सदी का सफरनामा - पृ.40-41

[2] वही - पृ.50-51

प्रकृति का भी नाश हुआ। बदले में हमारे वातावरण में भी काफी बदलाव हुआ। गर्मी बढ़ी। तो मनुष्य ने कूलर एवं एयरकंडीशनर लगवाया। अप्राकृतिक आरामों की इस फोरमुलाओं से न चैन मिला तो हमने ओडोमस भी खरीदना शुरू किया। कहानीकार इस कहानी के बदले समाज से पूँछना चाहते हैं कि इतने सारे अकृत्रिम वस्तुओं के उपयोग से मानवराशि ने समृद्धि के कदम को छू लिया या नहीं ? कहानी से साफ व्यक्त होता है कि उक्त रूप से प्रकृति के संरक्षण में ही मानव की समृद्धि निहित है।

मृदुला गर्ग की 'विनाश दूत' नामक कहानी प्रकृति के प्रति मानव की उदासीनता को प्रस्तुत करने वाले है। प्रकृति की अतुल्य शक्ति का चित्रण करती हुई वह कहती है - "अपने निरंकुश अहंकार से उन्मुक्त वह भूल गया है कि प्रकृति तभी देती है जब नतमस्तक हो कर उससे मांगा जाये, नहीं तो प्रहार कर उठती है। प्रकृति से युद्ध किया ही नहीं जा सकता क्योंकि जो प्रकृति के विरुद्ध है, अंततः समझ लो, वह नहीं है। खिलवाड़ भी नहीं किया जा सकता उससे, खेल के मैदान की कृत्रिम सीमाएँ प्रकृति नहीं मानती। प्रहार करने पर बाध्य हो तो कहीं भी कर सकती है, तीसरी दुनिया में भी। पर प्रहार करती तभी है जब और रास्ता बचे नहीं। और रास्ता बंद करने का काम केवल मनुष्य करता है, अहंकारी, अल्पज्ञ और लोभी मनुष्य।"[1]

---

[1] मृदुला गर्ग - विनाश दूत -संगति-विसंगति - पृ.474

कहानी में शक्तिशाली देशों के निर्णय से प्रयोगशाला बनने केलिए तुले हुए तीसरी दुनिया एवं इसके फलस्वरूप हुए भोपाल गैस त्रासदी पर लेखिका ने ज्वलंत प्रश्न उड़ाया है। कहानी एक मेघ और कवि के वार्तालाप से ही आगे बढ़ते है। वर्तमान के मेघ कालिदास के जमाने की तरह प्रियतमा को संदेश पहूँचाने केलिए तैयार नहीं है। आज प्रकृति के ऊपर मनुष्य द्वारा किया जाने वाले क्रूर प्रवृत्तियों के ऊपर सख्त विद्रोह यहाँ मेघ कवि के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए दिखाया है। यह भी एक सत्य है कि भोपाल गैस त्रासदी का दुष्प्रभाव उन स्थानों पर न्यूनतम रहा जहाँ पेड़-पौधों का बाहूल्य था। वृक्षों की उपस्थिति विषैली गैसों को आत्मसात करने में पूरी तरह समर्थ है। इसलिए कहानी के द्वारा लेखिका ने स्पष्ट किया है कि प्रकृति में प्रयोग करना मानवराशि की उन्नति केलिए हितकर नहीं।

राजेश जैन की 'मन मोबाईल' प्रकृति के महत्त्व को प्रस्तुत करते है। कहानी के प्रमुख पात्र महानगर में रहने वाले है। वह अपने ऑफिस केलिए जिस सड़क से जाते है उनके दोनों ओर कई वृक्ष है वह हर वृक्ष से बातों भी करते है। कई सालों से गुलमोहर के तीन पेड़ उनके अत्यन्त प्रिय मित्र है। पहला और दूसरा हरा भी है और फूलों से भरा है। लेकिन तीसरा पेड़ हरा भरा भी नहीं है। उसमें फूल तक नहीं है। इसके प्रति वह अत्यन्त चिन्तावान भी है। कहानी के नायक के द्वारा महानगर के चित्रण करते हुए लेखक बताते है - "दिल्ली

शहर की सड़कों पर अनिल ने कई दुर्घटनाग्रस्त वाहन और व्यक्ति देखे थे। थोड़ी देर केलिए वह ठिठक जाता, चेतना स्तब्ध हो जाती ! दफ्तर जाते समय कभी देखता कि पूरा का पूरा ट्रक सड़क के डिवाइडर में धँसा पड़ा है, कोई कार पलटी पड़ी है। एक बार तो वह यह देखकर दहल गया कि सामने से आती बस ने ऑटोरिक्शा को टक्कर मार कर गेंद की तरह उछाल दिया।"[1] इतनी अस्तव्यस्तताओं के बीच सड़कों में बिजली, पेयजल के नल के निर्माण केलिए कई जगहों पर सड़कों की खुदाई भी कर देते है। वर्तमान मनुष्य अपनी सुविधाओं केलिए जिन-जिन वस्तुओं का निर्माण किया था वह सभी से उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो रहे है। इसलिए वह अत्यधिक पेड़ों को काट कर अधिक सुविधाजनक रास्तों को बनाने केलिए सोच रहे है। कहानीकार ने इस कहानी के द्वारा मनुष्य निश्चिन्त रूप से की जानेवाली क्रूर प्रवृत्तियों पर उन्हें सोचने पर बाध्य बनाया है।

राजेश जोशी की कहानी है 'कपिल का पेड़'। इस कहानी में कपिल नामक पात्र पेड़ों के प्रति एक तीव्र प्रेम भाव को लेकर जीनेवाले आदमी है। वह कई सालों से एक मकान की तलाश में है अर्थात् मकान से ज़्यादा एक पेड़ की तलाश में। उनके घर के आसपास दूर-दूर तक कोई पेड़ नहीं है। वह एक लड़की से प्रेम भी करते है। उसका

---

[1] राजेश जैन - मन मोबाईल - नया ज्ञानोदय - सितंबर 2003 - पृ.100

नाम है अनिता। कपिल के अनुसार उसके लिए वह एक पेड़ के प्रतिरूप ही था।

कहानी के द्वारा लेखक कपिल के वक्तव्यों के रूप में संपूर्ण समाज को चेतावनी देते हुए कहते है - "एक दिन सारे देश को रेगिस्तान दबोच लेगा, पेड़ काटने वाले जाहिलों, पेड़ के खिलाफ लड़ाई बन्द करो।"[1] हर महीने मौसम में होनेवाले बदलाव, बाढ़, सुनामी, भूकंप जैसे प्रकृति के प्रचण्ड रूपों से प्रकृति भी हमें हर समय चेतावनी देती है। कहानीकार के इन कथनों के द्वारा समाज को अपनी प्रकृति के संरक्षण के प्रति सहज बनाने की कोशिश की है।

5.1.7.2. पशु - पक्षी

आज का ज़माना इतना बदल गया है कि रोज़ ही गुज़रने वाले गली के ऊपर भी मनुष्य श्रद्धावान नहीं है। वर्तमान मनुष्य को अपनी प्रकृति की ओर खीझने की एक कोशिश है समकालीन लेखिका अलका सरावगी की 'कहानी की तलाश में' नामक कहानी। कहानी में लेखिका एक लड़की के द्वारा अवकाश प्राप्त एक पुरुष को अपनी ही गली का सैर कराते हुए हमें दिखाया है। कहानी के प्रमुख पात्र वह लड़की इस युवक के सामने वाले मकान पर ही रहता है। इतने सालों के बाद भी उन दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई थी। अवकाश प्राप्त

---

[1] राजेश जोशी - कपिल के पेड़ - पृ.139

करने के बाद वह अक्सर उसे देखते थे वह जानना चाहा कि हर दिन वह लड़की कहाँ जाती है। एक दिन वह उस लड़की का पीछा करती है तो तभी जान जाते है वह एक अंधी गली की ओर ही जाती है। असल में वह ऑफिस केलिए रोज़ इसी अंधी गली के सामने से ही गुज़रते थे। लेकिन बरसों बाद उस लड़की का पीछा करती हुई वह यहाँ आया तो तभी उसे लगा कि यह गली इतना सुन्दर है। "उस गली में दोनों तरफ बहुत पुराने-पुराने पेड़ हैं और वह गली गाड़ियों की आवाजाही बहुत कम होने के कारण बहुत शांत है।"[1] कुछ दूर चल कर वह लड़की एक पेड़ को देखने लगी उसके साथ "उस पुरुष को भी रुकना पड़ा और ऊपर देखने से पेड़ से आती किसी चिड़िया की विचित्र आवाज़ सुनाई दी, जो अब तक मैं ने कभी नहीं सुनी थी। अचानक मुझे एक गिलहरी दिखाई दी, जो पूँछ उठाए यह आवाज़ कर रही थी।... उस दिन के बाद मैं कई बार इस गली में शाम को घूमने आया हूँ और हर आवाज़ पर चौंककर मैं ने ऊपर देखा है। इसी चक्कर में मैं ने एक कठफोड़वा, एक पीली चिड़िया और एक नीली चिड़िया देखी है"[2] - कहानी को पढ़ने से मालूम होता है कि इस पुरुष को पद प्रदर्शित करने वाली लड़की और कोई नहीं स्वयं लेखिका ही है। कहानी में लेखिका उस पुरुष के द्वारा आज के मनुष्य की ओर आनेवाले

[1] अलका सरावगी - कहानी की तलाश में - पृ.10

[2] अलका सरावगी - कहानी की तलाश में - पृ 10.

पीढ़ि को भी हमारे नष्ट होती प्रकृति की ओर खींझने की कोशिश की है।

प्रकृति मनुष्य केलिए सब सुविधाएँ प्रदान करती है बदले में मनुष्य प्रकृति की जान तक लेने कोलिए तुले हुए हैं। आज की प्रकृति का यह प्रचण्ड रूप मनुष्य के किए हुए कर्मों के फलस्वरूप प्रकृति के हिसाब की माँग है। लेखिका इस प्रज्ज्वल अवस्था से आने वाली पीढ़ि को भी सचेत बनाने का प्रयत्न इस युवक के वक्तव्यों से प्रकट की है "मैं यह भी चाहता हूँ कि अपने लड़के को उस अंधी गली की चिड़ियों के बारे में और बादाम के लाल पत्तों के बारे में बता दूँ जिससे उसे इतने सालों का घाटा न सहना पड़े।"[1] लेखिका इस कहानी के द्वारा आने वाली पीढ़ि को इस घाटा से मुक्त कराना चाहती है।

ए.असफल की 'प्रत्याशा' नामक कहानी पंछियों के जीवन पर आधारित है। इस कहानी में एक कार्यालय में काम करने वाले तीन मित्रों का चित्रण किया है इन का नाम - नामसिंह, मोहकम, नाम शर्मा है। ये तीनों कार्यालय में रहने वाले कबूतरों का सशक्त प्रेमी है। इसलिए वे लोग जोड़ों को देखने केलिए छुट्टी के दिनों में भी कार्यालय आते हैं। इन तीनों में मोहकम अविवाहित है और साथ-ही-साथ वह कबूतरों पर कविता भी लिखते है।

"...और एक बार तो एक सूची कविता ही बन पड़ी!"

---

[1] वही - पृ.13

"मार्च में हर साल ट्यूब लाईट के ऊपर
दो नई चिड़ियाँ आकर घोंसला बनाती हैं...
जो बना नहीं बिखर जाता है तिनका-तिनका
हर सुबह मेरी मेज़ पर बटोरकर आलमारी में रख देता हूँ
ताकि उन्हें सहूलियत हो, पर घोंसला वहाँ टिकता नहीं
ट्यूब लाइट के ऊपर ..... दो नई चिड़ियाँ
आकर घोंसला बनाती हैं!"[1]

इस प्रकार कहानी के हर शब्द में कबूतरों की जीवन रीति एवं उनके संघर्षों का ज़िक्र चिपा है। कार्यालय में एक बार चोरी होते है तो इस सिलसिले से संबंधित एक चौकीदार को कार्यालय में रखते है। वे इन कबूतरों को मारते है तो तीनों मित्र इनके प्रति संघर्ष करते है। इस प्रकार कहानीकार ने इस कहानी के द्‌वारा प्यार भरे हुए पंछियों के जीवन का चित्रण करते हुए पैसे की लालच में अपने ही मित्र का वध करने केलिए निकलने वाले आज के मनुष्य को नया पाठ पढ़ाने की कोशिश की है। इस कहानी में भी पंछियों के प्यार भरी जीवन से प्रेरणा पाकर इन तीनों मित्रों के जीवन में भी काफी बदलाव आते हुए लेखक ने ज़िक्र किया है। महानगरीय माहौल में जानवरों के प्रति की जाने वाले अत्याचारों को याद दिलाते हुए हम भूले गए एक स्नेह की, विश्वास की यादों को ताजा बनाने की कोशिश भी कहानी में मुखर है।

---

[1] ए.असफल - प्रत्याशा - नया ज्ञानोदय - अप्रैल 2003 - पृ.86

सरोज खान 'बातिश' की 'एक चिड़िया का शोकगीत' नामक कहानी परिन्दों के जीवन पर आधारित है। कहानी में आज ज़ोर से चल रहे पंछियों के व्यवसाय को चित्रित किया है। पंछियों को पकड़ना, उसे पिंजडों में बंद करके बेचना, इस प्रकार उसकी आज़ादी को छीनना आज के लोगों का शौक बन गया है। मानव के इन सभी विकृतियों में पड़कर जीवन पिंजड़ों में व्यतीत करने वाले पंछियों की जीवन व्यथा को ही कहानी में पेश किया है।

कहानी के नायक परिंदों के प्रेमी थे इसलिए वह तीन जोड़े परिन्दे खरीदते हैं। उसमें एक जोड़ा पहाड़ी गौरेया का है। यह चिड़ियों में बहुत ही आकर्षक है। कहानी के नायक असल में इन पंक्तियों को आज़ाद करना चाहता था लेकिन वे डरते थे कि उसे चील, कैवे नोच न ले। बाहर की स्वतंत्र चिड़ियों को देखकर पिंजडों में बंद पंछी बहुत ही उछलते थे। कहानीकार नायक की सोच को प्रकट करते हुए रेखांकित करते है - "महीना बीतने लगा किन्तु वह पहाड़ी गौरे या पिंजरे का अभ्यस्त नहीं हो पाया था। वह उदास और बेचैन पिंजरे से लड़ता रहा। आकाश और नीम के पेड़ को देखता रहा। नीम के पेड़ से मैना, बुलबुल और तोते की आवाज़ सुनकर वह फड़फड़ाता हुआ उड़ - भागने की चेष्टा करता रहा। उसके इस संघर्ष और बेचैनी को देख मुझे खुद भी हैरत और हैरानी होती। कभी-कभी दया भी आती। फिर

सोचता, दाम देकर खरीदा है वैसे भी इन्हें कष्ट तो नहीं है।”[1] उनके इस प्रकार की सोच ने चिड़ियों के मौत का कारण बन जाता है। इस घटना में नायक आज़ादी केलिए लड़ने वाले गाँधी एवं नेताओं की याद दिलाते है। लेखक कहानी के द्वारा वाणिज्य दृष्टि से मनुष्यों द्वारा निरीह प्राणियों पर की जाने वाले अमानवीयता का ज़िक्र कराते हुए यह समझाने की कोशिश है कि आज़ादी प्रत्येक प्राणी में निहित संपत्ति है। उसे छीनना मानव को श्रेष्ठ नहीं बनाता।

एस आर हरनोट की कहानी ‘माँ पढ़ती है’ गाँव की सांस्कृतिक संपन्नता को दर्शाने वाली है। कहानी में एक लेखक का चित्रण किया है वह अपने पुस्तक प्रकाशन के समारोह में अपनी सोसाइटी में ऊँचा दिखाने केलिए खुद अपनी माँ को नहीं ले जाते क्योंकि वह “सुबह का सारा वक्त गोशाला में बीतता है। पशुओं को घास-पत्ती देते। गाय दूहते। गोबर फेंकते।”[2] दिन में अधिक समय इस प्रकार गाय के साथ बिताने से उनके शरीर में सदा गोबर-मिट्टी का गंध रहता है।

उनके अनुसार गंवारू जीवन के प्रति उनका नज़रिया कुछ इस प्रकार है - “गाँव-पहाड़, गोबर-मिट्टी, खेत-खलिहान, कागज़ों की पीठ पर उगते अच्छे लगते हैं, पर वास्तविक जीवन में तो नरक है.... नरक।”[3] अपने जन्म भूमि को नरक बताने वाले आज के मानव का

---

[1] सरोज खान बातिश - एक चिडिया का शोकगीत -नया ज्ञानोदय - नवंबर 2003 - पृ.107

[2] एस.आर.हरनोट- माँ पढ़ती है - संग्रथन - सितंबर-अक्तूबर-2011 - पृ.24

[3] एस.आर.हरनोट- माँ पढ़ती है - संग्रथन - सितंबर-अक्तूबर-2011 - पृ.26

मानना है वहाँ सदा अज्ञानी ही रहते है। ज्ञान प्राप्ति एवं शोहरत महानगर में ही मिल सकते है। वर्तमान समाज के इस विश्वास को तोड़ते हुए हरनोट जी ने कहानी में दिखाया है कि अपनी पुस्तकों की प्रतियाँ पढ़ने केलिए वह अपनी माँ के हाथ में देती है तो माँ कहती है मैं तुम्हारे सारे पुस्तक पढ़ चुकी हूँ उनका यह उत्तर सुनकर वह चकित रह जाते है।

कहानीकार ने कहानी में स्पष्ट शब्दों में दिखाया है कि गाँव में सब संबंधों का आधार स्नेह है। उससे मानव को उन्नति ही प्राप्त होते है। भारतीय संस्कृति के अनुसार गाय ऐश्वर्य का चिह्न है। गाँव में एक घर की संपन्नता का दर्ज हम वहाँ की गाय की गणना करके समझ सकते है। भारत में गाय को देवता समान पूजते भी है। इस प्रकार अदम्य विश्वास से बंधी एक संबंध को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहानीकार निरर्थक महानगरीय जीवन के प्रति अनेक प्रश्न छोड़ते है ।

5.1.7.3. पहाड़

बटरोही की एक कहानी है 'न लौट पाना'। इस कहानी में पात्रों के द्वारा कहानीकार ने यह बताने की कोशिश की है कि वर्तमान को अतीत की प्रकृति के प्रति लौट पाना काफी मुश्किल सा काम है। कहानी के नायक अरुण उनकी पत्नी प्रियंवदा और डॉ.सरफराज

अहमद और पत्नी पार्वती की हनिमून भी बिनसर पहाड़ी जो एक बेहद आकर्षक पर्यटक स्थल है वहाँ हुई थी। इसके चारों ओर छोटी-बड़ी अनेक हरी भरी चोटियों से घिरा हुआ बिनसर - शिखर समुद्र तट से लगभग आठ हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित इलाके के सबसे ऊँचे शिखरों में से एक है। रास्ते भर अनेक पहाड़ी जल-स्रोत तथा बंजा-बुरुंश और काफल के घने पेड़ और कुछेक आकर्षक झरने भी हैं। प्रकृति की इस सुन्दर ऊष्मलता से जोड़कर ही इन दो जोड़ियों ने अपनी ज़िन्दगी की शुरूआत की थी। अरुण पार्वती को पहले से जानते थे। वे उनसे ही शादी भी करना चाहते थे यह जानते हुए पार्वती के मन में भी उनके प्रति आदर एवं स्नेह था। लेकिन उनका कट्टर ज़िद दी कि वह एक पी.एच.डी प्राचीन इतिहास की प्रवक्ता होने के कारण पार्वती की घरवाले की ओर से ही पहले प्रस्ताव आना चाहिए। इससे यह शादी नहीं हो पायी।

लेकिन काल के बदलने के अनुसार बिनसर पहाड़ी में थोड़ा बदलाव आ गया- “खासकर कर जब से मोटर सड़क और कुमाऊँ मंडल विकास निगम का पर्यटक आवास गृह बन गया है। लोग अब यहाँ शराब की बोतलों के साथ कारों या कभी-कभी सरकारी जीपों में धमक पड़ते हैं। या अपनी बीवियों। पतियों को घर छोड़कर कुछ समय के लिए जिन्दगी की एकरसता मिटाने की चाह लिए अपने अस्थायी

विषय-लिंगी मित्रों के साथ मौज-मस्ती केलिए आते हैं।"[1] पहाड़ों की सुन्दरता का वध करके उसे केवल प्लास्टिक के डेढ बनाने केलिए तुले हुए आज का आदमी अपने अतीत को पूरी तरीके में भूल चुका है। जैसे कहानी में भी बुढापे में बिनसर आए विधवा पार्वती - आज वह एक प्रोफेसर बन गए है उसे देखते हुए अरुण वह भी तलाकशुदा है उनके पास जाकर मिलता है तो वह उन्हें पहचानने में असफल हो जाती है। अर्थात् पार्वती अपनी पति की यादों में खोकर अपने अतीत अरुण को वर्तमान के साथ नहीं जोड़ना चाहती उसी तरह आज मानव पूरी तरह वर्तमान में रहना चाहते है। 'न लौट पाना' नामक कहानी एक भारतीय नारी के श्रेष्ठ भावों को चित्रित करने के साथ अतीत को वर्तमान से जोड़ने की प्रवृत्ति आज विधवा बनी नारी अपने पुराने स्नेही को वर्तमान में अभी भी न जोड़ना चाहते उसी तरह मुश्किल वश काम बन गया है - वास्तव में वर्तमान मनुष्य को अपनी प्रकृति के प्रति लौट पाना। इस समकालीन प्रज्ज्वल मुद्दा को प्रस्तुत करने में यह कहानी पूरी तरह सफल है।

संजीव की 'आरोहण' नामक कहानी भी पहाड़ों के जीवन पर आधारित है। कहानी के पात्र रूपसिंह शहर में जीवन बिताते हुए ग्यारह साल हो गए। अब वह अपने दोस्त के साथ अपने भाई से एवं गाँव में बिताए बचपन के कुछ यादों को ताज़ा बनाने केलिए वापस अपनी जन्मभूमि में पधारे है। लेकिन वापस आए रूपसिंह देखते हैं कि

---

[1] बटरोही - न लौट पाना - हिडिम्बा के गाँव में - पृ.53-54.

गाँव पूरी तरह शहर में तब्दील हो गए है और गाँव वाले भी। स्वयं उनके भाई के जीवन भी शिथिल होते नज़र आते है।

कहानी में वर्तमान जीवन की तनावों को प्रस्तुत करने के साथ, मनुष्य कितनी भी मोडन बन जाए उसके नैसर्गिक गुणों को वह भूलता नहीं इस सत्य को भी दर्शाते है। इसका सशक्त उदाहरण है इस कहानी के पात्र रूपसिंह। कहानी में दिखाते है कि रूपसिंह पहाड़ों की विभिन्न जातियों से परिचित है। पहाड़ी प्रदेश में जन्म लेने के कारण आसानी से इन ग्यारह सालों के बाद भी वह पहाड़ों में चढ़ते है। लेकिन उनके दोस्त इस परिश्रम में सफल नहीं होते। रूपसिंह के द्वारा पहाड़ों की सुन्दरता को भी इस कहानी में अंकित किया है - “सामने के पहाड़ों पर बादलों के पंख लग गये थे, जो झर-झर कर उनके अगल-बगल उड़ रहे थे। नये घास, लताएँ और पेड़ों की कही फीकी, तो कहीं चटक हरियाली समेटे पहाड़ कहीं कच्चे, कहीं पक्के। नीचे कई नदी बह रही थी शायद सूपिन।”[1] इस कहानी के द्वारा संजीव ने वर्तमान समाज में अपने जन्मजात गुणों को भूलकर नवउपनिवेशिक जालों में पड़ने वाले साधारण जनता को अपने जन्म से ही मिले नैसर्गिक शक्तियों से पुनः याद दिलाते हुए उन्हें अपनी ‘प्रकृति की ओर वापसी’ का प्रयत्न किया है।

---

[1] सजीव - आरोहण -पृ.113.

5.1.7.4. फल - फूल

हमारे समाज में विषैले वस्तुओं का प्रयोग ज़्यादा से ज़्यादा रूप में हो रहा है। इसके प्रति मानव का ध्यान आकर्षित करने का ‘गीतांजली श्री’ की एक कोशिश है ‘तितलियाँ’ नामक कहानी। इस कहानी में एक विदेशी युवक का चित्रण है उनका मानना है कि औरत तितलियों की तरह है।

हमारी धरती वास्तव में हमसे कोई छल नहीं करते। न हमारे नाश केलिए विषैले फल देते है न विषैले फूल खिलाते है। लेकिन व्यवसायीकरण ने हमारी प्रकृति को काफी बदला दिया है। “हवा साफ, पानी साफ, धोने की यहाँ ज़रूरत नहीं है, बस पोंछो और काटो। दाँत से। अन्दर गुलाबी, मीठा नहीं, सीठा पर ताजा। रसीला। जहाँ से मैं आ रही हूँ फल मीठे हैं चूँकि उनमें शीरीनी इंजैक्शन लगा है और चमकीले है चूँकि उन पर किसी जहरीले रंग में दमक पोत दी है।”[1] यह आज की सच्चाई बन रहे है। आज हमारे बीच में मिलने वाले फल, फूल, चावल, सब्जियाँ सभी कई दिनों तक खराब नहीं हो जाते। देखने में भी वह अधिक पृष्ठ भी नज़र आयेंगे। लेकिन इनका राज अधिक लाभ के उद्देश्य से उपजा कुछ विषैले स्प्रे और इंजेक्शन है। आज कोई फल को हम बिना धोये खाते है तो आदमी मर भी सकते है। लेखिका स्पष्ट रूप में बताना चाहती है कि इस प्रकार से मानव जो लाभ को

---

[1] गीतांजली श्री - तितलियाँ - यहाँ हाथी रहते थे - पृ.118

कमाते है असल में वह लाभ नहीं है हमारे ही नाश के आरंभित रूप है।

5.1.7.5. नदी - नाले

पैसे के पीछे भागने वाले मनुष्य को अपनी प्रकृति के कोमल भावों के प्रति मोह जगाने की एक कोशिश है मृदुला गर्ग की 'बर्फ बनी बारिश' नामक कहानी। कहानी की नायिका बिन्नी अपने देश के हर कण से बर्फ से बारिश से नदी से सभी से मन ही मन प्रेम करने वाली है। उनके तीन बेटे है, उनके पहले, दूसरे बेटे सुरेश-रमेश एक के बाद एक दो साल के भीतर स्कॉलरशिप पाकर अमेरिका चले गये छोटे बेटे विजय भी उनके पीछे दो-तीन सालों में चले जायेंगे। उनके पति अमरनाथ हर क्षण बिन्नी में शहर के प्रति उत्सुकता जगाने की कोशिश भी करते है। बिन्नी एक टीचर है इसलिए अमर कहते है कि "यहाँ अठावन पर रिटायर होना पड़ेगा। वहीँ रहूँगा तो पैंसठ तक काम कर सकूँगा। हाथ में पैसा आ जायेगा तो अपने घर बनायेंगे, जैसा तुम चाहोगी वैसा।"[1] लेकिन बिन्नी की जन्मभूमि के प्रति अदम्य चाह को बदलने में अमरनाथ सफल नहीं होते। बिन्नी का यह कथन इसका स्पष्ट उत्तर है - "कुछ नहीं। न मैं देश केलिए कुछ कर रही हूँ, न देश मेरे लिए। पर इसका यह मतलब नहीं कि भाग कर किसी संपन्न प्रदेश में शरण लूँ। मेरी मर्ज़ी है, यही रहूँगी। चिढूंगी,

[1] मृदुला गर्ग - बर्फ बनी बारिश - संगति-विसंगति - पृ.574

खीजूंगी, बुराई दिखेगी तो बुराई करूँगी, बेबात खुश रहूँगी पर रहूँगी यहीं।"[1] मृदुला गर्ग ने बिन्नी के इस मत से महानगर की रौनक के पीछे भागने वाले हर व्यक्ति के मन में अपनी प्रकृति के प्रति उन्मुक्त प्यार जगाने की कोशिश की है।

5.1.7.6. वायू

स्वयं प्रकाश की 'बलि' नामक कहानी पारिस्थितिक प्रदूषण को दर्शाने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। कहानी के प्रमुख पात्र गाँव में रहने वाली एक लड़की है। उनके बचपन में तो गाँव घनी हरियाली से संपन्न था। अनेक सुन्दर फूलों के सुगन्ध से गाँव भरे हुए थे। लेकिन कुछ विदेशी यहाँ आकर पेट काटकर अनेक कारखानें बनवाने लगे। गाँववालों को झूठी समृद्धि की सपने दिखाकर यहाँ की धरती की खुदाई करने लगे। जानवरों को भी अधिक ढंग से मारने लगे।

कहानी के प्रमुख पात्र लड़की गाँव में आए एक विदेशी परिवार में काम करती थी। कुछ समय के बाद वे इन लोगों के साथ विदेश में भी गये। कुछ ही महीनों में वे वापस अपने गाँव पहूँची तो वह मन ही मन सोचने लगी कि वही कोयल, आम, खेत, तालाब, नदी, फूलों के निर्मल सुगंध ही देखने को मिलेगा लेकिन "अचानक उसे लगा, वह अपने आपको बहला रही है.. सुगंध नहीं दुर्गंध है.... कही कुछ सड़ रहा है..हवा में कुछ सड़ रहा है... जैसे कहीं किसी जानवर की लाश

---

[1] वही - पृ.583

सड़ रही हो... उसे लगास मक्खियाँ बहुत हैं। डिब्बे में भी। वे वाकई थीं। उसे लगा, उमस बहुत है। उसे लगा, उसके प्यारे देश ने उसके स्वागत में बाहें नहीं फैलाई। उसकी मातृभूमि ने उसे उछाह में आकर अंक में नहीं भर लिया।"[1] अपने गाँव की इस बदले हुए दृश्य देखकर वह दंग रह जाते है। कहानी इस प्रकार शहरीपन से उभरने वाले प्रदूषण की समस्या के साथ समकालीन दौर में स्त्री शोषण के विभिन्न रवैये को भी सामने लाता है।

मृदुला गर्ग की एक कहानी है 'मेरे देश की मिट्टी आह'। यह कहानी नगर एवं गाँव के वातावरण की भिन्नता को दर्शाते हुए अपने देश की मिट्टी के प्रति अदम्य प्रेम जताने की कोशिश है। कहानी की नायिका अपनी नानी के साथ गाँव में रहने वाली थी। नानी की मृत्यु के बाद वह शहर के एक रिश्तेदार के यहाँ पहूँचते है तो शहर के तौर तरीकों को देखकर वह हैरान हो जाती है। उनकी दादी हुक्का पीती थी लल्ली देखती है कि "जैसे शहर में ! हुक्का वहाँ कोई नहीं पीता था। बीड़ी खूब। पर लाख बीड़ियाँ मिलकर भी उतना धुआं नहीं पैदा करतीं, जितना वहाँ के ट्रक, बस, स्कूटर, पल भर में छोड़ देते थे। छोड़ते चले जाते थे।"[2] इस प्रकार प्रदूषित वायू के संतान बनकर वह कुछ साल

---

[1] स्वयंप्रकाश - बलि - आधी सदी का सफ़रनामा - पृ.188

[2] मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी आह -संगति-विसंगति - पृ.677

वहाँ रह तो पाती है लेकिन बाद में लल्ली एक मुसलमान के साथ भाग जाती है।

इस प्रकार वह अपने पति के गाँव में पहूँचते है तो उसने देखा कि आज गाँव के रूप भी बदलते जा रहे है। “पहले गाँव की ज़मीन बंजर खार नहीं थी। सरकार की मेहरबानी से जो नहर बनायी गयी उससे खार किनारों की तरफ भाग और खेतों में जा बसा। पानी की आमद का इंतजाम तो हुआ पर निकासी का नहीं। सो दिनोंदिन कल्हड़ धरती में मिलता - धंसता-जुटता रहा और खारा पानी चार फुट नीचे खड़ा रह गया। ज़मीन के ऊसर होते चले जाने पर किसानों को पत्थर रोड़ी की खदानों में काम करने जाना पड़ा, यह किसी के बिना बतलाये ही, वह समझ गयी। तपेदिक की बामारी की बावत भी बिन खोजे जानकारी हाथ लग गयी।”[1] मृदुलाजी ने इस कहानी में लल्ली के द्वारा अपने प्रदूषित भूमि को बचाने की उसके अदम्य परिश्रम को दिखाकर पाश्चात्य देश के रोशनी की छाया बनने केलिए बैठे हुए आज के नागरिकों को पूरी तरीके से एक बार अपने देश में हो रहे प्रदूषण एवं शोषण के प्रति सोचने पर, मज़बूर किया है।

---

[1] वही -पृ. 683.

5.1.7.7. विस्थापन

चन्द्रिका ठाकुर 'देशदीप' द्वारा लिखित 'पापिन पाँखी' नामक कहानी में 'दलचिरैया' नामक पंछी पर आधारित है। कहानी के प्रमुख पात्र है कामा बुआ। उनका विश्वास है कि दलचिरैया चिड़िया अपशकुन बोली बोलती है, इसके बोलने से ही अपने परिवार के सदस्यों की मृत्यु हो जाती है। लेखिका ने ज़िक्र किया है - "....पिर्र *sss* .... पिर्र *sss* ... पिरपिरा उठी चिड़िया तो काम बुआ के कान में पिघला हुआ तेल पड़ गया ... पिर्र *sss* जैसे अग्नि बाण उतर गया कलेजे में तीन रात से लगातार इसी सहुढ़ा-गाछ पर दलचिरैया बोल रही है! एक ही समय... रोज़ अधरनिया में! बड़ा अपशकुन होता है - इस मुँहजली की बोली ....! जब बोलेगी तो अशुभ। पिरपिराएगी तो कोई न कोई खून लेगी.... ज़रूर ही!..... दुश्चिन्ता की ढ़ेर सारी लकीरें तन जाती हैं कठोर से चेहरे पर फिर जाने किस दैव-कोप को शान्त करने भर लेटा पानी आँगना में उलीछ देती है।"[1] अंधविश्वास की इतनी बड़ी वक्तव्यों को हमारे सामने पेश करते हुए लेखिका पंछियों की जीवन व्यथाओं पर ज़ोर दिया है। इस अंधविश्वास को सब कुछ मानते हुए हम निरीह पंछियों को मारते हैं। आज कल तो कई पंछियाँ हमारे जंगलों में नहीं के बराबर है। कुछ के लिए तो जीवन बिताने केलिए आवश्यक माहौल नहीं होने से वे विस्थापन के शिकार होते है तो कुछ पंछी इस प्रकार अंधविश्वासों के शिकार भी हो जाने के कारण जब वे दिखे उन्हें मार

---

[1] चन्द्रिका ठाकुर देशदीप - पापिन पाँखी- नया ज्ञानोदय - फरवरी 2003 - पृ.83

दिया जाता है। लेखिका हमें कहानी के द्‌वारा बताना चाहती है कि पंछियाँ किसी की जान नहीं लेती। वह असल में हमें स्नेह भरी जीवन जीने की रीति सिखाती है।

इस नव आधुनिकतावादी युग ने हमारी संपूर्ण शब्दावली को औपचारिकता की अनुभूति में परिवर्तित कर दिया है। कुछ शब्दों का अर्थ अधिक विकृत भी बन गया है जैसे मन के कोमल भाव एवं आँसुओं से संबंध रखनेवाले स्पर्श की भाषा नव औपनिवेशिक युग में पहूँचकर ‘संक्रमण’ बन गया अर्थात् आज यह संक्रमण एक रोग का पर्याय है। इस बदलते शब्दकोशों का अध्ययन करने वाले मानव इस पृथ्वी के अधिकारी के रूप में केवल उसी का ही नाम लेते है। फलत: समकालीन मनुष्य स्नेह या स्पर्श की भाषा पूरी तरह भूल चुका है। उसे फिर से अपनी जननी से जोड़ने की कोशिश ही ‘बटरोही’ ने ‘कहीं दूर जब दिन ढल जाए’ नामक कहानी में किया है।

कहानी के प्रमुख पात्र एक पोता है जो अपनी नानी से मिलने केलिए गाँव आते है। वह अपनी नानी को पूरी तरह अज्ञानी मानते थे। लेकिन घर पहूँचते हुए वह बैठा तो उसने देखा - “जिस कमरे में मैं बैठा था, वह ‘चाख’ कहलाता था। अँग्रेज़ी में हम उसे ‘ड्राइंग रूम’ कहते हैं। उसी के भीतर का एक बड़ा कमरा बाकी तमाम कामों केलिए मुकर्रर था। दक्षिणी कोना कुत्ते का था, जो दर असल एक भरा-पूरा

'स्टोर' था। बाँस निंगाल और गेहूँ के डंठलों से बने अनेक छोटे-बड़े टोकरे थे, जिनमें अनाज रखा गया था और उन्हीं के बीच कहीं कुत्ते ने अपने लिए जगह बना ली थी। पश्चिमी कोना बिल्ली का था, जहाँ, लकड़ी की एक बड़ी हंडिया और शैली (फिरकनी) खड़ी थी। दो-चार लकड़ी के पात्र थे, जिनमें दही जमाया गया होगा। किसी एक हंडिया के पास कबरी बिल्ली बैठी थी। ताज्जुब है कि दही खाने के बजाय जैसे उसकी रखवाली कर रही थी।"[1] आज के उपभोगी मानव अपने सहचर जन्तुओं एवं पक्षियों को बेघर बना दिया है। कुछ प्राणियाँ आज इतिहास का भाग बन चुका है। पृथ्वी केवल मानव मात्र केलिए निहित नहीं है। जीव-जन्तुएँ मानव का सहचर है। वे हमारे शत्रु नहीं है। अर्थात् इन दोनों के पूर्ण सहयोग में ही पृथ्वी की संतुलन एवं संपुष्टि संभव है। जन्तुओं को मानव वृद्धि केलिए बाधक मानने आज के मनुष्य की स्नेह की शक्ति का दर्शन करने का कार्य ही बटरोही के माध्यम से हुआ है।

कुछ देर बाद बरतन मलकर लौट रहे बुआ की चबूतरे के बीचोंबीच से एक लंबा साँप तेज़ी से रेंगता हुआ आँगन की दीवार में घुसा। तो चौके हुए पोते से वह कहती है "भगवान भूतनाथ की तरह अकेला रहकर इस घर की रखवाली करता है। ... भगवान का वरदान होता है, साँप कीड़ों में ।... सब साँप एक जैसे नहीं होते। कुछ घरेलू साँप होते हैं, कुछ जंगली। घरेलू साँप मालिक के घर की रखवाली

---

[1] बटरोही - कहीं दूर जब दिन ढल जाए - हिडिम्बा के गाँव में - पृ.12-13

करते हैं। साँप की आँख में घर के सब लोगों की तस्वीर बन जाती है।.... उसी तरह साँप हर प्राणी को धरती पर पड़नेवाले उसके वजन के स्पर्श से पहचानता है। हर आदमी की जैसे आवाज़ अलग होती है, उसी तरह उसके चलने से धरती पर एक अलग किस्म का स्पंदन होता है। यही स्पंदन साँप को बता देता है कि उसके घर में कोई नया आदमी या नया जीव आया है।"[1] भौगोलिक संस्कृति के हिस्सा बनने वाले पूर्ण रूप से गाँववासियों को अज्ञानी मानते है। इस मिथ्या विश्वास को तोड़ते हुए उन्हें स्नेह की भाषा पढ़ाने का प्रयत्न ही वटरोही के माध्यम से हुआ है।

राजेश जोशी की एक कहानी है 'मैं हवा पानी परिन्दा कुछ नहीं....'। यह कहानी एक फेंटसी की तरह है। कहानी के प्रमुख पात्र जिनका नाम है अली एक पक्षी वैज्ञानिक है। जो बचपन में कई चिड़ियों का एक ही दिन में पत्थर से मार गिराने से आज वह एक चिड़िये के रूप में पूरी तरह बदल चुके है। अब उसमें केवल मनुष्य का शब्द ही निहित है। कहानी में मनुष्यों द्वारा चिड़िया जैसे जीवजालों पर किए जाने वाले कुकृत्यों का सख्त चित्रण है। अली चिड़िया के रूप में परिवर्तित होने से उसका शिकार वह भी हो जाते है। कहानी में अली के संघर्षों के द्वारा चिड़िया के जीवन में आए

---

[1] बटरोही - कहीं दूर जब दिन ढल जाए - हिडिम्बा के गाँव में - पृ.13-14

विस्थापन रूपी समस्या को भी पेश किया है। अंत में इन सब के शिकार वह भी हो जाते है।

सरकार का कहना था कि उनकी सुरक्षा अपनी जिम्मेदारी है। सरकार जो कुछ प्रकट में बोलती थी उसका उल्टा ही होता जा रहा था। उनको पकड़ने केलिए सारा जंगल शिकारियों से सदा भरा हुआ था। "सहज वृद्धि से कभी-कभी खतरे को पहचान लेते थे। उनके लिए ये एकदम नयी मुसीबत थी। चिड़ियों को समझ नहीं आ रहा था कि वे कहां जाये क्या करें ! ..... सारे जंगल जो सुबह-शाम चहचहाटों से गूँजते रहते थे, अब बहुत सूने-सूने से हो गये थे।... सनसनाती गोलियाँ, गुलेल से छूटे पत्थरों और तीरों से वो घबरा चुका था।"[1] बचे हुए पंछियाँ और अली एक जंगल से दूसरे जंगल जा रहे थे। कहानी में एक पात्र चिड़िया में परिवर्तित होते दिखाते हुए मनुष्य के द्वारा अपनी स्वार्थता केलिए प्रकृति के जीवजालों के ऊपर किए जाने वाले कुकृत्यों का तीखा चित्रण है। इस घटना के द्वारा कहानीकार हमें इस बात से सजग बनने की कोशिश की है कि मनुष्यों द्वारा सहजीवियों का हनन हमारे समृद्ध संस्कृति की शिथिलता की पहली सीढ़ि है।

5.2.1. समकालीन कहानी की अन्य प्रवृत्तियाँ

वर्तमान समाज के नवउपनिवेशिक षड्यंत्र ने हमारे हर क्षेत्र को अनेक समस्याओं से घेर दिया है। यह अस्तव्यस्तताएँ साहित्य में

---

[1] राजेश जोशी - मैं हवा पानी परिन्दा कुछ नहीं - कपिल के पेड़ - पृ.22-23

आज अनेक प्रवृत्तियों के रूप में विराजित है। इस प्रकार हर क्षेत्र में होने वाली समस्याओं एवं विसंगतियों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए मानव को इन बाज़ारवादी अपसंस्कृति के प्रति सचेत बनाने की कोशिश हर समकालीन रचना में मौजूद है। समकालीन कहानी में सशक्त रूप में विराजित प्रवृत्तियों का अध्ययन ही पहले के अध्यायों में हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ भी आज समकालीन कहानी की चर्चा का केन्द्र बन चुका है। इसमें प्रमुख है - वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, विकलांग लोगों की समस्याएँ, लघु सांस्कृतिक विमर्श आदि।

5.2.1.1. वृद्ध विमर्श

परिवर्तित समाज के अंग बने हम संयुक्त परिवार की अवधारणा को आज भूल चुके हैं। इसका नतीजा आज इस हद तक पहूँच चुका है कि एक बहुत बड़े समाज अकेलेपन का शिकार है। प्रगति के चक्कर में पड़ने वाले हमें इन के प्रति ध्यान दिलाने की साहित्य का एक कोशिश है आज उभरती आ रही यह नयी विमर्श अर्थात् वृद्ध विमर्श।

बढ़ती आधुनिकता एवं शहरीकरण ने मृत्यु-दर और जन्म दर को गिरा ही दिया है। इसलिए इस विभाग की संख्या में भी वर्षों-वर्ष बढ़ोत्तरी हो रही है। "1961 में वृद्धों और वृद्धाओं की संख्या ढाई करोड़ के आस-पास थी, जो वर्ष 2010 तक लगभग दस करोड़ हो

जाने की संभावना है। 1991 में देश में बूढ़े लोग 5.67 करोड़ थे, जो 2001 में बढ़कर 7.20 करोड़ हो गए। बुजुर्गों की यह संख्या सन् 2021 तक 14 करोड़ के आसपास होने का अनुमान लगाया जा रहा है।"[1] इनमें से वृद्धाओं की गणना अलग करके देखें तो "भारत के वृद्धों के लैंगिक अनुपात में स्त्रियों की संख्या 51 प्रतिशत है और इनमें से करीब 64 प्रतिशत महिलाएँ विधवा हैं, जबकि पुरुष बुजुर्गों में केवल 19 प्रतिशत लोग पत्नीविहीन है। अगर 70 साल के ऊपर के आयुवर्ग में देखा जाए तो उसमें अस्सी प्रतिशत विधवाएँ मिलेंगी, और पत्नीविहीन पुरुषों की संख्या पच्चीस प्रतिशत के आसपास होगी।" [2] उदारीकरण एवं विश्व बाज़ार ने हमारी अर्थव्यवस्था में काफी बदलाव लाकर हमें खाने-पीने, पहनने-ओढने केलिए नयी चीज़ें दी है इसके साथ ही साथ महंगाई भी बढ़ी है। 60 या 58 की आयू के बाद काफी बुजुर्ग सेवानिवृत्त हो जाते है। निम्न स्तर के लोग तो पेंशन से भी अलग है। शक्त आमदनी न होने से आज अपने ही घर वाले इसे अपनाने केलिए तैयार नहीं है। शारीरिक स्वास्थ्य की बिगड़ना, इनमें भी स्त्री वृद्ध हुआ तो वे भी विधवा हो तो उन्हें कई तरह के उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार इनके घरवाले ही उसे आगे जीने के मनोबल को तोड़ते हुए आज नज़र आते है। काफी बच्चे आज

---

[1] प्रो.मान चन्द खंडेला - महिला और बदलता सामाजिक परिवेश - पृ.109

[2] वही - पृ.109

अपने बूढ़े माँ-बाप को वृद्धाश्रम भेज रहे है। फलतः आज के वृद्धाश्रमों की संख्या में भी काफी बढ़ोत्तरी हुई है।

इस तरह बढ़ती हुई समस्याओं के एक हल के रूप में “2004 में उच्चतम न्यायालय को फैसला देना पड़ा कि वृद्ध माता-पिता की देखभाल की जिम्मेदारी पुत्र-पुत्री पर एक समान है।”[1] यह ठीक तरह न हुआ तो न्यायालय के तौर से पुत्र-पुत्री को सजा भी हो सकता है। आज सरकारी स्तर पर वृद्धावस्था में पेंशन भी दी जाती है। वृद्धों केलिए 1999 में एक राष्ट्रीय नीति भी तैयार हुई थी। लेकिन बाद में वो सफल नहीं बना। इसके बाद केन्द्र सरकार ने वृद्धों की संरक्षण केलिए 2004-2005 में ओल्ड एज होम, डे केयर सेन्टर तथा मोबाइल मेडिकेयर इकाइयों को संचालित करने केलिए 444 गैर सरकारी संगठनों को 16 करोड़ रुपये भी दिया गया। लेकिन यह सब बढ़ती इस विभाग की संख्या को देखे तो पूरी तरह बेकार है।

इन सब के उपरांत बूढ़ों को डाकघर, बैंकों आदि में ब्याज दर में रियायत, आयकर में बीस हज़ार की छूट, हवाई यात्रा, रेल यात्रा आदि में 50 प्रतिशत एवं 30 प्रतिशत की छूट, कानूनी सुविधाएँ भी पारित किया हुआ है लेकिन इन का पालन आज भी प्रश्नों के खेरे में है। यह सभी पूर्ण रूप से सफल न होने हम एक पर ही विश्वास कर सकते है

[1] प्रो.मान चन्द खंडेला - महिला और बदलता सामाजिक परिवेश - पृ.112

वह है शिक्षा। आज की शिक्षा प्रणाली में वृद्धों की समस्याओं पर भी चर्चाएँ हो रही है। इसके ज़रिए इन पर होने वाले घरेलू अत्याचारों एवं अकेलेपन पर आनेवाली पीढि भी सोच-विचार करेंगे। अपनी पूरी ज़िन्दगी घर केलिए अर्पित करने वाले एक व्यक्ति वृद्धावस्था में पहूँचा जाए तो उसे तिरस्कार का शिकार न होना चाहिए यह पाठ पढ़ाने में शिक्षा सफल हो सकते है। इस परिश्रम में साहित्य भी पीछे नहीं है। समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य की अनेक रचनाएँ इनकी तीव्र व्यथाओं को चित्रित करते हुए मानव को सचेत बनाने की कोशिश में लगे हुए है।

जयप्रकाश कर्दम की एक कहानी है 'पेंशन'। कहानी के प्रमुख पात्र है रुक्मणी बुआ। रुक्मणी की बच्चों एवं पति की मृत्यु हो जाने पर वह अनेक संघर्षों को सहती हुई अपनी पोते अविनाश की देखभाल करती है। लेकिन सुबह छ: बजे काम केलिए निकलने वाली बुआ को पता नहीं था कि पोता स्कूल पर जाती थी या नहीं। साठ वर्ष हो जाने पर सरकार की ओर से उसे पेंशन मिलने लगी। इस उम्र में रुक्मणी केलिए पेंशन की यह राशि बहुत बड़ा सहारा थी। लोकिन पोता धीरे-धीरे शराब के नशे के अधीन होते गये।

एक दिन शराब पीते आए पोते और बुआ में गंभीर वाद-प्रतिवाद हुआ। सदा की तरह वे बुआ को अत्यन्त तीव्र रूप में मारा-पीटा। कुछ समय के बाद रुक्मणी लाश में बदल गयी। कुछ महीनों के बाद तीन-

चार महीनों से पेंशन लेने केलिए आनेवाले पोते को देखकर रुक्मणी के बारे में उनके दोस्तों ने पूछा तो वे उत्तर दिया कि एक भाई के घर में गई है। उत्तर उन लोगों को ठीक न लगने पर उन लोगों ने पुलिस को खबर दी। जब पुलिस ने आकर पूछताछ की तो उसने बताया

"उसके मैंने मार दिया है।

कब मारा ?

तीन महीने पहले।

लाश कहाँ है?

घर के आहते में गड़ी है।"[1]

पुलिस लाश को बाहर निकाला तो चौका ही गया क्यंकि उनकी दायं हाथ का अंगूठा नहीं था। पोते से फिर पूछताछ करने पर बात साफ हुआ

"हाँ अंगूठा मैंने काटा था।

अंगूठा कहाँ है?

घर में, फ्रीजर के अंदर रखा है।

पुलिस ने अवुनाश के घर जाकर फ्रीज खोलकर देखा तो फ्रीजर में प्लास्टिक की एक छोटी सी डिब्बी के अन्दर अंगूठा सुरक्षित रखा था।

अंगूठी किसलिए काटकर रखा तुमने? अंगूठा मिल जाने पर पुलिस ने अविनाश से पूछा।

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - पेंशन - खरोंच - पृ.35

ताकि मैं अंगूठा लगाकर दादी की पेंशन लोता रहूँ।"[1]

कहानी में लेखक ने विधवा वृद्ध महिला की जीवन में हो रही विसंगतियों का चित्रण किया है। आज सब कुछ पैसा है। इसको हासिल करने केलिए लोग कुछ भी करने केलिए तैयार है। इस अमानवीय एवं उपभोग संस्कार के बीच में पड़कर अपने ही बूढ़े माँ-बाप के जीवन लेने केलिए तुले हुए आज के समाज को सचेत बनाने की कोशिश लेखक ने की है।

संतोष दीक्षित की 'उसकी वह अंतिम रेल यात्रा' कहानी वृद्ध की मानसिकता को दर्शाने वाले है। कहानी में एक वृद्धा का चित्रण है, वह अपनी अंतिम रेल यात्रा कर रही है। वह जिस ज़मीन्दार के यहाँ काम करती थी वह बहुत क्रूर होते हुए भी वृद्धा के पति की मृत्यु के दौरान ज़मीन्दार ने ही उसको कंधा दिया था इसलिए उसके बीमारी के वक्त में उसकी सहायता करने केलिए ज़मीन्दार के यहाँ वृद्धा जाती है।

आधुनिक समाज में ईमानदारी एवं सहिष्णुता मर गयी है। कहानीकार ने इस वृद्धा के द्वारा मानवीय भावों की पुनः प्रतिष्ठा करने की कोशिश की है। कहानी में एक दृश्य है -"इस वृद्धा के सामने की अकेली सीट पर एक दाढ़ीवाली किसान बैठा था। शक्ल और पहनावे-ओढ़ावे से निश्चित रूप से ठेठ मुसलमान किसान। उसने

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - पेंशन - खरोंच - पृ.36

स्थानीय मगही भाषा में टोका भी उस वृद्धा को, आराम और इत्मीनान से बैठ कर यात्रा का लुत्फ लेने के वास्ते। प्रत्युत्तर में हँस पड़ी वृद्धा।"[1] आज सभी एक दूसरे के दुश्मन है। संबंधों में भी कोई आत्मीयता नहीं है। कहानी में वृद्धा की अनेक तौर तरीकों के द्वारा दया, परोपकार आदि मानवीय भावों के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश के साथ कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि वृद्धजन समाज केलिए व्यर्थ वस्तु नहीं है। राह बिगड़ने वाले समाज को सही रास्ता दिखाने की क्षमता उनमें है। इसलिए समाज की वृद्धि उनकी स्वस्थ प्रतिष्ठा में ही है।

मृदुला गर्ग की 'लौटना और लौटना', 'अलग अलग कमरे ; सूर्यबाला की 'निर्वासित'; उषा महाजन की 'अब्बू जी', 'निर्णय', 'माँ'; कृष्णा सोबती की 'दादी अम्मा' आदि अनेक कहानियाँ वृद्ध जनों की समस्याओं को प्रदर्शित करने वाली हैं।

5.2.1.2. बाल विमर्श

बाल विमर्श बदलते समाज में बालकों के मनोवैज्ञानिक पठन है। वर्तमान समाज में ज़्यादातर दांपत्य-जीवन तनावों के खेरे में है। समाज का भारी परिवर्तन बालकों के कोमल मन को भी तनावों से

---

[1]संतोष दीक्षित - उसकी वह अंतिम रेल यात्रा - नया ज्ञानोदय - अगस्त 2003 - पृ.108

ग्रस्त बना दिया है। समकालीन अनेक कहानियाँ बालकों के जीवन पर भी चित्रित है।

सूर्यबाला की कहानी है 'तोहफा'। कहानी के प्रमुख पात्र है बबलू। कहानी में उसके बर्थडे पार्टी का चित्रण है। पार्टी में नये कपड़े पहने तैयार हुए बबलू अपने सभी दोस्तों के आने के बाद भी माँ उसे केक काटने की अनुमति नहीं देती। क्योंकि माँ-बाप के चीफ गेस्ट जो बड़ी कंपनी के डायरेक्टर है मिस्टर चड्ढा वह आया ही नहीं। अनेक बार फोन पर बुलाने पर अंत में वह आते है तो बबलू रो-रोकर सो गए थे। अचानक उसकी मम्मी ने उसे उड़ाकर उसे केक काटने को कहा तो बबलू ने "चारों ओर देख - न अज्जू, न अमित, न बटी, अजनबी अनजान चेहरे। मन फिर मरोर उठा"[1] उसने साफ कह डाला कि मेरे दोस्त सब चले गये, तो मैं नहीं काटूँगी। इज़्ज़त को बचाकर माँ-बाप के सहारे वे केक को काटते है लेकिन आगे भी बबलू मिस्टर चड्ढा से बात न करने और पत्थर के समान अविचल खड़े होने पर उसके पापा उसके ऊपर चीख पड़े - "बबलू ! मिस्टर चड्ढा लगभग चीखें थे और एक भरपूर थप्पड़ उसके बायें गाल पर पड़ा था। बबलू दर्द से बिलबिलाकर लड़खड़ाया था।"[2] अंत में उसने वहाँ से उसकी माँ ने ही बचाया था। कहानी के द्वारा लेखिका ने बाल मन के कोमल भावों को

---

[1] सूर्यबाला - तोहफा - शाली भर चांद - पृ.49

[2] सूर्यबाला - तोहफा - शाली भर चांद - पृ.50

ही व्यक्त किया है। आज व्यक्ति के पास किसी के लिए भी समय नहीं है। अपने बच्चों केलिए भी। इसीलिए उसे बोर्डिंग भेज देते है। लेकिन अंत में वे भी औद्योगिक समाज के मात्र पैसा कमाने वाले मशीन ही बन जाते है। लेखिका ने कहानी के माध्यम से वर्तमान समाज को सजग बनाने के कोशिश की है।

उषा यादव की एक कहानी हे 'मन की बात'। इस कहानी में छठी कक्षा में पढ़ने वाले अंकित नामक बच्चा का चित्रण है। एक दिन स्कूल से आया अंकित घर रुकी नौकरानी राधा से पूछती है "क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे निधि दुबा बीमार पड़ जाये।"[1] उसके इस प्रश्न सुनकर राधा अवाँक रह जाती है। शाम को अंकित की माँ बाप आने पर राधा ने इस बात को कुछ बढ़ा चढ़ाकर उनसे कह ही डाला। अपनी बहन दुबारा बीमार पड़ने की आशा रखनेवाले! यह सुनकर पापा ने उसे मारा।

अंत में माँ उसके कारण पूछने पर अंकित बताते है - "निधि की बीमारी में तुम घर पर रहीं तो मुझे बहुत अच्छा लगता था, स्कूल से लौटते ही मैं तुम्हें सारी बातें बताता था। वे सारी बातें राधा से थोड़े ही बतायी जा सकती हैं....आज मेरे गणित टेस्ट के नम्बर पता चले थे, पहली बार मेरे सौ में से सौ नम्बर आये था। इसी खुश खबरी में

---

[1] उषा यादव - मन की बात - (सं.बालशौरी रेड्डी) - श्रेष्ठ बाल कहानियाँ - पृ.503

तो मैं तुम्हें सुनाना चाहता था। निधि से भला क्यों जलूँगा ? उसे तो मैं बहुत-बहुत प्यार करता हूँ। कसम से।”[1] कहानी के द्वारा लेखिका पाठकों को समझाना चाहती है कि बच्चों को पैसा नहीं माँ-बाप का प्यार एवं सुरक्षा ही प्रमुख रूप से चाहिए ।

मालती जोशी की ‘पराजय’, विवेकी राय की ‘कच्चा गुलाब’, सरोज वशिष्ठ की ‘सही फैसला’, राजेश जोशी की ‘सींग’, संदीप की ‘अंतहीन’, शाशांक की ‘भूमिका’, शांत वर्मा की ‘शुरूआत’, बलराम की ‘पालन हारे’ आदि अनेक कहानियाँ बाल मन पर आधारित है।

5.2.1.3. लघु सांस्कृतिक विमर्श

जाती, धर्म एवं लिंग के कई विभिन्नता के कारण हाशिए कृत समझने वाले वर्ग लघु संस्कृति में आता हैं। इसमें प्रमुख रूप से लिंग के आधार पर हाशिएकृत मानने वाले एक विभाग है ‘हिजड़ा’। उस विभाग को मानव का दर्जा प्राप्त कराने केलिए सरकार की तरफ से भी कई नीतियाँ लागू किया जा रहा है। लेकिन कुछ भी सफलता की ऊँचाई तक नहीं पहूँचा है। समकालीन कहानी इन लोगों की समस्याओं पर भी काफी सजग है।

---

[1] उषा यादव - मन की बात - (सं.बालशौरी रेड्डी) - श्रेष्ठ बाल कहानियाँ - पृ.504

चित्रामृद्गल की एक कहानी है 'पोस्ट बॉक्सनं. 203, नाला सोपारा' यह हिजडा बनकर जीवन बितानेवाले मानवों के जीवन संघर्षों पर आधारित है। कहानी के मुख्य पात्र बिन्नी वह हिजड़ा है यह जानते हुए उसके घरवालों ने खास रूप से मोटा भाई सिद्धार्थ उसे मुंबई की चंपाबाई को सौंपा देते है। इतना सब होने के बावजूद भी वह अपनी माँ को दुनिया की सबसे खूबसूरत माँ मानती है। अब तो सिद्धार्थ की पत्नी सेजल की पाँचवाँ महीना हो गया है। जब से सेजल पेट से है सिद्धार्थ बहुत ही घबरायी हुई है। एक दिन वह डॉक्टर से टेस्ट सब करने के कहते है -"लड़का हो या लड़की दोनों...स्वीकार है। लेकिन लड़का और लड़की न होकर कोई अन्य हो तो ?"[1] डॉक्टर के उत्तर से राहत न मिलने वाले सिद्धार्थ अगली सुबह बच्चे की अल्ट्रासाउण्ड रिपोर्ट को लेकर एक ज्योतिष के पास भी पहूँचते है। आगे वह अपने घर से भी चले जाना चाहते है। सिद्धार्थ कही हुई बात मिन्नी से माँ कहती है - "कालवा देवी वाले घर की काली परछाइयाँ उस घर को बेच देने के बावजूद इस नये घर से अलग नहीं हो पायीं हैं। उस काली परछाईं के दंश से वह अपनी औलाद को दूर रखना चाहता है। वह मेरी ओर मुड़ा था।....."[2] घर की इस बिगड़ी हुई हालात को लेकर बिन्नी चकित नहीं है। अपनी बदलते रूप के प्रति आश्चर्य प्रकट करते हुए वह बोलती है - "जिस ज़िन्दगी का हिस्सा

---

[1] चित्रामृदगल - पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा - वागार्थ - फरवरी 2014 - पृ.17
[2] चित्रामृदगल - पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा - वागार्थ - फरवरी 2014 - पृ.17

अचानक मुझे बना दिया गया था - वह इतना आकस्मिक और अविश्वसनीय था कि मेरा किशोर मन उसे किसी भी रूप में पचा पाने में असमर्थ था। मनुष्य के दो ही रूप अब तक देखे थे मैं ने। इस तीसरे रूप से मैं परिचित तो था, लेकिन उसे मैं पहले रूप का ही एक अलग हिस्सा मानता रहा था।"[1] अपने इस आश्चर्यमयी रूप से तंग आकर वह पूछती है कि सब कुछ जानते हुए तू ने मुझे पाला क्यों?

बिन्नी के द्वारा कहानी में हिजडाओं की जीवन रीति एवं तौर तरीकों को भी रेखांकित किया है। बिन्नी इस वर्ग से एक बार भागने की कोशिश भी की थी लेकिन कामयाब नहीं हो पायी। यही इस वर्ग की विडम्बना है।

समाज में न अंत होने वाले इन समस्याओं के प्रति अनेक प्रश्न डालते हुए बिन्नी माँ केलिए लिखी गई चिट्टी के द्वारा लेखिका रेखांकित करती है - "कालवा देवीवाले घर के नीचे, तीसरे माले पर ज्योत्सना रहती थी न! माणिक भाई की बेटी। मेरी ही कक्षा में पढ़ती थी। दूसरे स्कूल में। मारवाड़ी विद्यालय ग्रांट रोड में। कुछ खबर है उसकी, बा?

बा, पगें लगूँ

---

[1] वही- पृ.18

तेरा बिन्नी उर्फ़ विनोद उर्फ़ बिमली।"[1] न अंत होनेवाली इस विभीषिका के प्रति पाठकों को एक बार सोचने के लिए कहानी के माध्यम से लेखिका ज़रूर बाध्य बनाती है।

उर्मिला शुक्ल की एक कहानी है 'मैं फूलमतीऔर हिजड़े'। इस कहानी में लेखिका फूलमती की जीवन संघर्षों को चित्रित करती हुई समाज से पूछती है कि असल में यह हिजड़े कौन है ? समाज में प्रत्यक्ष रूप में दिखने वाले या हिजडत्व के भाव को मन मे समाए सभ्य समाज का अंग होने वाले।

कहानी की शुरूआत सीमा की ट्रेन यात्रा से ही होती है। उस यात्रा में उसकी अतीत की कुछ सहेलियाँ भी मिल जाती है। वे अपनी स्मृतियों में खो जाती है तो एक भीड़ का आगम हो जाते है। वह थे हिजड़े लेकिन उसी में से एक जानी पहचानी आवाज़ सीमा को सुनाई थी "ले फल्ली ले sss... चना ss... ले sss "[2] यह फूलमती थी। पहले तो यह बहुत ही ईमानदार, चुस्त लड़की थी। लेकिन अब कुछ बदलाव था। आगे वह थी तो पीछे सिर पर टुकना रखे एक आदमी जिसकी आँखों में काजल की मोटी रेखा और कंधे तक झूलते बाल, उसे औरों से अलगा रहे थे। साथियों से इसके बारे में पूछने पर लता जवाब देती है कि "कुछ नहीं यार अब वह धंधा करने लगी है.... फल्ली और चना के

---

[1] चित्रामृदगल - पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा - वागार्थ - फरवरी 2014 - पृ.19

[2] उर्मिला शुक्ल -मैं फूलमती और हिजड़े - कथादेश - मार्च 2011- पृ.55.

साथ-साथ अब वो खुद को बेचती है, और वो जो उसके पीछे छा न वह उसका दल्ला है।"[1] अपनी साथियों का यह जवाब सीमा को चैन दिलाने वाला नहीं था इसलिए साथियाँ सब जाने के बाद फल्ली लेने के बहाने सीमा फूलमती को बुलाती है और अपनी इस परिवर्तित जीवन के बारे में पूछती है तो वह कहती है कि माँ की मृत्यु के बाद उसकी शादी बिहारी नामक एक युवक से होती है। लेकिन कुछ दिनों के बाद पता चला कि वह भड़वा था उसकी देह की कमाई खाने वाला। अंत में वह उससे मुक्ति पाने के बाद भी समाज उसे वेश्यावृत्ति अपनाने को विवश बनाती है। अंत में एक व्यक्ति उसके पास आते है। "सारी दुनिया जिसे हिजड़ा कहती थी फूलमती केलिए वही सम्पूर्ण पुरुष था। वह पुरुष जिसने उसे प्यार दिया, सम्मान दिया और अधिकार दिया, उसे उस दलदल से बाहर निकाला, जिसमें तथाकथित पुरुष ने धकेल दिया था उसे। अब नहीं बता न दीदी हिजड़ा कौन है ये या कि वो जेन मोला बेसियाबना दिस।"[2] फूलमती की यह प्रश्न लेखिका पाठकों के सामने रखते हुए निरीह हिजड़ों के जीवन संघर्षों को चित्रित करने के साथ समाज में व्याप्त हिजडत्व को भी दर्शाया है। कहानी में चित्रित सीमा के पति फूलमती के पति के समान एक व्यक्ति है लेकिन तेज़ बनी फूलमती की शब्दों से प्रभावित होकर सीमा अपनी पति की कटपुतली न बनने की निर्णय लेती है।

---

[1] उर्मिला शुक्ल -मैं फूलमती और हिजड़े - कथादेश - मार्च 2011 - पृ. 56

[2] वही - पृ.58-59.

5.2.1.4. आदिवासी विमर्श

आदिवासी समाज विश्व के पैतृक संपत्ति के अधिकारी है। वे उन परंपराओं को अपनाकर एक विशिष्ट जीवन शैली से अपनी जीविका आगे बढ़ाता है। आदिवासी समाज मुख्य रूप में जगलों, पहाड़ों में जीने वाले है। नये-नये आविष्कारों से वंचित यह समूह अपनी परंपरा, उत्सव, त्योहार, रीति-रिवाज़ को कायम भी रहते है। एक आदिवासी समाज दूसरे से अपनी रहन-सहन, आचार-विचार से भिन्न होते है।

आदिवासी समाज की विशेषताओं पर चर्चा करते हुए श्यामाचरण दुबे का कहना है - "नीग्रिटों, प्रोटो-आस्ट्रेलियड और मंगोलायड प्रजातियों के अंतर्गत आने वाला प्राय: संपूर्ण 'आदिवासी समाज' ही एक ऐसा समाज है, जिसने अपनी विशेषताओं को ऐतिहासिक प्रभावों और आर्थिक-सामाजिक शक्तियों से बहुत हद तक बचाये रखा है।"[1] इन वक्तव्यों से जाहिर होता है, आदिवासी समाज मुख्यधारा समाज के अंतर्गत आनेवाले दुर्गुणों से मुक्त है। उस समाज घने जंगलों में मिल-जुलकर रहते हुए 'सामूहिकता' की विशिष्ट पक्षों को हमें सिखाते है।

कालानुसार वैज्ञानिक युग के आधुनिकतम विकासों ने उन्हें शिक्षित बनाकर आगे बढ़ाने के नाम से धीरे-धीरे उनके अन्दर घुसा।

---

[1] श्यामचरण दुबे - मानव और संस्कृति – पृ.59-60

वे उनकी वृद्धि की कोशिश न करते हुए उस समाज में व्याप्त कुछ कुप्रथाओं को अत्यधिक ज़ोर देकर उस समाज को शोषित करना आरंभ किया।

स्त्री समाज मूल रूप में पहले ही शोषित है और आदिवासी स्त्रियों की स्थिति भी इससे भिन्न नही है। अनेक रीति-रिवाज़ आदिवासी समाज में स्त्री के खिलाफ है। सभ्य समाज इस अंधविश्वासों के अंत करने की कोशिश न करते हुए स्त्रियों के प्रति होने वाले इस दुर्व्यवहार का आस्वादन करते है। इसलिए आज भी आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपने समाज से और मुख्य धारा समाज से अनेक प्रकार की अमानवीयता का शिकार होती है।

विकास के नाम पर आदिवासी समाज में सरकार द्वारा अनेक नीतियों को भी लागू करता आ रहा है। 'आदिवासी उप-योजना' एक ऐसे ही नीति थी। इस तरह के तमाम नीतियों की तहत वास्तव में सरकार आदिवासी तथा अन्य पिछड़े एवं सुदूर भीतरी अंचलों में प्रशासन-तंत्र का जाल ही फैलाते है। फलस्वरूप वनों को चीरकर सड़कों का निर्माण, बांधों का निर्माण आदि इन क्षेत्रों में हो रहे गहरी घुसपैठिए ही है। आज अपनी संस्कृति में हो रही इस भारी शिथिलता के ऊपर आदिवासी समाज विद्रोहित है। साहित्य में भी इस विद्रोह का स्वर साफ दिखता है। समकालीन हिन्दी कहानी की अनेक कहानियाँ

आदिवासी समाज के विडंबनापूर्ण जीवन यथार्थ को लेकर लिखी गयी है। जिसमें एक तरह विकास की प्रक्रियाओं पर टकराती आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष चित्रित है तो दूसरी तरफ आदिवासी स्त्री समाज की विडंबनापूर्ण जीवन यथार्थ को संकेत किया है।

मेहरून्निसा परवेज की 'टोना' नामक कहानी आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वास की व्याप्ति को दर्शानेवाली है। कहानी में काकी चावल बीनकर किसी का टोना उतारती है यहाँ तक जीवन मरण का प्रश्न भी। इसी के द्वारा वे समाधान ढूँढती है। आदिवासी समाज में फैली एक धार्मिक अंधविश्वास है 'गोदना' गुदवाना, इसके न होने से आदिवासी महिलाओं का विश्वास है कि वे मरण के बाद नरक में ही जायेंगी। यह अधिकतर से आदिवासी स्त्रियों में ही पायी जाती है।

टोना में खोड़ी, पटेल के साथ विवाह के बाद घर आते हुए देखा कि पटेल की मंझली पत्नी वहीं पर है। लेकिन उनके सिर में बाल नहीं है यानी 'टोनही' है। उसके बारे में खोड़ी सुनकर सहम हो जाती है। "बड़ी के सिर में बाल नहीं है, उसका राज जब खुला तो वह कांप-सी गयी। बड़ी पंगनीन(टोनही) थी। वह रात को घर से चली जाती है और पौ फटने के पहले आदमी का खून पीकर लौटती थी। काकी कहती थी, पंगनीन छत पर से डोरी डालकर सोये आदमी की नाभि से खींचकर खून पी जाती है, जब आदमी का खून नहीं मिलता, तब

जानवरों का खून पीती है।"[1] कहानी के द्वारा आदिवासी समाज में व्याप्त बाली-पूजा रूपी रूढ़िवादी क्रिया का भी ज़िक्र किया है। आदिवासी समाज की बहुत बड़ी विडंबना यह है कि इन सभी अंधविश्वासों में आदिवासी युवा वर्ग भी ग्रसित है।

इस प्रकार सन् 1994 में बिहार के हज़ारीबाग जिले के एक गाँव में एक आदिवासी महिला को 'डायन' मानकर गाँव वालों ने उसे मार दिया। कहानी में भी पटेल की पहली पत्नी असल में पति की उपेक्षा एवं संतानोत्पत्ति के अभाव में इस रूप को धारण करने में विवश हो जाती है। लेखिका ने आदिवासी स्त्री के साथ आदिवासी समाज में फैले रूढ़ियों पर भी पाठक का ध्यान आकर्षित करते हुए उनमें बदलाव की माँग की है। इस प्रकार के अंधविश्वासों से सामंत वर्ग के शोषण का ज़्यादातर शिकार भी वे होते है। इन सभी से आदिवासी समाज की मुक्ति ही कहानी में लेखिका का लक्ष्य है।

विजय की 'जंगल का सपना' नामक कहानी में आदिवासी समाज में होने वाले महानगरीय व्यवस्थाओं के आक्रमण को ही प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका अंजी, अन्होर से प्रेम करती है। वे दोनों शिक्षा एवं अन्य विकासात्मक क्रियाओं से गाँव को आगे बढ़ाने केलिए लगे हुए है। लेकिन कुछ सरकारी कार्यक्रमों एवं जंगली अधिकारी आदिवासी समाज पर विकास का नाम लेते हुए उनकी

---

[1] मेहरून्निसा परवेज टोना - मेरी बस्तर की कहानियाँ - पृ.28

बस्तियों पर आक्रमण करते है। उन्हें विस्थापित भी करते है विकास के नाम पर। उनके संस्कृति का नामशेष करते है। बदले गये आदिवासी जीवन के वातावरण को भी कहानी में चित्रित किया है - "कभी नुरही में गोंड, कोल और किरात प्रजा से भरा था लम्बा-चौड़ा जंगल। पेड़, पौधे, जड़ी-बूटी और कुछ हिस्से में फसल से संपन्न थे हम। हम जो थे वही रहना चाहते थे। बाहरी दुनिया की स्पर्धा से आँखें मूँद रखी थी। हमने। देवता का भरोसा, तीर-कमान पर गर्व था हमें।"[1] सरकारी लोगों के दुर्व्यवहार के कारण आतंकी बने आदिवासियों का भी चित्रण इस कहानी में हुआ है। इस प्रकार 'जंगल का सपना' नामक कहानी आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों को चित्रित करती है।

संजीव की 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' नामक कहानी आदिवासी औरतों की व्यथा कथा को व्यक्त करने के साथ आदिवासी लोगों के प्रति सभ्य मानने वाले समाज के नज़रिए को भी सामने लाता है। कहानी के मुख्य पात्र ओरांव जनजाति की सब्जियाँ बेचने वाली एक आदिवासी महिला है। वह ट्रेन में सब्जियाँ लेकर जाती है तो उसके पास टिकट होते हुए भी टी टी सब्जियों केलिए उनसे पैसे की माँग करती है। लेकिन उन आदिवासी महिला की साथ बैठी दो पढ़ी लिखी महिलाएँ टिकट न होते हुए भी उस आदिवासी महिला की सहायता न करके टी टी के साथ देते है। कुछ समय के बाद 'बहन'

---

[1] विजय - जंगल का सपना - नया ज्ञानोदय - जुलाई 2003 - पृ.96

कहती हुई उन से वे महिला सहाय माँगती है तो वे दोनों कहती है - “बहिनी..बहिनी मत बोलो। जंगली कहीं की हम तेरी तरह बाज़ारू नहीं है।”[1] इतनी जहरीली शब्दों को सुनकर वह आदिवासी महिला जीते जी मरे हुए प्रतीत होती है।

कहानी में बीहार के रोहतास के आसपास के जोगलों में रहने वाले ओरांव जाति की एक विडम्बना को भी दर्शाया है। इस जन जाति के लोग मध्यकाल में मुगलों की सेना को तीन-तीन बार शिकस्त दिया था, वह आज अन्य समाजों की ओर इसलिए विवशता भरी निगाहों से देख रही है कि वे भारतीय जन जीवन की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाई। इसको वे अपनी शाप भरी नियति मानती है। “रो रहा है हम अपने नसीब पे। आज हमरा साथ कोई मरद होता, पैसा होता, रोब होता तो पाँच-दस थमा के हमहू इज्जतदार बनल रहता। ऐसे का इज्जत है हमरा ? हम बाज़ारू हैं।”[2] अंत में कथावाचक के रूप में कहानीकार स्वयं आकर आदिवासी लड़की केलिए लड़ते नज़र आते है। कहानीकार आदिवासी समाज से कहानी के द्वारा कहना चाहता है कि बोलने वाली औरत ही सबसे हसीन है। इसलिए अपने ऊपर हो रहे अमानवीयता के प्रति शब्द उड़ाने का ऐलान वह कहानी को माध्यम बनाकर कहते है।

---

[1] संजीव - दुनिया की सबसे हसीन औरत - संजीव की कथा-यात्रा - पृ. 40.

[2] वही - पृ. 40.

अरुण प्रकाश की 'बेला एक्का लौट रही है' नामक कहानी मुख्यधारा में पहूँचते हुए भी आदिवासी होने के कारण किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पड रहा है उसका चित्रण है। कहानी की नायिका बेला छोटानागपुर में सिन्द्री के पास दामोदर नदी के किनारे के एक गाँव की रहनेवाली आदिवासी युवती है। वह अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बी.ए पास करके आदिवासी इलाके से दूर बेगूसराय के पास भारत केमिकल्स के एक स्कूल में नौकरी पा लेती है। लेकिन वहाँ के क्लर्क और चपरासी तक उनसे दुर्व्यवहार करते है। उसके विरुद्ध उन्होंने शिकायत की तो नतीजे में गुंडे बेचकर उन लोगों ने धमकी भी दी -

"ए मास्टरनी साहेब, रुकिए।

ई क्या, जगदीश बाबू पर कम्पलेन किया है आंय ? कमिशनर झांट उखाड़ लेगा ? ई सब नाटक बंद करो मेमसाहबा ! नहीं तो ई जो तनकर चलती हो, जवानिए खोंट लेंगे। समझे ? अरे जगदीश बाबू कंपनी के राजा हैं। रानी बन जाओ नहीं तो हम रंडी बनाकर छोड़ेंगे।"[1] इस धमकी से यह साबित हो जाती है कि इन शब्दों का प्रयोग तो वे किसी अन्य समाज की महिला से नहीं कर सकते। कहानीकार स्पष्ट शब्द में जाहिर करते है कि हाशिएकृत समाज स्वयं हाशिए कृत नहीं

[1] अरुण प्रकाश - बेला एक्का लौट रही है - विषम राग - पृ.36.

होते मुख्यधारा नियंताओं द्वारा उसे ज़बर्दस्ती हाशिए कृत बनाया जाता है।

मनीष राय की ‘शिलान्यास’, राकेश वत्स की ‘अवशेष’, कैलाश वनवासी की ‘सुरक्षित-असुरक्षित’, संजीव की ‘प्रेतमुक्ति’, ‘आप यहाँ है’, ‘भूमिका’, ‘घर चलो दुलारीबाई’ आदि अनेक कहानियाँ आदिवासी समाज की करुण कथा को प्रदर्शित करने वाली कहानियाँ है।

5.2.1.5. विकलांग विमर्श

विकलांगता मानव जीवन की एक जटिल समस्या है। इस समस्या की सीमा हमारे देश में ही नहीं टिकता बल्कि संपूर्ण विश्व में व्याप्त है। भारत में सन् 1981 की जनगणना के अनुसार 11,18,948 व्यक्तियाँ विकलांग है, इनमें से 4,78,657 व्यक्तियाँ नेत्रहीन है, 3,63,600 व्यक्तियाँ अपंग है और 2,76,691 व्यक्तियाँ गूँगे हैं। आज तो इस विभाग की संख्या इस से कहीं ज्यादा है। क्योंकि वर्तमान समाज बहुत ही जल्दी में है उसे कहीं भी रुकने का समय नहीं इससे हमारे देश में दुर्घटनाएँ भी बढ़ती जा रही है, आज हम फ़ैवस्टार खान-पान के प्रेमी है। इस प्रेम ने हमें कई प्रकार की बीमारों का शिकार बना दिया है। इससे भी आज बहुत संख्याओं में लोग नई प्रकार के अपंग का शिकार बनते है, और साथ ही साथ वर्तमान तौर तरीकों से त्रस्त होकर मानसिक रूप से विकृत होने वाले व्यक्तियों की संख्या

भी आज ज़ोरों पर है। ये सभी लोग एक न एक तरीके से विकलांगता का शिकार है।

समाज के इस बड़े विभाग के प्रति स्वस्थ लोगों में केवल एक ही भाव उत्पन्न होता है वह है दया। इस भाव की उत्पत्ति से हम भी उत्तरदायी बनने वाले इस विभाग की वृद्धि में कोई खास बदलाव उत्पन्न नहीं होता बल्कि अधिक रूप से यह वर्ग फ्रास्ट्रेशन या निराशा के अदीन होकर एक प्रकार की हीनता भाव का शिकार वह होते है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो इस वर्ग दया नहीं सम्मान, समानता और प्यार ही समाज से चाहता है। जिससे वह स्वस्थ समाज के साथ खड़े हो सके।

इसके बदले आत्मबल और साहस से स्वयं को स्थापित करने के इस वर्ग का प्रयत्न भी अनेक उपलब्धियों के समक्ष इन्हें पहूँचा सकते है। इसके कई उदाहरण भी समाज में प्राप्त है - जैसे नेत्रविहीन होमर, उनकी इस विकलांगता के बावजूद भी मन के एवं समाज के कोई भी भाव उनकी दृष्टि से ओझल नहीं है। यह उनके आगे बढ़ने की आत्मबल का ही नतीजा था। और दॉस्तोवस्की - जो मानसिक रूप से रोगी था जिन्होंने 'क्राइम एण्ड पनिशमेंट' नामक मशहूर उपन्यास लिखा। वास्तव में यह रचना साहित्य लोक केलिए एक नयी पडाव थी। लेकिन इन प्रतिभाओं को आगे बढ़ने केलिए जो भी मार्ग है वह

कई बाधाओं से आज भी बद्ध है। इसका उक्त प्रमाण है समाज से निरंतर तिरस्कार से दॉस्तोवस्की की आत्महत्या।

इसलिए इस विभाग को अपने से भिन्न मानने वाले स्वस्थ समाज की रवैया ही पहले बदलना चाहिए। और आगे विशेष रूप से उन लोगों की खोज करना चाहिए जो स्वस्थ लोगों की उपेक्षा में प्रबल हो साथ ही साथ उसे सभ्य समाज के अंग बनने का अवसर देना चाहिए। मात्र शारीरिक आवश्यकताएँ पूर्ण करना इस वर्ग केलिए काफी नहीं है उनकी सामाजिक, संवेदनात्मक, शैक्षणिक, व्यावसायिक, चिकित्सक आदि आवश्यकताओं का भी संपूर्ण रूप से समाधान करना चाहिए। जो अत्यधिक रूप से विकलांग हो उसके कुछ खूबियों के जाँच करते हुए उसे कुछ ऐसे अद्भुत कर दिखाने में सहयोग देना चाहिए कि प्रकृति का यह अभिशाप उसके लिए वरदान सिद्ध हो जाए। समकालीन हिन्दी कहानी में ऐसी कई कहानियाँ विकलांगों की मनोग्रंथि को खोलने और उन्हें कुंठा, ग्लानि से मुक्त करने केलिए स्वस्थ समाज को कर्तव्यबोध से जागरित करने केलिए लिखा गया है।

सूर्यबाला की 'फरिश्ते' नामक कहानी सामंतवर्ग की क्रूरताओं के ऊपर प्रकाश डालने वाली है। कहानी के पात्र मटरू एक निम्न स्तर के पात्र है। उनकी माँ-बाप बाबू साहब के यहाँ काम करने वाले है। उनकी अज्ञानता का फायदा उड़ाने वाले बाबू साहब को न पहचानते मटरू के माँ-बाप बाबू साहब को फरिश्ते के प्रतिरूप मानते है। कुछ समय के

बाद बाबू साहब की पत्नी के कहने पर मटरू को भी एक काम वहाँ देते है। काम है उनके बेटे कुन्नू बाबू के साख खेलना। अर्थात् कुन्नू बाबू जो खेलने को कहे वहीं खेलना चाहिए, जैसे कहें वैसे खेलना चाहिए, ना-नू बिलकुल नहीं। कुन्नू उनसे तीन-चार साल बड़े है फिर भी उसे गरीबी के कारण अपनी नियति के रूप में सदा उनके सामने खेल में ही न सही हारना ही होता है।

कहानी के द्वारा सूर्यबाला ने समाज में फरिश्ते बनकर घूमने वाले उच्चवर्ग की पोल खोलने की कोशिश की है। आज का समाज केवल अपनी ऊँचाई के बारे में ही सोचता है। इस उन्नति को प्राप्त करने केलिए वे लोग अपने संबंधियों तक मारने या उन्हें विकलांगता के अंधकार में डुबा देने केलिए भी तैयार होते है। इस प्रकार की अमानवीय प्रवृत्तियाँ करते हुए भी झूठी सहानुभूति दिखाकर नाम कमाने की कोशिश में वह सदा लगे रहते है। कहानी में मटरू के पिता की मृत्यु बाबू साहब के द्वारा ही हुआ था और कुन्नू बाबू की क्रूरता भरी खेल के शिकार होकर मटरू की एक आँख अंधकार में डूब गयी साथ ही साथ उनके एक पाव की हड्डी भी टूट गयी। कहानी के अंत में मटरू को अस्पताल में देखने बाबू साहब के परिवार आते है और मटरू केलिए वे लोग - "एक सेब लाये थे, सेब भइया जी ! उनकी भी मुझे सेब देते हुए फोटो खींची ..माइ को भी उन लोगों ने लुगरी-पुगरी

पहने पीछे खड़ा कर लिया और मुस्कुराने को कहा।"[1] जीवन भर विकलांगता के अंधेरे में डूबने वाले मटरू के चित्रण के साथ हमारे सभ्य समाज की अमानवीय भरे भावों को ही व्यक्त कर दिया है।

सुनिल कौशिक की 'अँधेरे का सैलाब' नामक कहानी में वर्तमान माहौल के शिकार होकर विकलांग बनने वाले मानव की व्यथा को ही चित्रित किया है। कहानी के प्रमुख पात्र एक बच्चा है उसके नाम है सौरभ। एक दिन वह स्कूल लौटते वक्त उसकी रिक्शा एक ट्रक से टकराते है और रिक्शा चालक घटनास्थल में ही मर जाते है। सौरभ और उनके अनेक साथियों की भी गंभीर चोट हो जाते है। सौरभ के पापा इस खबर सुनकर अस्पताल पहूँचते है तो देखते है कि -"कौन है मम्मी ? मुझे दिखायी क्यों नहीं दे रहा है ? यह सौरभ की आवाज़ थी। उसकी औखों की पुतलियाँ मेरी तरफ थीं, लेकिन उनमें रोशनी नहीं थी। मैं भीतर तक दहल गया था। ढेर सारा प्यार उमड़ आया था मेरे मन में। उसके सिर पर हाथ फिराते हुए मैं ने कहा था, मैं हूँ बेटे, पापा...... वह मेरा हाथ पकड़कर रोने लगा था और मैं लगातार उसके सिर पर हाथ फिराता रहा था।"[2] कहानी के द्वारा लेखक ने एक पिता के रोने की आवाज़ से हज़ारों का आवाज़ मिलाते हुए सभ्य मानने वाले पाठकों से पूछना चाहते है कि हमारे बेटों की एवं हमारी माओं

---

[1] सूर्यबाला - फरिश्ते - (सं.गिरिराज शरण) - विकलांग जीवन की कहानियाँ - पृ.170

[2] सुनिल कौशिक - अँधेरे का सैलाब - पृ.159

की आँखों की रोशनी को छीनकर हम किस ऊँचाई को हासिल करने केलिए दौड रही है। वर्तमान समाज में मानवीय भाव नहीं के बराबर है। आज किसी के साथ भी एक्सीडेण्ड या कोई दुर्घटना हो गयी तो कोई भी उसे बचाने केलिए नहीं आते। सब के सब तेज़ी में है। समाज की ऐसी बदलती मानसिकता के द्वारा भी विकलांग बनने वाले लोगों की संख्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही है। कहानी के द्वारा लेखक ने मानवीयता की पुन:प्रतिष्ठा की कोशिश ही की है।

कुलदीप बग्गा की 'पोलियो', गिरिराजशरण अग्रवाल की 'परकटा परिन्दा', छत्रपाल की 'रोशनी से दूर', नफीस आफ़रीदी की 'पड़ाव', नरेन्द्र नागदेव की 'समापन', निरुपमा श्रीवास्तव की 'अमीबा', निश्तर खानकाही की 'आधा हाथ :पूरा जीवन', पानू खोलिया की 'अन्ना', भीष्म साहनी की 'कण्ठहार', राजेन्द्र कौर की 'लुंज', शैलेश मटियाली की 'हारा हुआ', सच्चिदानन्द धूमकेतु की 'जिजीविषा मरी हुई', सत्यराज की 'छोटू', सिम्मी हर्षिता की 'अनिमंत्रित' आदि अनेक समकालीन कहानियाँ विकलांग जीवन की यातना भरी काहनियों को ही रेखांकित करते है।

5.3.1. समकालीन हिन्दी कहानी के शिल्पपक्ष

कहानी कथ्य एवं शिल्प का मिला हुआ रूप है। यह दोनों श्रेष्ठ आधारों पर होने से ही एक अच्छी कृति की निर्मिती संभव है। डॉ.पुष्पपाल सिंह के अनुसार "वस्तुतः शिल्प कथ्य की अन्तःप्रवृत्ति का सहज प्रतिफलन है।"[1] इसलिए शिल्प की अध्ययन से कहानी की प्रकृति स्पष्ट हो जाती है।

समकालीन कहानी परंपरागत बननेवाले ढाँचे गत शिल्प का अस्वीकार ही करते है। पहले तो कहानी की शीर्षक स्थान या घटना पर आधारित था तो आज प्रतीक, पौराणिक मिथक, प्रश्नवाचक शैली आदि अनेक प्रयोग देख सकते है जैसे शिवमूर्ति की कसाईबाड़ा, उदयप्रकाश की तिरिछ, अशोक अग्रवाल की 'कूड़ेदान', चित्रामृद्गल की 'लकड़बग्धा', हृदयेश की 'नये अभिमन्यु', कृष्ण भावुक की 'एक और शकुन्तला', मालती जोशी की 'एक और देवदास', पंकज बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', अशोक अग्रवाल की 'व से वजीर' आदि। इसके साथ कहानी का आरंभ एवं अंत और पात्रों के नाम भी आज बदले हुए है। अजनारंजन दाग की 'मुआवज़ा' का प्रारंभ पत्र शैली में हुई है। सिम्मी हर्षिता की कहानी 'भूख की बिक्री' में छ्ह-सात पात्र है - पहली भूख, दूसरी भूख, तूसरी भूख आदि भाववाचक नाम से ही पात्रों की स्वरूप की निर्मिती हुई है।

---

[1] डॉ.पुष्पपाल सिंह - समकालीन हिन्दीः युगबोध का संदर्भ - पृ.290

समकालीन वाद संवाद में भी अनेक शैलियों का दर्शन मिलता है - जैसे मृणाल पाण्डे की कहानी 'एक थी हँसमुख दे' में उसकी पूरी बनावट लोककथा के द्वारा ही हुआ है "शाम के झुटपुटे में महल के दरवाज़े पर कुंडी खड़की- खट्ट - खट्ट।

कौन? सात आवाज़ें आयीं। सात उजली खिड़कियाँ खुल गयीं।

मैं

मैं कौन ? सात सवाल आये

मैं राजकुमारी हँसमुख दे। पाटण की।"[1]

कहानी के संवाद में ही नहीं बनावट में भी अनेक शैलियाँ देख सकते है जैसे व्यंग्य शैली में स्वयं प्रकाश की हीरालाल का भूत, शिवमूर्ति की कसाईबाड़ा आदि। पुराण शैली में राजी सेठ की 'गलत होता पंचतंत्र' पंचतंत्र शैली में लिखा गया है। फैंटेसी के प्रयोग में जैसे उदयप्रकाश की 'तिरिछ' और 'हीरालाल का भूत'। "अगर तिरिछ को देखो तो उससे कभी आँखें मत मिलाओ। आँख मिलते ही वह आदमी की गंध पहचान लेता है और फिर पीछे लग जाता है... लेकिन तिरिछ... उसके सामने तो मैं किसी इन्द्रजाल में बँध जाता था। मैं सपने में कहीं जा रहा होता तो अचानक ही किसी जगह मिल जाता, उसकी जगह तय नहीं होती थी। कोई ज़रूरी नहीं था कि वह चट्टानों की दरार में, पुरानी इमारतों के पिछवाड़े या किसी झाड़ी के पास

---

[1] मृणाल पाण्डे - एक थे हँसमुख दे - पृ.166

दिखे- वह मुझे बाज़ार में या सिनेमा हाल में किसी दूकान या मेरे कमरे में ही दिख सकता था।"[1] इस प्रकार तिरिछ नामक कहानी फैंटसी को यथार्थ में और यथार्थ को फैंटसी में बदलने वाले है।

समकालीन कहानी के संवाद या बनावट में ही नहीं भाषा में भी नयी रूप भेद आज दिख रहे है। संस्कृति के गंभीर बिहराव को संझोलने की कोशिश समकालीन कहानी ने भाषा के द्वारा करने की कोशिश की है। इसलिए अधिक रूप से जन जीवन से जुड़ी हुई भाषा का प्रयोग आज कहानी में देखने केलिए मिलता है।

समकालीन कहानी में महिला लेखिकाओं की अपनी एक खास पहचान है। इन की भाषा भी अत्यन्त विभिन्न है। नारी को अपने महत्त्व का एहसास कराते हुए उसके अधिकारों के प्रति उसे सजग बनाकर अपने ऊपर हो रहे अमानवीयता के प्रति विद्रोहित बनाने की शक्ति लेखिकाओं की भाषा में आज मौजूद है। निरुपमा सेवती की कहानी 'तलफलाहट' में एक पंक्ति है - "परिवार केलिए खपती, वक्त से पहले बूढ़ी होती माँ की तरह मुझे अपना जीवन नष्ट नहीं करना है। पति से लताड़ खाकर भी उससे चिपके नहीं रहना और ना ही पति के मां-बाप की मुक्त की नौकरानी बनना है।"[2] इसप्रकार की स्वतंत्रता की चाह से भरी पंक्तियाँ हर लेखिका की कहानियों में मौजूद है।

---

[1] उदयप्रकाश - तिरिछ - पृ.25-26

[2] निरुपमा सेवती - तलफलाहट -आतंक बीज - पृ.57

समाज में नित्य बदलते रूप के साथ आज भाषा भी निरंतर परिवर्तित होते है। भाषा का यह नयापन और टटकापन उसके अर्थों को गंभीर शक्ति से पाठकों के साथ खोलकर उसमें तीव्र प्रभाव डालता है। जैसे पंकज बिष्ट की कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' में बिशनदत्त के बेटे टी.वी देखने केलिए पड़ोस जाते थे। एक बार पड़ोसी टी वी दिखाने केलिए तैयार नहीं होता। इस पर लेखक का कहना है - "आहूजा से मात खाने के बाद वह अभी 'बहुत हो गया, अब कुछ करना चाहिए' वाली मानसिकता में पहूँचा ही था कि दो दिन बाद 102 नम्बर के क्वार्टर की खिड़की का आखिरी शीशा, हताशा कहें या गुस्से में, बिशनदत्त के 11 वर्ष के बड़े बेटे रघुवा के पत्थर के सामने आ गया।"[1] बिशनदत्त किश्तों पर टी वी खरीदने में कामयाब होता है। बाद में लेखक बिशन की मानसिकता का सूक्ष्म चित्रण करने के साथ-साथ उस पर तीव्र, सूक्ष्म व्यंग्य भी करता है - "रुपया घटता गया। सात से छह हुआ, छह से पाँच, पाँच से चार, फिर तीन, दो एक और वह मुक्त हो गया। पूर्णतः मुक्त-संविधान में मिले सारे अधिकारों से लैस देश के किसी भी नागरिक की तरह।"[2] इस प्रकार वर्तमान समाज की वास्तविकता आज की रचनात्मक भाषा में साफ झलकता है।

---

[1] पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते ?(सं. ऋषिकेश, राकेश रेणु) - समकालीन हिन्दी कहानियाँ - पृ.56-57.

[2] वही - पृ.58

इसके बदले अनेक कहानीकारों जैसे चित्रामृद्गल की कहानियों में उत्तरप्रदेश भाषा के साथ बम्बइया भाषा का भी प्रयोग देख सकते है। उनकी कहानी 'लकड़बग्धा' की यह उद्धरण इसका स्पष्ट उदाहरण है - "हाँ, हाँ, हमका पक्का प्रबन्ध चही ... पुनिया हमरी नाईं जाहिल-काहिल न रही... आज हम चार अक्षर पढ़ी-लिखी होतिन तो काहू के आसरे चौका-बासन निबटाइत पड़ी रही होतिन ? हमार जिनगी कढिलत - घसिटत बीत गयी, हमार नसीब।"[1] इसके बदले कुछ कहानियों में गालियों का खुला प्रयोग भी मिलते है। अनेक कहानियों में सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग भी किया है। ममता कालिया की 'सीट नम्बर छह' नामक कहानी में इसका प्रयोग है - "यै औरतें। मैं ने अरुचि से सोचा, सिर्फ दो वक्त की रोटियों और बीच की जगह के एवज़ में पति को नौकर बना लेती हैं।"[2] इसी प्रकार ज्ञानरंजन ने 'यात्रा' में संकेत किया है - "वह समझती है कि सारा देश जैसे नारी की एक सेंटीमीटर वाले 'अमुक' प्रदेश में ही घुसड़ जाने का इन्तज़ार कर रहा है।"[3] यह प्रयोग असल में पात्र की मानसिकता को स्पष्ट करने में सक्षम है।

समाज से सक्रिय संपर्क स्थापित करने केलिए समकालीन कहानी में बिम्ब, उपमान एवं प्रतीक से युक्त भाषा का प्रयोग भी हुआ है। संजीव की कहानी 'तीस साल का सफरनामा' में कथावाचक

---

[1] चित्रामुद्गल - लकड़बग्धा - चर्चितकहानियाँ - पृ.102.

[2] ममता कालिया - सीट नम्बर छह - पृ.13.

[3] ज्ञानरंजन - यात्रा - पृ.88.

जब शुरू में कहता है कि उसका जन्म भी 15 अगस्त 1947 को हुआ था तो वह देश का प्रतीक बन जाता है। नये मिथकों एवं नए मुहावरेदार भाषा भी समकालीन कहानी की भाषा की एक खासियत है। ममता कालिया की 'लड़के' नामक कहानी में नये मिथक एवं मुहावरेदार भाषा का दर्शन मिलता है - "लड़कों ने गिना, सात पर भारत सरकार की तख्ती लगी थी, तीन पर प्रादेशिक सरकार की। जाहिर है भारत सरकार नहाने आई थी। लड़कों ने देखा भारत सरकार मूली खरीद रही थी, भारत सरकार जलेबी खा रही थी, भारत सरकार पुण्य कमा रही थी......।"[1]

समकालीन हिन्दी कहानियों में उर्दू, अंग्रेज़ी, देशज शब्दों का प्रयोग अधिक रूप से मिलते है। इसमें उर्दू शब्दों का प्रयोग अधिक रूप से मुस्लिम रचनाकारों की कहानियों में मिलता है। नासिरा शर्मा की भाषा में उर्दू शब्द अधिक रूप में मिलते है - "दो लड़कियाँ दिलाराम और शवनूर ऐसे पाक-साफ कि उनके दामन पर नमाज़ पढ़ लो ... चचा से कहो कि वह अब्बास और हैदर केलिए मुनासिब होगी। दोनों के कप को मशहद और इस्फाहान में नशे के इल्ज़ाम में फाँसी पर चढ़ाया गया था, मगर उन दोनों का कहना है कि यह केवल आरोप था।"[2] समकालीन कहानी में अधिक रूप से अंग्रेज़ी शब्दों का

---

[1] नासिरा शर्मा - गूँगा आसमान - पृ.77

[2] गिरिराज शरण - साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ - पृ.86

प्रयोग भी मिलता है। महिला कहानिकारों की कहानियों में प्रेम और परिवार के संबंधों में फ़्लोर, डेटिंग, स्मार्ट, कॉकटेल आदि शब्दों का खुला प्रयोग हुआ है। अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग लगभग सभी कहानीकारों में मिलता है। मंजुल भगत की 'खोज' कहानी की नायिका नीलिमा कहती है - "आई एम सॉरी टू डिस्टर्ब यू, आई वुड लाइक टू विजिट योर सैट्स फॉर माई कॉलम। एण्ड वुड आल्सो लाइक टू मीट राकेश कुमार फॉर ए राइट-अप ऑन हिम।"[1] अंग्रेज़ी की इस प्रकार के अधिप्रसार से अपनी भाषा के बचाव केलिए कुछ कहानीकार अधिक रूप से देशज एवं आँचलिक शब्दों का भी प्रयोग करते है। कठिन शब्दों का कोष्टकों में अर्थ भी देते है जैसे पनही (जूती), सोर (जड़), मनई (आदमी), सगरा (तालाब), एकरा, (हुक), मनसेधू (पति), सार (पशुशाला) आदि। इस प्रकार अनेक नये प्रयोगों से समकालीन कहानी अत्यधिक शक्तिशाली बन गये है।

निष्कर्ष

समकालीन कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति है पारिस्थितिक चेतना। यानी अपनी परिस्थितिकी बिखराव के प्रति लोगों को जागरित करना स्पष्ट रूप में लोकचेतना जगाना। इस प्रकार समकालीन कहानी में नदी, पहाड़, वृक्ष आदि की शिथिलता को बचाने केलिए अनेक

[1] मंजुल भगत - खोज - पृ.5

कहानियों का सृजन भी हुआ है। अपने बिगड़ते परिस्थिति के प्रति वर्तमान साहित्यकारों का यह प्रयत्न काफी सराहनीय है।

समकालीन कहानी की अन्य प्रवृत्तियाँ है - आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, विकलांग विमर्श, लघु सांस्कृतिक विमर्श आदि अनेक विशेषताएँ एवं समर्थ शिल्प के द्वारा आज समकालीन कहानी अत्यन्त उज्ज्वल श्रेणी के अधिकारी है।

उपसंहार

उपसंहार

कहानी मानवीय जीवन के चित्रण का नाम है। मूल रूप में कहानीकार को आम जीवन के हर मोड़ का अनुभवी होना चाहिए। इससे कहानी कल्पित न होकर अपने अनुभवों का चित्रण बन जाती है। कुल मिलाकर कहानी यथार्थ जीवन की प्रस्तुती बन जाती है।

समकालीन साहित्य प्रतिरोध एवं विद्रोह का साहित्य बन गया है। समकालीन साहित्य में उद्भूत इस आक्रोश का स्वर आज के बदलते राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का ही फल है। समकालीन राजनीतिक परिवेश पूर्ण रूप से वैश्विकरण के अंगी है। फलस्वरूप वर्तमान भारत की आर्थिक स्थिति विदेशों पर पूरी तरह निर्भर है। इस पश्चिमीकरण ने हमारे समाज को यूस एण्ड त्रो संस्कृति का अंग बना दिया है। धार्मिक एकता केलिए प्रसिद्ध भारत को इन विदेशी शक्तियों ने सांप्रदायिक एवं आतंकवादी क्रूरताओं से रक्त रंजित बना दिया है। आज के राजनीतिज्ञ भी अपनी पार्टी के जीत केलिए जाती का खूब उपयोग करते है। इस भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के स्वर को बुलन्द करना हर समकालीन सृजन की महज़ है। इस उद्देश्य की पूर्ती का परिणाम है समकालीन हिन्दी कहानी में चर्चाओं के केन्द्र बने विभिन्न विमर्शी साहित्यिक धाराऐं एवं प्रवृत्तियाँ। इसमें प्रमुख है नवउपनिवेशवाद के प्रति प्रतिरोध,

स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, लोक चेतना, वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, लघु सांस्कृतिक विमर्श और विकलांग विमर्श आदि।

समकालीन हिन्दी कहानी की प्रवृत्तियों में श्रेष्ठ है नवउपनिवेशवाद। 'अतिथि देवो भव' भारतीय सामाजिक मूल्य का एक उन्नत चिंतन है। लेकिन जो भी विदेशी राज्य भारत में आए है भारत की प्राकृतिक समृद्धि को देखकर इस उन्नत चिंतन का गलत फायदा ही उड़ाया है। भारतीय शासन का इतिहास इसका उत्तम प्रमाण ही है। प्रत्यक्ष दृष्टि से 1947 से भारत स्वतंत्र है लोकिन मार्क्स जैसे समुन्नत चिन्तकों की दृष्टियों में सन् 1947 में पूँजीवाद के एक चरण का अन्त ही हुआ है दूसरा तब से शुरू भी हुए थे वह है नव-उपनिवेशवाद या भूमंडलीकरण। इसका प्रत्यक्ष रूप सोवियत संघ के विघटन के बाद ही सामने आया था। यह विकासशील देशों के सामने अर्थ एवं विकास के नए टेकनिक्स को लेकर ही सामने आता है। आरंभित समय में विश्व व्यापार में लगाए गए प्रतिबंधों को हटाकर एक खुले व्यापार का मंच प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य था तो कालान्तर में यह केवल स्वार्थ केन्द्रित नीतियाँ ही रह गयी। इसका मूल केन्द्र अमेरिकी विश्व शक्ति है। आज अविकसित एवं विकासशील देश इस केन्द्र शक्ति के उपकरण या मंडी मात्र है। इस वैश्विक शक्ति की कई आन्तरिक धाराऐं है जैसे - उदारीकरण, निजीकरण, विश्व व्यापार संघटन, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष आदि। अत: वैश्विक

शक्ति के मूल मात्र बने उपभोग संस्कार ने हमारे पूरे समाज को उथल-पुथल कर दिया है। आज भारत में सांप्रदायिक ढंगे एवं आतंकवादी आक्रमण एक आम बात हो गयी है। इन सभी प्रत्यक्ष माहौल का संचालन करने वाले अप्रत्यक्ष विश्व केन्द्रित शक्ति को हम नवउपनिवेशवाद कहते है। समकालीन हिन्दी कहानी में उपभोग संस्कृति की अमानवीयता को अत्यन्त तेज़ रूप में प्रस्तुत करने के साथ साथ इसके विरुद्ध प्रजड़ प्रतिरोधी स्वर भी कायम है। इस भोगीय संस्कार के शिकंझे में पड़कर आज सभी सामाजिक मूल्य माल का रूप ले चुका है। धर्म, संस्कृति, दर्शन सब बिक्री की वस्तु बन गई है। विज्ञापन एवं मीडिया के अतिप्रसार में पड़कर सभी सुखों की प्राप्ति केलिए निरंतर प्रयत्न करने वाले आम आदमी की दशाऐं भी अत्यन्त दुखमयी है। इस विदेशी उपसंस्कृति ने हमारे देश की अस्तित्व बनी कुटिर उद्योगों का भी हरण कर लिया है। भारतीय परिवारों मे श्रेष्ठ स्थान की अधिकारी होने वाली स्त्री आजकल मॉडल एवं ब्रांड बन गयी है। विदेशी शक्तियों के सहयोग से आजकल भारत आतंकवादी झुण्डों का केन्द्र बन गया है। नव उपनिवेशिक परिस्थितियों से उत्पन्न इन विभिन्न विभीषिकाओं के चित्रण के साथ इन में इस शोषित स्थिति से मुक्ति केलिए विद्रोह का स्वर भी अत्यन्त तेज़ है। उदय प्रकाश की पॉल गोमरा का स्कूटर, आर.एस.हरनोट की एम.डॉट कॉम, दुर्वा सहाय की माँ आदि अनेक कहानियों में यह विद्रोही स्वर बुलन्द है।

समकालीन हिन्दी कहानी की एक और प्रबल प्रवृत्ति है स्त्री विमर्श। भारतीय परंपरा के आदिम दिनों में स्त्री का स्थान अत्यन्त समुन्नत थी। लेकिन काल के बदलाव के अनुसार वह पितृसत्तात्मक समाज के शिकंझे में पड़कर शोषित एवं पीडित होने लगी। इस शोषण के विरुद्ध एक खुला आन्दोलन पश्चिम में ही शुरू हुआ था जो 8 मार्च 1857 में कामगर आँखों के द्वारा अपनी अवकाश को बरकरार रखने केलिए किया गया आन्दोलन था। समाज में हुआ यह परिवर्तन साहित्य में आकर विमर्श का रूप धारण कर लिया। विदेशों में आया यह बदलाव भारतीय स्त्री समाज को भी जागरित कर लिया इस विमर्शीय साहित्य ने हर क्षेत्र में स्त्री केलिए बना दिए गए नियमों के प्रति गहन चिंतन करते हुए अपने अधिकारों की प्राप्ति केलिए तेज़ रूप में संघर्ष केलिए उसे प्रेरित करती है।

समकालीन नारी की सारी समस्याओं का समाधान महिला लेखिकाओं ने अपनी कहानी लेखन के द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश की है। समकालीन नारी नौकरी पेशा होने से उसे पहले आवास की समस्या से ही निकलना पड़ता है और कभी तो उसे बॉस की कामवासना का शिकार भी होना पड़ता है। आज के नवउपनिवेशवादी माहौल ने नारी की नैतिक सोच को भी बदला दिया है। वह आज विवाह को टुकराते हुए विवाहेतर संबंधों को अपनाने में हिचकते नहीं

अत: तलाकों की संख्या बढ़ते चले जा रहे है। उपभोग संस्कृति के अंग बनी नारी मीडिया एवं इलक्ट्रोनिक माध्यमों के चाल में भी पड़कर आज बलात्कार का शिकार तक होती है। आज की नारीवादी लेखिकाऐं अनेक समस्याओं को अपने में समेटते हुए पूरे समाज को बदलाव की ज़रूरत के प्रति सहज बनाने की उनकी कोशिश है पारिस्थितिक स्त्रीवाद। समकालीन नारीवादी लेखिकाओं की अनेक कहानियाँ वर्तमान नारी की संघर्षमयी रूप को ही प्रस्तुत करती है। जैसे अचला नगर की 'सिफारिश', इंदिरा मित्तल की 'प्लीस हमें बेबी चाहिए' आदि।

समकालीन हिन्दी कहानी में विराचित एक और विमर्श है दलित विमर्श। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता के उद्भव स्थान चातुर्वर्ण्य समाज है। इस वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन का स्वर, कबीर, तुलसी, रैदास आदि के पदों में देख सकते हैं। बाद में नवजागरण के समय में राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि महारथों के प्रयत्नों से इस अनुसूचित समाज को शिक्षित कराते हुए अपने ऊपर हो रहे छुआछूत, सतीप्रथा आदि अनीतियों के विरुद्ध सचेत बनाने का प्रयत्न किया। आगे केरल, तमिलनाडु, बंगाल, महाराष्ट्र आदि स्थानों में भी इस शोषण के विरुद्ध आवाज़ उडा। फलत: दलित समाज को अनेक आन्दोलनों से प्रज्वल बनाने का श्रेय महाराष्ट्र के डॉ.बी.आर.अम्बेडकर

को प्राप्त हुआ। उनकी सजगता भरी कर्मों का प्रतिफल है वर्तमान दलित साहित्य। समकालीन दलित साहित्यों में दलितों की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक स्तर से संबंधित समस्याऐं मौजूद है। मोहनदास नैमिशराय की दर्द, सूरजपाल चौहान की बस्ती के लोग आदि अनेक कहानियों के ज़रिए समकालीन रचनाकार अपने अधिकारों की प्राप्ति केलिए दलितों को सचेत बनाने की कोशिश में निरंतर प्रयत्नरत है।

समकालीन हिन्दी कहानी की एक श्रेष्ठ प्रवृत्ति है 'लोकचेतना'। लोकचेतना का अर्थ है आम आदमी को सहज बनाना। वर्तमान सभ्य समाज के अंगी मानने वाले लोग अपनी उत्पत्ति की ओर चिंतन मनन करें तो पाऐंगे कि मानव प्रकृति के ही अंश है। प्रकृति की खोद से जन्म लेकर उनकी छत्रछाया में पल कर ही वह विकसित हुए थे। इसका प्रमाण मानवीय विकसित संस्कृति की विविध अंगों में भी मौज़ूद है लेकिन आज के मानव अपने जन्मजात प्रकृति के ही अंतक बने हुए है।

समकालीन हिन्दी कहानी के अनेक रचनाकारों ने मानव के इन नाशोन्मुख प्रवृत्तियों की नतीजे के रूप में पेड़-पौधों, फल-फूल, पहाड़, पशु-पक्षियाँ, नदि-नाले, वायु आदि में आए गंभीर एवं प्रजड़ परिवर्तनों को चित्रित करते हुए पूरे समाज को हमारे जैववैविद्यों की विस्थापन

रूपी समस्या पर भी ज़ोर देते हुए भविष्य के प्रति मानव को सचेत बनाया है। स्वयं प्रकाश की बलि, मृदुला गर्ग की करार आदि अनेक रचनायें अपने समाज को पर्यावरण के प्रति सहज एवं सचेत बनाने की प्रयत्न में काफी सफल है। समकालीन हिन्दी कहानी में अन्य अनेक प्रवृत्तियाँ भी मौजूद है। इसमें प्रमुख है वृद्ध विमर्श। वर्तमान उपभोगी समाज के शिकार होकर हर घर में यह वृद्ध जन बेकार की वस्तु बन गए है। अनेक संगठनों के द्वारा इस वर्ग को संरक्षित करने के प्रयत्न करते हुए भी यह प्रश्न काफी गंभीर। इस प्रकार वर्तमान समाज में अकेले पड़नेवाले एक और वर्ग है बालबच्चे। हमारे समाज के मूल अधिकारी वर्ग है आदिवासी। आज के वैश्विक समाज ने इन को केवल शोषण के उपकरण मात्र बना दिया है। ऊँचे समाज की रंगीन दुनिया से अपने कुछ जैविक विशेषताओं से विभिन्न होने वाले एक वर्ग है हिझडा। इस वर्ग के लोग वर्तमान समाज के अनेक अधिकारों से प्राय: वंचित है। वैश्विक तेज़ समाज की भाग दौड़ में शिथिल होने वाले एक विभाग है - विकलांग। इन सभी वर्गों के शोषण भरी जीवन गाथा समकालीन हिन्दी साहित्य में तेज़ रूप में प्रस्तुत है। इसी प्रकार वर्तमान हिन्दी कहानी की भाषा भी अत्यन्त विशेषताओं से युक्त है। प्रमुख रूप से हर शब्द में समाज में व्याप्त भ्रष्ट आचरण के प्रति तीव्र प्रतिरोध का भाव मुखरित है। अंग्रेज़ी शब्दों का प्रभाव भी अत्यन्त तीव्र है।

समकालीन हिन्दी कहानी की इन सभी प्रवृत्तियों से गुज़रते हुए इस निष्कर्ष पर पहूँच सकता है कि समकालीन हिन्दी कहानी अपने समय की विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधों को प्रस्तुत ही नहीं करते बल्कि उससे मुक्ति केलिए घोर विद्रोह या प्रतिरोध की रास्ता भी हमें दिखाते है। इसमें यह विधा पूरी तरह सफल है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्यायों से गुज़रने वाले व्यक्ति इस सत्य को ज़रूर महसूस करेंगे कि एक भारतीय होने के नाते भारतीय मूल्यों को प्रमुखता देना चाहिए यही हमारे अस्तित्व है। हमारे अस्तित्व को भूलकर दूसरे देश की संतान बनने की प्रवृत्ति से न ही हमारी वृद्धि होगी न हमारे देश की इसीलिए अपने अस्तित्व को बनाए रखते हुए हमारे देश की वृद्धि का सहायक या सहयोग देने वाले है उसे ही अपनाना चाहिए इसी में हमारी ऊँचाई निहित है।

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ

अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता है - जया जदवानी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं.2002.

अरेबा-परेबा - उदय प्रकाश
पेगुइन बुक्स
11 कम्युनिटी सेन्टर
पंचशील पार्क
नई दिल्ली- 110017
प्र.सं.2006.

अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ - अज्ञेय
राजपाल एण्डसन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली , प्र.सं.1989.

अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ भाग-I - अज्ञेय
राजपाल एण्डसन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली , प्र.सं.2011

औरत की कहानी - सुधा अरोड़ा
भारतीय ज्ञानपीठ, 18,
इंस्टीट्यूशनल एरिया
लोदी रोड, नयी दिल्ली
चौथा संस्करण - 2010.

आतंक बीज - निरुपमा सेवती
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1975.

आधी सदी का सफर नामा - स्वयं प्रकाश
पेंगुइन बुक्स
पंचशील पार्क
नई दिल्ली , प्र.सं. 2006

आरोहण	- संजीव पेगुइन बुक्स पेंगुइन बुक्स इंडिया 11 कम्युनिटी सेन्टर पंचशील पार्क नई दिल्ली, प्र.सं. 2006.
आसमान कितना नीला	- गोविन्द मिश्र राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. 2/38,अंसारी रोड़, दरियागंज नई दिल्ली-110002, 1994.
इक्तीस कहानियाँ	- कुसुम अंसल अभिव्यंजना प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 1991.
एक अदद औरत	- ममता कालिया प्रकाशन संस्थान शाहदरा, दिल्ली, 1992.

एक कोई और - अमीर सिंह दीप
परमेश्वरी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 2011.

एक थे हँस मुख दे - मृणाल पाण्डे
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1990.

एक स्त्री का विदागीत - मृणाल पाण्डे
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1985.

कपिल के पेड़ - राजेश जोशी
वाग्देवी प्रकाशन
सुगन निवास, चन्दन सागर
बीकानेर-334001,
प्र.सं.2001.

कहानी के तलाश में - अलका सरावगी
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2005.

किस्सा ए कोहनूर - पंखुरी सिंहा
भारतीय ज्ञानपीठ, 18,
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008.

क्विज़ मास्टर और अन्य कहानियाँ - पंकज मिश्र
आधार प्रकाशन प्रा. लिमिटेड
एस.सी.एफ-267, सेक्टर-6,
पंचकूल हरियाणा,प्र.सं.2011.

खरोंच - जयप्रकाश कर्दम
स्वराज प्रकाशन
4648/1, 21, अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली-110002,
प्र.सं.2014.

खोज - मंजुल भगत
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1992.

गोमा हँसती है - मैत्रेयी पुष्पा
किताब घर प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 1998.

गूँगा आसमान - नासिरा शर्मा
भारतीय ज्ञानपीठ,
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1999.

घर फूँक तमाशा - जयनंदन
ज्ञानभारती प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 2004.

घुस पैठिये - ओमप्रकाश वाल्मीकि
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
जी-17, जगतपुरी
दिल्ली-110051,प्र.सं.2003.

चर्चित कहानियाँ - मृदुला गर्ग
सामायिक प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1993.

चर्चित कहानियाँ - चित्रा मुद्‌गल
सामायिक प्रकाशन
3320-21 जटवाड़ा
नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002,
प्र.सं. 2011.

जंगल गाथा - नमिता सिंह
वाणी प्रकाशन
4697/5, 21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली- 2, प्र.सं. 1992.

जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ - एस.आर.हरनोट
आधार प्रकाशन प्रा. लि.
एस.सी.एफ 267,सेक्टर -16
पंचकूला, हरियाणा, 2008.

टुकड़ा टुकड़ा आदमी - मृदुला गर्ग
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, प्र.सं. 1988.

टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ - पंकज बिष्ट
किताब घर प्रकाशन
24, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1995.

तिरिच्छ - उदय प्रकाश
उदय प्रकाश की नौ कहानियाँ
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली, प्र.सं. 1989.

दत्तात्रेय के दुख - उदय प्रकाश
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली, प्र.सं. 2002.

दलित कहानी संचयन - सं. रमणिका गुप्ता
साहित्य अकादमी
नई दिल्ली, प्र.सं. 2006.

दूसरा ताजमहल	- नासिरा शर्मा इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र.सं. 2002.
दलित साहित्य (वार्षिकी)	- जयप्रकाश कर्दम बी -634, डी डी ए फ्लैट्स ईस्ट ऑफ लानी रोड, दिल्ली प्र.सं. 1999.
नदी जो अब भी बहती है	- कविता सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2011.
नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ	- मुद्राराक्षस लोकभारती प्रकाशन दरबारी बिल्डिंग महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद, नई दिल्ली प्र. सं. 2008.

निर्वासन - उर्मिला शिरीष
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2003.

नीम अब भी हरा है - कमल कपूर
कल्याणी शिक्षा परिषद
3320-21,जटवाड़ा, दरियागंज
नई दिल्ली -110002
प्र.सं. 2009.

नेम प्लेट - क्षमा शर्मा
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 2010.

नया ब्राह्मण - सूरज पाल चौहान
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.सं. 2009

नौकरी पेशा नारी : कहानी के आईने में - पुष्पपाल सिंह
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2002.

पथ दंश - नीरजा माधव
हिन्दी बुक सेन्टर
दिल्ली, प्र.सं. 2003.

पहचान - मोहन राकेश
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1961.

प्रतिनिधि कहानियाँ - निर्मल वर्मा
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली, प्र.सं. 1990.

प्रतिनिधि कहानियाँ - मुद्राराक्षस
किताब घर प्रकाशन
दरियागंज, नयी दिल्ली
प्र.सं. 2010.

पॉल गोमरा का स्कूटर	- उदय प्रकाश राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दरियागंज, नयी दिल्ली प्र.सं.1997.
बाज़ार	- जया जादवानी वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली - 110002 प्र.सं. 2010.
भरोसे की बहन	- श्यौराज सिंह बेचैन वाणी प्रकाशन 4695,21- ए, दरियागंज नयी दिल्ली - 110002 प्र.सं. 2010.
भारतीय दलित साहित्य . परिप्रेक्ष्य	- पुन्नी सिंह, कमला प्रसाद राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज नयी दिल्ली, प्र.सं. 2003.

महिला कथाकारों की उन्नीस श्रेष्ठ कहानियाँ - मीना अग्रवाल
स्टार बुक सेंटर
दिल्ली, प्र.सं. 1980.

महिला कहानीकार प्रतिनिधि कहानियाँ - पुष्पपाल सिंह
हिमाचल पुस्तक भण्डार
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2002.

मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज़
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1992.

मुझे नहीं मालूम - सुमन मेहरोत्रा
श्याम प्रकाशन
जयपूर, प्र.सं. 1992.

मिट्टी के लोग - एस.आर.हरनोट
आधार प्रकाशन
पंचकूला, प्र.सं. 2010.

यहाँ हाथी रहते थे	- गीतांजली श्री राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष पार्क नयी दिल्ली- 110002 प्र.सं. 2012.
यात्रा	- ज्ञानरंजन रचना प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1971.
विकलांग जीवन की कहानियाँ	- सं. गिरिराज शरण प्रभात प्रकाशन 419, आसफ अलि रोड नयी दिल्ली, प्र.सं. 2002.
विषम राग	- अरुण प्रकाश राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नेताजी रोड़ नई दिल्ली - 110002, प्र.सं. 2003.

विवेचना - इलाचंद जोशी
भारतीय भंडार
इलाहाबाद, प्र.सं. 1978.

शामी कागज़ - नासिरा शर्मा
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1996.

शाली भर चांद - सूर्यबाला
प्रभात प्रकाशन
चावडी बाज़ार
दिल्ली, प्र.सं. 1988.

संगति-विसंगति - मृदुला गर्ग
संपूर्ण कहानियाँ भाग (2)
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दरियागंज
नई दिल्ली, प्र.सं. 2008.

संघर्ष - सुशीला टाकभौरे
शरद प्रकाशन
नागपूर - 22, प्र.सं.2009.

संजीवनी बूटी - निर्मल सिंह
कल्याणी शिक्षा परिषद
नई दिल्ली, प्र.सं. 1994.

संजीव की कथा यात्रा तीसरी पड़ाव - संजीव
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008.

संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव - संजीव
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008.

सदियों से कथा संचयन - राजी सेठ
वाग्देवी प्रकाशन
सुगन निवास, चन्दन नगर
बीकानेर-334001,प्र.स.1996.

समकालीन हिन्दी कहानियाँ - सं. ऋषिकेश,
राकेश रेणु
परिभाषा प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1992.

सलाम - ओमप्रकाश वाल्मीकि
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
जी-17, जगतपुरी
दिल्ली-110005, प्र.सं. 2000

सीट नम्बर छह - ममता कालिया
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2000.

हम कौन है ? - रजत रानी मीनू
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2012.

हिडिम्बा के गाँव में - बटरोही
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नयी दिल्ली -110002
प्र.सं. 2006.

श्रेष्ठ बाल कहानियाँ - बाल शौरी रेड्डी
लोकभारती प्रकाशन

दरबारी बिल्डिंग,
महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद -1, प्र.सं.1993.

2050 तथा अन्य कहानियाँ - दिव्या माथुर
डायमंड बुक्स
नई दिल्ली, प्र.सं. 2011.

<u>आलोचनात्मक ग्रन्थ</u>

अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य - राजेन्द्र यादव,
अर्चना वर्मा
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2001.

अथर्ववेद

डॉ.अम्बेडकर संपूर्ण वाङमय - बाबा साहब अम्बेडकर
खण्ड - 16
डॉ.अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और
आधिकारिकता मंत्रालय
भारत सरकार
नई दिल्ली, प्र.सं. 2000

आज़ादी के बाद का भारत - विपिन चंद्र
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन
निदेशालाय, दिल्ली
द्वितीय संस्करण - 2002.

आधुनिक बोध - दिनकर
पंजाबी पुस्तक भंडार
दिल्ली, प्र.सं. 1973.

आधुनिकता और मोहन राकेश - डॉ.उर्मिला मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी, प्र.सं. 1998.

इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिन्दी कहानी - सूरज पालीवाल
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2012.

उठो, अन्नपूर्णा साथ चलें - उषा महाजन
हिमाचल पुस्तक भंडार
दिल्ली, प्र.सं. 1998.

उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज़ - माता प्रसाद
देहली किताब घर
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1995.

उदारीकरण की राजनीति - राजकिशोर
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1998.

उपनिवेश में स्त्री - प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
दिल्ली, प्र.सं. 2003.

ऋग्वेद

एक अज्ञात हिन्दु औरत - धर्मवीर
सीमन्तनी उपदेश
शेष साहित्य प्रकाशन
नोएडा, उ.प्र., प्र.सं. 1988.

ऐतरेय ब्राह्मण

औरत के हक में - तसलीमा नसरीन
अनु. मुनमुन सरकार
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.1995.

कबीर ग्रन्थावली - माताप्रसाद गुप्त
प्रामाणिक प्रकाशन
35, लाजपत कुंज,
सिविल लाइन्स
आगरा, प्र.सं. 1969.

कहानी आन्दोलन की भूमिका - बलराज पाण्डेय
अनामिका प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं.1989.

कहानी के नये प्रतिमान - डॉ.कुमार कृष्णा
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2005.

कहानी : नयी कहानी - डॉ.नामवर सिंह
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं. 1992.

कुछ विचार - प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस
बनारस इलाहाबाद
वर्तमान संस्करण 1961.

खड़ीबोली का लोक साहित्य - डॉ.सत्या गुप्ता
हिन्दुस्तानी एकेडमी
इलाहाबाद, प्र.सं. 1965.

ग्राम साहित्य (तीसरा भाग) - रामनरेश त्रिपाठी
आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली, प्र.सं. 1952.

22. चिन्तामणि (भाग-2) - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
सरस्वती मंदिर
काशी, वि.2002.

ढोला -मारू -रा दूहा - (सं.) रामसिंह
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी, द्वि.सं. वि. 2011.

दलित चेतना, साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार - रमणिका गुप्ता
नवलेखन प्रकाशन, मेन रोड
हज़ारी बाग, बिहार
प्र.सं. 1996.

दलित राजनीति की समस्याएँ	- राजकिशोर वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज नयी दिल्ली - 110002 प्र.सं. 2006.
दलित साहित्य	- (सं.) डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली, प्र.सं. 2002.
दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र	- ओमप्रकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 2001.
दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र	- शरणकुमार लिंबाले वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2000.

दलित साहित्य की प्रमुख विधाएँ - माता प्रसाद
देहली किताब घर
झण्डेवाला
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1995.

दलित साहित्य बुनियादी सरोकार - कृष्णदत्त पालिवाल
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज,
नयी दिल्ली, प्र.सं.2009.

नंदीग्राम मीडिया और भूमण्डलीकरण - जगदीश चतुर्वेदी
अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटेर्स प्रा.लि.
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008.

नई सदी बाज़ार, समाज और शिक्षा - दिनेश भट्ट
नवचेतना प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 2005.

नवें दशक की हिन्दी दलित कविता	- रजत रानी मीनू दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नयी दिल्ली प्र.सं. 1996.
नया हिन्दी साहित्य, एक दृष्टि	- प्रकाश चन्द्र गुप्ता सामायिक प्रकाशन दिरयागंज, दिल्ली प्र.सं. 1991.
नारी प्रश्न	- सरला महेश्वरी राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 1998.
पृथ्वी पुत्र	- वासुदेवशरण अग्रवाल सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्र.सं. 1949.
परिधि पर स्त्री	- मृणाल पांडे राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 1996.

बाज़ार के बीज : बाज़ार के खिलाफ - प्रभा खेतान
वाणी प्रकाशन,
21-ए, दरियागंज
नयी दिल्ली - 110002
प्र.सं. 2004.

भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या - जगजीवन राम
राजपाल एण्ड संस
दिल्ली, प्र.सं. 2001.

भारतीय लोक साहित्य - श्याम परमार
राजकमल प्रकाशन
बम्बई, प्र.सं. 1954.

भारतीय संस्कृति में नारी - डॉ.लता सिंहल
परिमल पब्लिकेशन्स
दिल्ली, प्र.सं. 2006.

भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श - सुधीश पचौरी
प्रवीण प्रकाशन
1/1079 ई, महरौली
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2003.

भूमंडलीकरण विविध आयाम - डॉ.व्रजकुमार पाण्डेय
विनोद बुक सेन्टर
शिवाजी मार्ग
करतार नगर, दिल्ली
प्र.सं. 2008.

मन मांझने की ज़रूरत - अनामिका
सामयिक प्रकाशन
दरियागंज
दिल्ली, प्र.सं. 2006.

मनुस्मृति

महिला और बदलता सामाजिक परिवेश - प्रो.मान चन्दखडेला
आविष्कार पब्लिशर्स
डिस्ट्रीब्यूटर्स, 807,
व्यास बिल्डिंग, चौडा रास्ता
जयपूर, राजस्थान,
प्र.सं.2008.

मानव और संस्कृति - श्यामचरण दुबे
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1993.

राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन - कन्हैयालाल सहल
भारती साहित्य मंदिर
दिल्ली, प्र.सं. 1958.

रानडे गाँधी और ज़िन्ना - डॉ.भीमराव अम्बेडकर
अनु. खेमचन्द्र सौगात
बहुजन कल्याण प्रकाशन
सआदतगंज, लखनऊ
पंचम संस्करण - 1988.

रामचरितमानस - तुलसीदास
गीता प्रेस, गोरखपूर
इक्यावनवाँ संस्करण

लोक और लोक का स्वर - वियानिवास मिश्र
प्रभात प्रकाशन
4/19, आसफ अली रोड
नई दिल्ली -110002
प्र.सं. 2000.

लोकधर्मी नाट्य परंपरा	- श्याम परमार हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, प्र.सं. 1959.
लोक साहित्य विज्ञान	- डॉ.सत्येन्द्र शिवलात अग्रवाल एण्ड कंपनी आगरा, प्र.सं. 1962.
लोक साहित्य की भूमिका	- डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद, तृ.सं. 1977.
विचार और वितर्क	- पं.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य भवन लि. इलाहाबाद, नवीन सं. 1954.
विद्रोही स्त्री	- मधुबी जोशी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, प्र.सं. 2001.

वैश्वीकरण या पुन : औपनिवेशीकरण	- नीरजा जैन गार्गी प्रकाशन 127, न्यू आवास विकास कालोनी, सराहनपूर -247001 प्र.सं. 2004.
समकालीन कहानी की भूमिका	- विश्वंभरनाथ उपाध्याय स्मृति प्रकाशन शहराबाद, इलाहाबाद प्र.सं. 1977.
समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि	- धनंजय अभिव्यक्ति प्रकाशन युनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद, प्र.सं. 1970.
समकालीन कहानी की पहचान	- नरेश मोहन प्रवीण प्रकाशन महरौली, नयी दिल्ली प्र.सं.1978.

समकालीन हिन्दी कहानी युगबोध का सन्दर्भ	- पुष्पपाल सिंह नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली, प्र.सं. 1986.
समकालीन महिला लोखन	- डॉ.ओमप्रकाश शर्मा पूजा प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2002.
समकालीन सृजन आधुनिकता की पुनर्व्याख्या	- शंभुनाथ वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 प्र.सं. 2002.
समकालीन हिन्दी उपन्यास	- डॉ.एन.मोहनन वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र.सं. 2013.
समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध	- डॉ.ज्ञानवती अरोड़ा सूर्य प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली, प्र.सं. 1989.

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन - कीर्ति केसर, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1982.

साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचन्द, एस.के.पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 1988.

साहित्य का समाज शास्त्र - डॉ.नगेन्द्र, ने.प.हा, दिल्ली, प्र.सं. 1982.

साठोत्तरी महिला कहानीकार - डॉ.मंजु शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 1992.

साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना - नरेन्द्र सिंह, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 1990

सांप्रदायिकता आतंकवाद और जनमाध्यम - जगदीश चतुर्वेदी
अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि.
दरियागंज,
नई दिल्ली, प्र.सं. 2005.

स्त्री उपेक्षिता - प्रभा खेतान
हिन्दी पॉकेट बुक्स
प्र.सं. 1998.

स्त्री का समय - क्षमा शर्मा
मेधा बुक्स
शाहदरा, प्र.सं. 1998.

स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक - मृणाल पांडे
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1987.

स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने - रमणिका गुप्ता
शिल्पायन
दिल्ली, प्र.सं. 2004.

स्त्री सरोकार - आशारानी व्होरा
आर्य प्रकाशन मंडल
दिल्ली, प्र.सं. 2002.

स्त्रियों की पराधीनता - प्रगति सक्सेना
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 2002.

हरिजन से दलित - राजकिशोर
वाणी प्रकाशन
दरियागंज, नयी दिल्ली
चतुर्थ संस्करण - 2000.

हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास - डॉ.हेतु भारद्वाज
पंचशील प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता
जयपूर-302003,प्र.सं.2005.

हिन्दुत्व और उत्तर आधुनिकता - सुधीश पचौरी
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
जगतपुरी, दिल्ली
प्र.सं. 2002.

हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.नगेन्द्र
मयूर पेपर बुक्स ए-15
सेक्टर - 5, नोएडा
तैंतीसवीं संस्करण - 2007.

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग- 16) - राहुल सांकृत्यायन
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी, प्र.सं. संवत 2017.

हिन्दी कहानी के आन्दोलन : उपलब्धियाँ और सीमाएं - रजनीश कुमार
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, प्र.सं. 1986.

हिन्दी साहित्य कोश (भाग -1) - धीरेन्द्र वर्मा
ज्ञान मण्डल लिं. वाराणसी
दिवतीय सं. संवत् -2020.

हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि - डॉ. विनय कुमार पाठक
भावना प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 2005.

हिन्दी कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली, प्र.सं. 1977.

श्रृंखला की कड़ियाँ - महादेवी वर्मा
भारती भंडार
इलाहाबाद, प्र.सं. 1950.

<u>कोश ग्रंथ</u>

अंग्रेज़ी - हिन्दी- कोश - कामिल बुल्के
काथलिक प्रेस
राँची, प्र.सं. 1978.

बृहत् हिन्दी कोश - कातिका प्रसाद
ज्ञानमण्डल लिमिटेड
वाराणसी, प्र.सं. 1997.

हिन्दी साहित्य कोश (भाग -1) - धीरेन्द्र वर्मा
ज्ञानमण्डल लिमिटेड
वाराणसी, प्र.सं. 2000.

A shorter Hindi -English Dictionary - Editors Mahendra Chaturvedi
Dr.Bhola Nath Tiwari
National Publishing House,
Daryaganj, New Delhi,
Fourteen Edition - 1996.

The Oxford Hindi - English Dictionary - R.S.Megregor
Oxford University Press
Forth impression - 1999.

<u>पत्रिकाऐं</u>

कथादेश -मार्च 2011 - अंक 1 - वर्ष 15

कथादेश - अप्रैल 2012 - वर्ष 32 - अंक 2

नया ज्ञानोदय - फरवरी 2003 - अंक -1

नया ज्ञानोदय - अप्रैल 2003 - अंक 2

नया ज्ञानोदय - मई 2003 - अंक 3

नया ज्ञानोदय - जुलाई 2003 - अंक 5

नया ज्ञानोदय - अगस्त 2003 - अंक 6

नया ज्ञानोदय - सितंबर 2003 - अंक 7

नया ज्ञानोदय - नवंबर 2003 - अंक 9

भाषा - जुलाई - अगस्त 2005 - अंक 6 - वर्ष 44

वागर्थ - फरवरी - 2014 - अंक 223

संग्रथन - जुलाई 2012 - अंक 1 - वर्ष 26

संग्रथन - सितंबर-अक्तूबर 2011 - अंक 3 - वर्ष 25

हरिगंधा - अप्रैल 2008

हंस - नवंबर 1992

हंस - जुलाई 1999 - वर्ष 13 - अंक 12

हंस - अक्तूबर 2000 - अंक 3 - वर्ष 15

हंस - अगस्त 2006 - वर्ष 21 - अंक 1

हंस जुलाई 2009 - अंक 12 - वर्ष 23.

<u>अंग्रेज़ी ग्रन्थ</u>

Anihilation of caste - Dr.B.R.Ambedkar
Bombay, 1937.

Down Home - Isak Dinesan
Robert Borne
G.P.Patnam's Sons
New York - 1975.

Modernisation and social Change - Rajendra Pendey
Criterion Publication
136, Raja Garden
New Delhi - 110015
First publication - 1988.

Open Vens of latin America	- Edverd gauliyano Mathaly, Rima Press Newyork First publication - 1974.
The U.S.structural adjustment and global proverty	- Valden Belo dark victory Third world note Book Maleriya First publication - 1994.
The Feminine Mistic	- Beti Friden First publication - 1986.
The collected works of Mahatma Gandhi Vol. XLVII	- The publications Divisions Ministry of Information and Broad casting Government of India First publication - 1971.
Aspect of Indian economy	- Rajani.X.Desay Magazine, Mumbai 1992, Vol.9.

सुमी.सी.एस
अरक्केपरंभिल
सुमी निवास
कण्डनाड पि.ओ.
तिरुवाम्कुलम
एरणाकुलम - 682305
केरल

सुमी.सी.एस का जन्म केरल राज्य के एरणाकुलम जिले के मट्टानचेरी में 8 अक्तूबर सन् 1986 में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा एरणाकुलम जिले के त्रिप्पूणित्तुरा सरकारी गेल्स स्कूल एच.एस.एस. में हुई। बाद में उच्च शिक्षा के लिए कोलनचेरी सेन्टपीट्टेर्स कॉलेज, एरणाकुलम में भर्ती हुई और 2008 में हिन्दी में बी.ए. की उपाधि महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय से तृतीय श्रेणी से प्राप्त की। उसी साल में कोलनचेरी से कम्प्यूटर के पोस्ट ग्राजुएट डिप्लोमा इन कम्प्यूटर अप्लिकेशन्स (P.G.D.C.A.) नामक डिप्लोमा कोर्स भी पूरा किया।

2009 में मूवाट्टुपुष़ा निर्मला कॉलेज, एरणाकुलम से हिन्दी साहित्य में एम.ए.

की उपाधि प्राप्त की। 2011 में कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.फिल की उपाधि प्राप्त करने के बाद 2012 में वहाँ से हिन्दी अनुवाद का डिप्लोमा कोर्स भी पूरा किया। इस कोर्स की परीक्षा में कोच्चिन विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय से तृतीय श्रेणी भी प्राप्त की। सन् 2011 सितम्बर से कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में प्रोफसर डॉ.एन.जी.देवकी के निर्देशन में अनुसंधान का कार्य शुरू किया। शोध कार्य के अध्ययन के दौरान एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध प्रपत्र प्रस्तुतीकरण के अवसर भी प्राप्त हुए। कोच्चिन विश्वविद्यालय की वार्षिक शोध पत्रिका अनुशीलन और जयपुर की पंचशील प्रकाशन द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक शोध पत्रिका पंचशील शोध समीक्षा में प्रपत्रों का प्रकाशन हुआ। अब 'समकालीन हिन्दी कहानियों का प्रवृत्तिगत अनुशीलन' शीर्षक विषय पर पी.एच.डी उपाधि के लिए शोध प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ।